भारत का विधि आयोग

196 वीं रिपोर्ट

प्राणांततः रुग्ण रोगियों का चिकित्सीय उपचार
(रोगियों और चिकित्सा व्यवसायियों की सुरक्षा)
विषय पर
196 वीं रिपोर्ट
मार्च 2006

न्यायाधिपति
एम. जगन्नाथ राव
अध्यक्ष

भारत का विधि आयोग
शास्त्री भवन,
नई दिल्ली-110001
फोन : 23384475
फेक्स: (011) 23073864,23388870
Email: [redacted]

निवास: 1, जनपथ,
नई दिल्ली-110001
फोन : 23019465

28 अप्रैल, 2006

प्रिय श्री भारद्वाज जी,

'प्राणांततः रुग्ण रोगियों का चिकित्सीय उपचार (रोगियों और चिकित्सा व्यवसायियों की सुरक्षा)' विषय पर विधि आयोग की यह 196 वीं रिपोर्ट अत्यंत अछूती और मनोरंजक है और ऐसे महत्वपूर्ण विषय पर है जिसका भारत के विधि आयोग ने तुलनात्मक अध्ययन हाथ में लिया था ।

इस विषय पर अध्ययन करने के लिये इंडियन सोसाइटी ऑफ क्रिटिकल केयर ऑफ मेडिसन ने 27 अप्रैल, 2005 को आयोजित सेमीनार में, जिसका उद्घाटन माननीय विधि और न्याय मंत्री जी ने किया था, निवेदन किया था और आयोग ने अध्ययन करने और एक रिपोर्ट तथा विधेयक का प्रारूप प्रस्तुत करने की स्वीकृति दी थी ।

प्राणांततः रुग्ण रोगियों (जिनके अन्तर्गत ऐसे रोगी भी आते हैं जो निरन्तर जड़ दशा में हैं)
जो आधुनिक जीवन प्रदायी उपायों से, जैसे कृत्रिम श्वसन प्रणाली तथा कृत्रिम भोजन आपूर्ति, हटकर प्राकृतिक मृत्यु अपनाने की इच्छा रखते है, लागू विधि के बारे में हमारे देश में बहुत कम जानकारी है ।

लगभग प्रत्येक व्यक्ति आयोग से यह पुछ रहा है कि क्या इस रिपोर्ट का प्रयोजन 'यूथानासिया' अथवा 'सहायता-जन्य आत्महत्या' को वैधता प्रदान करना है । अतः, हमने

अपनी रिपोर्ट के प्रथम अध्याय के प्रथम पैरा को निम्नलिखित शब्दों से आरम्भ किया है:-

"इस रिपोर्ट का शीर्षक पढ़ते ही लोगों को ऐसा लगता है मानो हम 'यूथानासिया' अथवा 'सहायता- जन्य आत्महत्या' पर चर्चा कर रहे हैं । किन्तु हम प्रारम्भ में ही यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि 'यूथानासिया' अथवा 'सहायता-जन्य आत्महत्या' अभी भी अवैध हैं और हम एक भिन्न विषय पर, अर्थात, ' प्राणांततः रुग्ण रोगियों के 'जीवन प्रदायी उपायों को हटाने' के विषय में विचार कर रहे है तथा विश्व भर में, सभी देशों में, उन्हें हटाना 'विधिपूर्ण' माना जाता है ।"

'यूथानासिया' किसी व्यक्ति का, जिसमें डाक्टर भी सम्मिलित हैं, किसी भी व्यक्ति को जो प्राणांततः रुग्ण है, औषधि देकर साशय मारने का कृत्य है । 'सहायता-जन्य आत्महत्या' किसी रोगी का, जिसे डाक्टर की सहायता उपलब्ध है ऐसा कार्य है जो आत्महत्या करने के आशय से औषधि लेता है । जैसा कि हमारे उच्चतम न्यायालय ने <u>ज्ञानकौर</u> बनाम <u>पंजाब राज्य</u> : 1996 (2) एस. सी. सी 648 में निर्णय दिया है, उक्त दोनों ही कार्य अवैध हैं और अवैध रहेंगे ।

लगभग सौ वर्ष पूर्व, जब प्राणांततः रुग्ण रोगी को चिकित्सीय उपचार द्वारा जीवित रखने के कृत्रिम उपायों का, जिनके अर्न्तगत वेन्टीलेटरों और कृत्रिम रूप से भोजन प्रदान करके जीवित रखने के उपचारों के लिये औषधियों और औषधि तकनीक का अविष्कार नहीं हुआ था, ऐसे व्यक्ति प्राकृतिक कारणों से मृत्यु को प्राप्त हो जाते थे । पर, आज स्वीकार किया जा चुका है कि प्राणांततः रुग्ण व्यक्ति को आधुनिक चिकित्सीय पद्धतियों से इन्कार करदें तथा प्रकृति को अपना मार्ग अपनाने दें कि वे सामान्य विधि में अधिकार है जैसा कि प्राचीन समय में था । सभी देशों में यह एक सुनिश्चित विधि है कि प्राणांततः रुग्ण व्यक्ति, जो होश में है और सक्षम है, प्राकृतिक मृत्यु से मरने का 'सज्ञान निर्णय' ले सकता है और यह निर्देश दे सकता है कि उसे ऐसा चिकित्सीय उपचार न दिया जाये जिससे उसे दीर्घ जीवन मिलता हो । आजकल ऐसे अनेक रोगी हैं जो रोग की ऐसी स्थिति पर पहुँच चुके हैं जब वे अत्यन्त जानकार व्यक्तियों की चिकित्सीय राय में स्वस्थ्य नहीं हो सकते । किन्तु आधुनिक औषधियां और तकनीक ऐसे व्यक्तियों को दीर्घकाल तक जीवित रहने में समर्थ बना सकती है जिसका कोई प्रयोजन नहीं है और ऐसे दीर्घकाल के दौरान रोगी को अत्यधिक दर्द और कष्ट सहन करना पड़ सकता है । ऐसे अनेक रोगी दर्द और कष्ट को कम करने के लिये पैलियेटिव केयर पसंद करते हैं तथा ऐसा चिकित्सीय उपचार नहीं चाहते जिससे केवल उन्हें दीर्घ जीवन प्राप्त होगा या मृत्यु टलती रहेगी ।

कतिपय कानूनी सिद्धान्तों पर सभी देशों के न्यायालयों का मतैक्य

एअरडैल एन. एच. एस ट्रस्ट बनाम ब्लांड; 1993 (1) ऑल इंगलैण्ड रिपोर्टर्स 821 (एच. एल) में हाऊस ऑफ लार्डस ने, क्रूजन बनाम डायरेक्टर एम. डी. एच (1990) 497 यू. एस 261 में अमेरिका की सुप्रीम कोर्ट ने, वार्ड ऑफ कोर्ट, निर्देश 1995 आई. एल. पी. एम 401 में आयरलैण्ड की सुप्रीम कोर्ट ने , लॉ हास्पीटल एन. एच ट्रस्ट बनाम लार्ड एडवोकेट: 1996 एस एल. टी 848 में सैशन न्यायालय, स्कॉटलैण्ड के इनर हाऊस ने, सियार लारी येलो बनाम शाटर 1993 (2) एस. सी. आर 119 तथा रॉड्रिक बनाम अटरनी जनरल कनाडा 1993 (3) एस. सी. आर 519 में कनाडा की सुप्रीम कोर्ट ने, क्यू बनाम गार्जियनशिप ऐडमिनिसट्रेटिव एण्ड पिलग्रिम: 1998 वी. एस(सी. ए) तथा नार्थ रिज बनाम सैन्ट्रल सिडनी ऐरिया हेल्थ सर्विस: (2000 एन. एस. डबल्यू 1241) (एस. सी), इज़ाक मसीहा बनाम साउथ ईस्ट हेल्थ: 2004 एन. एस. डबल्यू (एस सी) 1061) में आस्ट्रेलिया के न्यायालयों ने तथा आकलैण्ड ऐरिया हेल्थ बोर्ड बनाम अटरनी जनरल:1993 (1) एन एल एल आर 235 में न्यूजीलैण्ड के न्यायालय ने कानूनी सिद्धान्तों पर मतैक्य प्रकट किया है और यह थोड़े से ही उदाहरण हैं ।

सक्षम रोगी: (सज्ञान निर्णय):

प्राणांततः रूग्ण प्रत्येक व्यक्ति को, जो सक्षम रोगी है, उपचार से इन्कार करने का अधिकार है तथा उसका निर्णय डाक्टरों पर बाध्य है परन्तु यह तब जब रोगी का ऐसा निर्णय 'सज्ञान निर्णय' हो (अर्थात्, ऐसा निर्णय रोगी ने तब लिया हो जब उसे -

(i) उसकी बीमारी की प्रकृति, (ii) उपचार के ऐसे विकल्प के बारे में जो उपलब्ध हो सकता है, (iii)इस प्रकार के उपचारों के परिणामों और, (iv) उपचार न लेने के परिणामों के बारे में जानकारी दे दी गई है ।

यदि कोई सक्षम रोगी तब जब वह प्राणांततः रूग्ण है प्राणांततः रूग्ण चिकित्सीय उपचार नहीं लेने का 'सज्ञान निर्णय' लेता है तब ऐसा निर्णय डाक्टरों पर बाध्य कर है, और यदि इसके विपरीत, उसे कोई टालू उपचार दिया जाता है तो वह महा-अपराध (बेटरी) होगा और यदि रोगी मर जाता है तो वह हत्या का अपराध भी हो सकता है । यदि कोई 'सक्षम रोगी' प्रकृति को अपना मार्ग अपनाने का 'सज्ञान निर्णय' देता है तो वह सामान्य विधि के अंतर्गत 'आत्महत्या करने का प्रयास' (भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धारा 309 के अन्तर्गत दोषी नहीं है और न वह डाक्टर ही, जिसने उक्त कारण से उपचार देना बंद कर दिया है, भारतीय दण्ड सहिंता की धारा 306 के अन्तर्गत आत्महत्या का उत्प्रेरण करने का अथवा धारा 304 के साथ पठित धारा 299 के अन्तर्गत हत्या का दोषी है ।

अक्षम रोगी तथा सक्षम रोगी जिन्होंने सज्ञान निर्णय नहीं लिया है :

विधि के अनुसार, अक्षम रोगियों और सक्षम रोगियों के मामले मे भी जिन्होंने सज्ञान निर्णय नहीं लिए हैं, उक्त विधि के अनुसार ही, डाक्टर चिकित्सीय उपचार रोक सकता है या हटा सकता है यदि ऐसा करना रोगी के "सर्वोत्तम हित में है" और यदि ऐसा करना चिकित्सा विशेषज्ञो के किसी निकाय की राय पर आधारित है । 'सक्षम रोगी' की परिभाषा इस प्रकार से करने का प्रस्ताव है कि वह ऐसा रोगी है जो 'अक्षम रोगी' नहीं है ।

'अक्षम रोगी' की परिभाषा इस रूप में करने का प्रस्ताव है कि कोई ऐसा व्यक्ति जो अवयस्क है या दिमागी रूप से अक्षम है या ऐसा व्यक्ति है जो -

(i) उसके चिकित्सीय उपचार की बावत सज्ञान निर्णय से सुसंगत जानकारी समझने में;

(ii) उस जानकारी को अपने तक रखने में;

(iii) उस जानकारी को अपना सज्ञान निर्णय लेने की प्रक्रिया में उपयोग करने या मूल्यांकन करने में ;

(iv) अपने मस्तिष्क के कार्य करने में बाधा अथवा विघ्न के कारण सज्ञान निर्णय लेने में; अथवा

(v) अपने चिकित्सीय उपचार के बारे में सज्ञान निर्णय को संसुचित करने में; असमर्थ है ।

ऐसे रोगी चिकित्सा उपचार रोकने या हटा लेने के बारे में 'सज्ञान निर्णय' लेने के लिये सक्षम नही है ।

जैसा ऊपर कहा गया है, ऐसे 'सक्षम रोगियों' की दशा में जो प्राणांतकः रुग्णता से ग्रस्त हैं तथा उन सक्षम रोगियो की दशा में भी जिनके बारे में डाक्टर का यह समाधान हो गया है कि उन्होंने सज्ञान निर्णय नहीं लिया है, तो डाक्टर रोगी के 'सर्वोत्तम हित' में चिकित्सीय उपचार रोक देने या हटा लेने का निर्णय ले सकता है यदि विशेषज्ञों के निकाय की भी यह राय है और आज यह एक सुनिर्धारित विधि है । यह सिद्धान्त बोलम परीक्षण पर आधारित है । निर्णीत मामलों के अनुसार 'सर्वोत्तम हित' चिकित्सा हितों तक सीमित नही है अपितु उनके अन्तर्गत 'नैतिक, सामाजिक, चारित्रिक, भावात्मक तथा कल्याण संबंधी आधार भी सम्मिलित हैं ।

विशेषज्ञों का पैनल स्वास्थ्य सेवा महानिदेशक तथा चिकित्सा सेवा के निदेशकों द्वारा तैयार किया जायेगा:

इस उद्देश्य से कि इन सिद्धान्तों और प्रक्रियाओं का उचित प्रयोग सावधानीपूर्वक किया जाता है तथा उनका दुरुपयोग नही होता है, विधि आयोग ने अनेक रक्षोपायों और शर्तो की सिफारिश की है जिन्हें, 'अक्षम रोगी' की दशा मे तथा ऐसे 'सक्षम रोगी' की दशा में भी जिन्होने सज्ञान निर्णय नही लिया है, पालन करना होगा । यह प्रस्ताव है कि उक्त दोनों श्रेणियों की दशा में डाक्टर को कानूनी प्राधिकारी द्वारा तैयार किये गये पैनल के तीन चिकित्सा विशेषज्ञों से परामर्श करना होगा ।

पैनल के विशेषज्ञों की राय आज्ञापक है :

अन्तिम पैरा मे चर्चित रोगी के सर्वोत्तम हित में डाक्टर द्वारा चिकित्सीय उपचार को रोक देना और हटा लेने की अनुमति केवल तब है जब इस मार्ग का अपनाया जाना संघ राज्यक्षेत्रों के स्वास्थ्य सेवा महानिदेशक द्वारा तथा राज्यों के औषधि निदेशको (या सम्तुल्य प्राधिकारियों) द्वारा पैनल में रखे गये तीन चिकित्सा विषेशज्ञों के निकाय द्वारा उपयुक्त समझा जाता है ।

चिकित्सा व्यवसायियों द्वारा रजिस्टर रखना अनिवार्य है :

इसके अतिरिक्त, यह प्रस्ताव है कि, सक्षम तथा अक्षम दोनों ही रोगियों की दशा में, उन डाक्टरो को एक रजिस्टर रखना होगा जो उपचार रोक देना या हटा देना चाहते हैं । इस रजिस्टर में निर्णय तथा निर्णय लेनें की प्रक्रिया दर्ज करनी होगी । डाक्टर द्वारा रखे जाने वाले रजिस्टर में उन कारणों का भी उल्लेख करना होगा जिन कारणों से डाक्टर समझता है कि मरीज सक्षम या अक्षम है, डाक्टर ऐसा क्यों समझता है कि रोगी का निर्णय सज्ञान निर्णय है अथवा नहीं, उन विशेषज्ञों की राय जिससे डाक्टर ने ऐसे अक्षम और सक्षम रोगी की दशा में जिन्होने सज्ञान निर्णय नही लिया है, परामर्श किया है, रोगी के सर्वोत्तम हित में क्या है, तथा रोगी का नाम, स्त्री है या पुरुष, आयु आदि दर्ज किये जाएगें । डाक्टर को रोगी की पहचान और अन्य विशिष्टियां गोपनीय रखनी होंगी ।

रोगी, माता-पिता या नातेदारों को जानकारी देना आवश्यक है :

उपरोक्त रजिस्टर सम्यक रुप से रखे जाने के बाद, डाक्टर उपचार रोकने या हटा लेने के पूर्व रोगी को (यदि वह होश में है) या उसके माता-पिता या नातेदारों को इसकी सूचना अवश्य देगा । यदि मरीज, माता-पिता या नातेदार धारा 14 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय जाना चाहते हैं तो चिकित्सा व्यवसायी उपचार रोक देने या हटा लेने के निर्णय को 15 दिन के लिये स्थगित कर देगा और यदि उसे उच्च न्यायालय से कोई आदेश प्राप्त नही होते हैं तो वह उस उपचार को रोक देने या हटा लेने की कार्यवाही कर सकता है ।

प्रत्येक रोगी के बारे में रजिस्टर की विषय-वस्तु की प्रतिलिपि कानून में नामित प्राधिकारी को भेजी जायेगी:

ऐसे प्रत्येक रोगी के बारे में जो प्राणांततः रुग्ण है, रजिस्टर की विषय-वस्तु की एक प्रतिलिपि, जिसमें वह सभी ब्यौरे होंगे जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है और लिये गये निर्णय होंगे, डाक्टर द्वारा, यथा स्थिति, स्वास्थ्य सेवा महानिदेशक या चिकित्सा सेवा निदेशक को एक साथ संसूचित की जानी चाहिये और उसकी पहुंच प्राप्त करनी चाहिये । उक्त प्राधिकरियों को भी ऐसी जानकारी गोपनीय रखनी चाहिये ।

चिकित्सा परिषद के मार्गनिर्देशों का अनुपालन:

डाक्टरों और विशेषज्ञों को भारतीय चिकित्सा परिषद द्वारा निहित मार्गनिर्देशों के अनुरुप ही कार्य करना होगा ।

अक्षम रोगियों का और उन रोगियों की दशा में जिन्होने सज्ञान निर्णय नही लिया है संक्षिप्त विवरण :

यह रक्षोपाये संक्षिप्त में निम्नलिखित हैं -

(1) प्राणांततः रुग्ण रोगी के उपचार को रोक देने या हटा लेने के बारे में कोई भी निर्णय चिकित्सा व्यवसायी द्वारा तब तक नही लिया जायेगा जब तक कि, जैसा <u>बोलम</u> परिक्षण में अपेक्षित है, उसने तीन ऐसे विशेषज्ञों के निकाय की राय प्राप्त नही कर ली है जो रोगी की विशिष्ट रुग्णता के सम्बन्ध में तथा गंभीर दशा में सावधानी के विषय में विशेषज्ञ हैं ।

(2) ऐसे विशेषज्ञों का चयन डाक्टर यूँ ही अथवा अपने विवेकानुसार चिकित्सा व्यवसायियों में से नही कर सकेगा अपितु उनका चयन संघ राज्यक्षेत्रों के चिकित्सा सेवा महानिदेशक और राज्यों में औषधि निदेशकों द्वारा अथवा समतुल्य पर धारण कर रहे अन्य पदाधिकारियों में से किया जायेगा । ऐसे पैनलों में चिकित्सा विषेशज्ञों और गंभीर दशा में सावधानी विषयों के विशेषज्ञों को सम्मिलित किया जाना चाहिये और उन्हे कम से कम 20 वर्ष का अनुभव और अच्छी ख्याति होनी चाहिये ।

इन पैनलों काक उपयुक्त गजट में तथा संबधित वेबसाइट पर प्रकाशित किया जाना चाहिये ताकि उन तक पहुँच सुगम हो । ऐसे पैनलों में उनको अपवर्जित रखा जायेगा जिनके विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाहियां लम्बित हैं या जिन्हे वृतिक कदाचार का दोषी पाया गया हो । तीनों विशेषज्ञों की राय में विभिन्नता की दशा में बहुमत का निर्णय मान्य होगा । डाक्टर को ऐसे ही पैनल में से तीन विशेषज्ञों का चयन करना चाहिये और उनकी राय माननी चाहिये ।

(3) ऐसे प्रत्येक चिकित्सा व्यवसायी को जो चिकित्सा उपचार रोक देना या हटा लेने का निर्णय लेना है, एक रजिस्टर रखना होगा जिसमें ये ब्यौरे रहेंगे कि उसका यह समाधान क्यों हुआ है कि या क्यों नहीं हुआ है कि रोगी सक्षम है और चिकित्सा व्यवसायी यह क्यों मनाता है कि रोगी ने सज्ञान निर्णय लिया है या नही, पैनल के विशेषज्ञों की राय के ब्यौरे; रोगी की आयु, स्त्री है या पुरूष और पता तथा इस बात का ब्यौरा कि रोगी के सर्वोत्तम हित में क्या है तथा अन्य विशिष्टयाँ दर्ज की जायेंगी । इस जानकारी को गोपनीय रखना होगा ।

(4) चिकित्सा व्यवसायी को रोगी को, यदि वह होश में है, या उसके माता-पिता या नातेदारों के उपचार रोक देने या उठा लेने के बारे में अपने निर्णय की जानकारी देनी होगी और यदि वह उच्च न्यायालय जाना चाहते है तो उसे 15 दिन तक प्रतीक्षा करनी होगी या उच्च न्यायालय से यदि आदेश प्राप्त नहीं होते हैं तो वह अग्रसर नही हो सकेगा ।

(5) ऐसे प्रत्येक रोगी के संबंध में रजिस्टर की विषय-वस्तु की एक प्रतिलिपि जानकारी के लिये, स्वास्थ्य सेवा महानिदेशक या चिकित्सा सेवा महानिदेशक को यह निर्णय लेने के तुरन्त पश्चात देनी होगी कि वह उपचार को रोक देना या हटा लेना चाहता है और उसकी पावती प्राप्त करनी होगी । उपरोक्त प्राधिकारी का भी ऐसी जानकारी गोपनीय रखनी होगी ।

चिकित्सा उपचार को रोक देने या उठा लेने के बारे में डाक्टरों का निर्णय तभी विधिपूर्ण माना जायेगा तब उपरोक्त रक्षोपायों का अनुपालन किया गया है :

यदि उपरोक्त प्रक्रियाओं का पालन किया जाता है तो चिकित्सा व्यवसायी प्राणांततः रूग्ण रोगी की चिकित्सा रोक सकता है या हटा सकता है । अन्यथा वह उपचार को न तो रोक सकता है न हटा सकता है । सबसे महत्वपूर्ण यह है कि चिकित्सा व्यवसायी अधिनियम के उपबंधों के फायदों का, जो उपचार रोकने या हटाने को 'विधिपूर्ण' मानते हैं, केवल तब होगा जब उसने अधिनियम के उपबंधों का पालन किया है । यदि रक्षोपायों का अनुपालन नहीं किया जाता है तो चिकित्सा व्यवसायी फायदे का हक्दार नही है और उसके विरूद्ध सिविल या दांडिक कार्यवाही की जा सकती है । हमने इस सम्बन्ध में भारतीय दण्ड संहिता की धारा 299, 306 और धारा 76,79,81,88 और अन्य उपबंधों की परीक्षा की है ।

उच्च न्यायालय (खण्डपीठ) को तुरन्त घोषणायें मंजूर करने अथवा निर्देश जारी करने के लिये सशक्त बनाने वाले उपबन्ध :

डाक्टर द्वारा प्रस्तावित कार्यवाही की 'विधिमान्यता' के बारे में न्यायालय की घोषणायें अनेक देशो में प्रचलित हैं । यूनाइटेड किंगडम और कामन विधि के देशों में एक प्रक्रिया है जो मरीजों, माता-पिताओं या नातेदारों या निकट मित्रों या डाक्टरों या अस्पतालों को ऐसी घोषणा के लिये न्यायालय जाने में समर्थ बनाती है कि गंभीर रूप से रूग्ण रोगियो के उपचार को कतिपय परिस्थितियों मे रोक देना या हटा लेना इसलिये 'विधिपूर्ण' है क्योंकि वह उनके सर्वोत्तम हित में है । रोगी, माता-पिता या नातेदार ऐसी घोषणा के लिये भी न्यायालय में जा सकते है कि चिकित्सा उपचार जारी रखा जाये या उठा लिया जाये । इस प्रक्रिया का आशय न्यायालयों को ऐसे उदाहरण प्रस्तुत करने के लिये समर्थ बनाने के लिये हैं कि 'उचित चिकित्सीय व्यवहार' क्या है और जहॉ ऐसे पूर्वोदाहरण उपलब्ध हैं वहॉं प्रत्येक मामले में न्यायालय में दौड़ना वास्तव में आवश्यक नहीं है । वास्तव में, यूनाइटेड किंगडम और मित्र राष्ट्रो के न्यायालयों द्वारा निर्धारित ऐसा 'सर्वोत्तम चिकित्सीय व्यवहार' अब विभिन्न कानूनी सिद्धान्तों के रूप में स्पष्ट हो चुका है और उसे हमने प्रस्तावित विधेयक के रूप में सम्मिलित किया है ।

अतः हमने यह उपबन्ध करना ऐसे समर्थकारी उपबन्ध के रूप में रखना ठीक समझा है जिसके अन्तर्गत अधिकारी, माता-पिता, नातेदार या निकट मित्र या डाक्टर या अस्पताल उच्च न्यायालय की खण्ड पीठ के समक्ष ऐसी घोषणा के लिये प्रार्थना कर सकते हैं कि चिकित्सा उपचार को जारी रखने या रोक देने या उठा देने के बारे में

प्रस्तावित कदम को 'विधिपूर्ण' या 'अवैध' घोषित किया जाये । समय के महत्व को देखते हुए उच्च न्यायालयों को ऐसे मामलो का निर्णय अतिशीघ्र और 30 दिन के भीतर कर देना चाहिये । यूनाइटेड किंगडम में, निर्णय कभी-कभी तो आधा घण्टे के भीतर ही दे दिये जाते है यदि गंभीर आवश्यकता है और कारण बाद में दिये जाते हैं । ऐसी त्वरित प्रक्रिया अपनानी होगी क्योंकि न्यायालय जीवन-मरण की स्थिति पर विचार कर रहे हैं ।

एक बार उच्च न्यायालय द्वारा ऐसी घोषणा प्रदान करने के पश्चात कि डाक्टरों द्वारा प्रस्तावित उपचार को रोक देने या हटा देने की कार्यवाही 'विधिपूर्ण' है, उसी रोगी के संबंध में उन्हीं पक्षकारों के पक्ष में सिविल या दांडिक कार्यवाही में बाध्यकर होगी । जैसा कि न्यूजीलैण्ड में न्यायाधीश थोमस ने कथन किया है, इस उपबन्ध का आशय डाक्टरों और अस्पतालों को तंग करने से रोकना है ।

विधेयक में हमने यह स्पष्ट कर दिया है उच्च न्यायालय में जाना आवश्यक नहीं है यदि यह उपचार को रोक देने या उठा लेने की कार्यवाही न्यायालय में जाये बिना

किन्तु अधिनियम के उपबंधो का अनुपालन करते हुए की गई है तो उसे 'विधिपूर्ण' माना जायेगा और पश्चातवर्ती सिविल या दांडिक कार्यवाही में यह एक अच्छी प्रतिरक्षा होगी कि अधिनियम के उपबंधो का पालन हुआ था ।

<u>गोपनीयता:</u>

अंतर्राष्ट्रीय रूप से यह स्वीकार किया गया है कि रोगी, डॉक्टर, अस्पताल और विशेषज्ञों की पहचान गोपनीय रखी जानी चाहिये । अतः हमने यह प्रस्ताव रखा है कि कोर्ट की कार्यवाहियो में इन व्यक्तियों या निकायों को अंग्रेजी की वर्णमाला के अक्षरों के रूप में वर्णित किया जाना चाहिये और कोई भी, जिसके अंतर्गत मीडिया भी है, उनके नामों को प्रकट या प्रकाशित नही कर सकेगा । मामले के निपटारे के बाद भी पहचान को प्रकट करने की अनुमति नहीं है ।

<u>भारतीय चिकित्सा परिषद द्वारा जारी किये गए मार्ग निर्देश</u> :

भारतीय चिकित्सा परिषद को चिकित्सा उपचारों को रोक देने या हटा लेने से संबधित मार्ग निर्देश तैयार और प्रकाशित करने चाहिये । उक्त परिषद गंभीर दशा सावधानी और चिकित्सा विषयों के अन्य विशेषज्ञों के निकायों से परामर्श कर सकती है और उनके मार्ग निर्देशो को केन्द्रीय गजट में या भारतीय चिकित्सा परिषद की

वेबसाइट पर प्रकाशित कर सकती है । उन मार्ग निर्देशों में समय-समय पर संशोधन किये जा सकते हैं ।

अग्रिम चिकित्सा निर्देश और चिकित्सा पावर ऑफ अर्टनी शून्य/अवैध होगें :

हमने यह प्रस्ताव रखा है कि अग्रिम चिकित्सा निर्देश (जीवन वसीयते) तथा चिकित्सा पावर ऑफ अर्टनी निष्प्रभावी होंगे और शून्य/अवैध माने जायेंगे क्योंकि उनका आसानी से दुरूपयोग किया जा सकता है और अवांछित मुकदमेबाजी पैदा हो सकती है । हमने अध्याय VII मे इसके निमित्त विस्तृत कारण दिये हैं।

विधेयक के प्रारूप में, जो इस रिपोर्ट के साथ सलंग्न है, ये हमारी मूल सिफारिशे हैं ।

रिपोर्ट मे विस्तृत साहित्य सम्मिलित है जिसके अर्न्तगत निर्णीत विधि और विभिन्न देशो के, जैसे, यू.के, यू.एस.ए, कनाडा, आस्ट्रेलिया और उसके राज्यों, न्यूजीलैण्ड, साउथ अफ्रीका और अन्य देशों के कानून भी हैं । रिपोर्ट की एक प्रमुख बात यह भी है कि निर्णीत विधि का विस्तार से वर्णन किया गया है जिसमें चिकित्सा संबधी तथ्य और ऐसे चिकित्सा संबधी निर्णय हैं जो लिये गये हैं ताकि विधायक, वकील, न्यायाधीश, डाक्टर और अन्य सभी लोग लागू आधारभूत सिद्धान्तों की एकरूपता और अंतर्राष्ट्रीय दिशा को समझ सकें ।

हम डॉ एस. मुरलीधर, अंशकालिक सदस्य द्वारा इस रिपोर्ट को तैयार करने में किये गये विस्तृत शोध और प्रदान की गई सहायता की प्रशंसा करते हैं ।
सादर,

भवदीय,

(एम. जगन्नाथ राव)

श्री एच. आर. भारद्वाज
संघ के विधि और न्याय मंत्री,
भारत सरकार,
शास्त्री भवन, नई दिल्ली ।

विषय सूची

अध्याय संख्या	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
I	भूमिका	3 - 7
II	आत्महत्या, यूथानासिया, सहायता-जन्य आत्महत्या, आत्महत्या का दुष्प्रेरण, जीवन समर्थक उपचार रोकने के विषय के बारे मे भारत का उच्चतम न्यायालय	8 - 22
III	एअरडेल एन. एच. एस ट्रस्ट बनाम ब्लांड में हाउस ऑफ लार्डस द्वारा निर्णीत विधि के सिद्धान्त	23 - 43
IV	एअरडेल के पूर्व और पश्चात यू. के तथा आयरलैण्ड में निर्णीत अन्य मामले	44 - 222
V	संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रमुख पूर्वविधि (केस लॉ) तथा कानून	223 - 272
VI	कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड और साउथ अफ्रीका में विधिक स्थिति	273 - 350
VII	भारत में लागू विधिक सिद्धान्त तथा भारतीय दंड संहिता 1860 के अन्तर्गत लागू पैनल	351 - 462
VIII	सिफारिशों का संक्षिप्त विवरण	463 - 480
अनुलग्नक	प्रस्तावित विधेयक का प्रारूप, अर्थात, "प्राणांततरूग्ण रोगियों का चिकित्सीय उपचार" (रोगियों और चिकित्सा व्यवसायियों का संरक्षण) विधेयक, 2006	481 - 497

अध्याय - I

भूमिका

"इस रिपोर्ट का शीर्षक पढ़ते ही लोगों को ऐसा लगता है मानो हम 'यूथानासिया' अथवा 'सहायता- जन्य आत्महत्या' पर चर्चा कर रहे हैं । किन्तु हम प्रारम्भ में ही यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि 'यूथानासिया' अथवा 'सहायता-जन्य आत्महत्या' अभी भी अवैध हैं और हम एक भिन्न विषय पर, अर्थात, ' प्राणांततः रुग्ण रोगियों के 'जीवन प्रदायी उपायों को हटाने' के विषय में विचार कर रहे है तथा विश्व भर में, सभी देशों में, उन्हें हटाना 'विधिपूर्ण' माना जाता है ।"

अप्रैल 2005 की सेमिनार

इण्डियन सोसाइटी ऑफ क्रिटिकल केयर मेडिसन, मुम्बई, ने भारत के विधि आयोग से निवेदन किया था कि आयोग 27 अप्रैल 2005 को नई दिल्ली में आयोजित "जीवन-समाप्ति के प्रश्न" विषय पर सेमिनार में भाग ले जिसके मुख्य अतिथि भारत के विधि और न्याय मंत्री श्री एच. आर भारद्वाज थे। सेमिनार में चिकित्सा विशेषज्ञों, विधि विशेषज्ञों और मीडिया कर्मियों ने भाग लिया था तथा "मृत्युप्रायः रोगियों के जीवन समर्थक उपायों का रोका जाना" से संबधित प्रश्नों पर विचार विमर्श हुआ था। यह स्पष्ट था कि उपरोक्त विषय में, सामाजिक प्रश्नों के अतिरिक्त, अनेक कानूनी, चारित्रिक, धार्मिक और नैतिक प्रश्न भी जुड़े हुये थे । सेमिनार का आयोजन यू. एस. ए. में टेरीशियागो मामला (जीवन समर्थक तंत्र का रोका जाना) और आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय में वैंकटेश के मामले (अंग प्रत्यारोपण) के संदर्भ में किया गया था । इण्डियन

सोसायटी ऑफ क्रिटिकल मेडिसन ने 'गहन चिकित्सा विशेषज्ञों' (इनटेनसिव केयर स्पेशलिस्ट) के लिये इन विषयों में मार्ग दर्शक सिद्धान्त विकसित करने में पहल की थी। सोसायटी का यह मत था कि हमारे जीवन समाप्ति के विषय पर समुचित विधि विकसित करने की आवश्यकता थी।

आदरणीय विधि और न्याय मंत्री श्री एच. आर भारद्वाज नेइस बात से स्वीकार किया कि कुछ न कुछ कानूनी तंत्र विकसित करने की आवश्यकता थी। वक्ताओं में भारतीय विधि आयोग के अध्यक्ष भारत के उच्चतम न्यायालय के वरिष्ठ एडवोकेट श्री एस. बाला कृष्णन, सोसायटी के अध्यक्ष डॉ. राम इ. राजागोपालन, सोसायटी के नवनिर्वाचित अध्यक्ष डॉ आर. के मणी और सोसायटी के सचिव डॉ आर. के चावला थे। वरिष्ठ डाक्टरों ने बड़ी संख्या में सेमिनार में भाग लिया और मृत्युप्रायः रोगियों से 'जीवन समर्थक उपायों को रोक देना' विषय पर विधि की आवश्यकता पर बल दिया। उनकी मुख्य आशंका यह थी कि यदि डाक्टर जीवन सर्मथक उपायों को रोक देने की जोखिम लेते हैं तो इस बात की संभावना बनी रहेगी कि उनको भारतीय दंड संहिता 1860 की धारा 306 के अर्न्तगत आत्महत्या के 'उद्दीपन' के लिये आरोपित किया जा सकता है।

इस सेमिनार में इस प्रस्ताव को स्वीकार किया गया कि भारत का विधि आयोग 'जीवन समर्थक उपायों का रोका जाना' विषय पर एक पेपर तैयार करें। किन्तु, आयोग ने शीध्र ही यह महसूस किया कि डाक्टरों के समक्ष जो मामले थे उनमें से अधिकतर से केवल विधि के प्रश्न उत्पन्न हो रहे थे। क्योंकि यह विषय केवल विधि के प्रश्नों से संबंधित था अतः आयोग ने एक अंतिम रिपोर्ट तैयार करने का निर्णय लिया।

जीवन समर्थक उपायों का रोका जाना यूथनासिया अथवा सहायता जन्य आत्महत्या से भिन्न है :

सबसे पहली बात जिस पर ध्यान दिया जाना चाहिये यह है कि रोगियों के 'जीवन समर्थक उपायों का रोका जाना' यूथानासिया अथवा सहायता-जन्य आत्महत्या से भिन्न है। ऐसे रोगियो के, जो गंभीर अवस्था में हैं या लम्बे समय से कोमा में हैं, जीवन समर्थक उपायों को रोके जाने के विषय में, विभिन्न देशों में विधि बनाने वालों का ध्यान आकर्षित किया है। कुछ देशों में ऐसे कानून है और अनेक चिकित्सा परिषदों ने ऐसे मार्गनिर्देश जारी किये हैं और न्यायालयों के निर्णय भी बड़ी संख्या में हैं। इस विषय पर वृहत् साहित्य है जिसके अर्न्तगत अनेक विधि आयोग रिपोर्ट भी है। हमारे देश में आज यह स्थिति है कि आत्महत्या करने का प्रयास भारतीय दंड संहिता की धारा 309 के अर्न्तगत एक अपराध है और आत्महत्या का उद्दीपन या उत्प्रेरण भी धारा 306 के अर्न्तगत अपराध है। 'उद्दीपन' शब्द की परिभाषा दण्ड संहिता की धारा 107 में अलग से दी गई है।

'यूथानासिया' लाइलाज बीमारियों से ग्रस्त किसी व्यक्ति को कष्ट रहित मृत्यु कारित करने का कृत्य है। इसे 'दयापूर्ण जीवन हरण' भी कहते हैं।

'सहायता-,जन्य आत्महत्या' तब कही जाती है जब डाक्टर ऐसे रोगी के निवेदन पर, जो कष्ट सहने में असमर्थ है, ऐसे रोगी को उसके जीवन का अंत करने में समर्थ बनाने के लिये औषधियाँ देकर सहायता करना है। हमारे देश में, और अनेक अन्य देशों में भी (कुछ अपवादों सहित) 'यूथानासिया' और 'सहायता-जन्य आत्महत्या' अपराध हैं।

/इस रिपोर्ट में हमारा यह मत है कि, 'यूथानासिया' और 'सहायता जन्य आत्महत्या' हमारी विधि के अन्तर्गत अपराध बने रहने चाहिये । अतः हमारी जॉच का क्षेत्र 'जीवन समर्थक उपायों का रोका जाना' की बावत् लागू विभिन्न विधिक सिद्धान्तों तथा उस रीति और परिस्थितियों के सुझाव तक सीमित है जिससे या जिनमें चिकित्सा व्यवसायी जीवन समर्थक उपायों को रोक देने का निर्णय तब ले सकते हैं जब ऐसा करना रोगी के 'सर्वोत्तम हित' में हो । इसके अतिरिक्त, यह प्रश्न भी उठता है कि किन परिस्थितियों में कोई रोगी उपचार लेने से इन्कार कर सकता है और जीवन समर्थक उपायों के रोके जाने या उठा लिये जाने की मांग कर सकता है यदि ऐसा करना सज्ञात निर्णय पर आधारित है।

इस संदर्भ में, "रोगी" के लिये पर्याप्त रक्षोपायों को प्रस्तावित करना भी आवश्यक हो जाता है जिसे कि जीवन समर्थक उपायों को रोकने का निर्णय लेने वाले डाक्टरों के लिये प्रस्तावित प्रक्रिया का किसी व्यक्ति द्वारा, जिसके अतंर्गत रोगी या रोगी के नातेदार या डाक्टर या ऐसे अस्पताल भी आते हैं जहॉ रोगी का उपचार चल रहा है, इसका दुरूपयोग नहीं किया जाये ।

इण्डियन सोसाइटी ऑफ क्रिटिकल केयर मेडिसन ने चिकित्सा व्यवसायियों के उपयोग के लिये अनेक मार्गनिर्देश प्रस्तुत किये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय चिकित्सा परिषद ने अब तक कोई मार्गनिर्देश तैयार नहीं किये हैं ।

विधि आयोग ने अपनी 42 वीं रिपोर्ट में दण्ड संहिता की धारा 309 को हटाने की सिफारिश की थी जिसके अतंर्गत 'आत्महत्या का प्रयास' एक अपराध है । हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि इस रिपोर्ट में हमारा सम्बन्ध इस प्रश्न से नहीं है किन्तु हम

केवल मृत्युप्रायः रोगियों के 'जीवन समर्थक उपायों का रोका जाना' विषय पर विचार कर रहे हैं ।

<u>स्वीकार किये गये विधिक सिद्धांतो का इस रिपोर्ट में नई पद्धति से प्रस्तुतीकरण</u> :

हमें ऐसा लगा कि इस रिपोर्ट में हमें रिपोर्ट के प्रस्तुतीकरण की सामान्य पद्धति से, जिसे विधि आयोग ने अन्य रिपोर्टो में अपनाया है, हटकर चलना होगा । जीवन समर्थक पद्धतियों को रोकने के बारे में लागू विधिक सिद्धांतो को तब तक नहीं समझा जा सकता जब तक कि पाठक को उन प्रमुख मुकदमों के तथ्यों की जानकारी न हो जिनमें विधि के सिद्धांत अधिकथित किये गये हैं । इसके अतिरिक्त, अनेक विधि रिपोर्ट चिकित्सा व्यवसायियों की पहुँच से बाहर हैं । वास्तव में, कुछ विधि रिपोर्ट, जिनका उल्लेख हमने किया है, विधि व्यवसाय के सदस्यों अथवा न्यायाधीशों को आसानी से उपलब्ध नहीं हैं । अतः हमने प्रत्येक मुकदमे की विस्तारपूर्वक चर्चा करने का निश्चय किया जिससे कि विधि निर्माता, रोगी या उनके नातेदार, डॉक्टर, वकील और न्यायाधीश यह समझ सकें कि किन परिस्थितियों में विधि के किसी विशिष्ट सिद्धांत को अधिकथित किया गया था । हमें लगा कि तथ्यों से परे हटकर किसी विधि सिद्धांत का उल्लेख मात्र किन्ही विशेष तथ्यों में विधि सिद्धांतों को लागू करने के बारे में सही ज्ञान प्रदान नहीं कर सकता । हम आशा करते हैं कि इस रिपोर्ट में हमने जिस पद्धति को अपनाया है उससे हर किसी को संतोष होगा ।

अपनी सिफारिशों को विधायी स्वरूप में प्रस्तुत करने के उद्देश्य से हमने इस रिपोर्ट के साथ अनुलग्नक के रूप में एक विधेयक का प्रारूप, अर्थात, "प्राणांततःरूग्ण रोगियों का चिकित्सीय उपचार (रोगियों, चिकित्सा व्यवसायियों का सुरक्षा) विधेयक" संलग्न किया है ।

आत्महत्या, यूथानासिया, सहायताजन्य आत्महत्या, आत्महत्या का दुष्प्रेरण, जीवन समर्थक उपचार को बन्द कर देने के बारे में भारत का उच्चतम न्यायालय

उच्चतम न्यायालय को ज्ञानकौर बनाम पंजाब राज्य: 1996 (2) एस सी सी 648 में "आत्महत्या, यूथानासिया, सहायताजन्य आत्महत्या, आत्महत्या का दुष्प्रेरण, जीवन समर्थक उपचार को बन्द कर देने के" विषयों पर चर्चा करने का अवसर प्राप्त हुआ था ।

उच्चतम न्यायालय ने इस संबंध में भारतीय दण्ड संहिता 1860 के कतिपय उपबंधों का उल्लेख किया है, जो निम्नलिखित है :

(क) भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धारायें 107, 306 और 309

दण्ड संहिता की धारा 306, जो 'आत्महत्या का दुष्प्रेरण' के बारे में है, निम्नलिखित रूप में है :

"धारा 306 : यदि कोई व्यक्ति आत्महत्या करे, तो जो कोई ऐसी आत्महत्या का दुष्प्रेरण करेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से , जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकेगी, दण्डित किया जायेगा और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा ।"

धारा 107 में 'किसी बात का दुष्प्रेरण' की परिभाषा निम्नलिखित रूप में दी गई है :

" वह व्यक्ति किसी बात के किऐ जाने का दुष्प्रेरण करता है, जो -

पहला : उस बात को करने के लिये किसी व्यक्ति को उकसाता है, अथवा

दूसरा : उस बात को करने के लिये किसी षडयंत्र में एक या अधिक अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों के साथ सम्मिलित होता है, यदि उस षडयंत्र के अनुसरण में, और उस बात को करने के उद्देश्य से, कोई कार्य या अवैध लोप घटित हो जाए, अथवा

तीसरा : उस बात के लिए किए जाने में किसी कार्य या अवैध लोप द्वारा साशय सहायता करता है।

स्पष्टीकरण 1 : जो कोई व्यक्ति जानबूझकर दुर्व्यपदेशन द्वारा, या तात्विक तथ्य, जिसे प्रकट करने के लिये वह आबद्ध है, जानबूझकर छिपाने द्वारा, स्वेच्छया किसी बात का किया जाना कारित या उपाप्त करता है अथवा कारित या उपाप्त करने का प्रयत्न करता है, वह उस बात का किया जाना उकसाता है, यह कहा जाता है।

स्पष्टीकरण 2 : जो कोई या तो किसी कार्य के किए जाने से पूर्व या किए जाने के समय, उस कार्य के किए जाने को सुकर बनाने के लिये कोई बात करता है और तद्द्वारा उसके किए जाने को सुकर बनाता है, वह उस कार्य के करने में सहायता करता है, यह कहा जाता है।"

संहिता की धारा 309 में 'आत्महत्या करने का प्रयास' अपराध है और यह धारा निम्नलिखित रूप में है :

"धारा 309 : जो कोई आत्महत्या करने का प्रयत्न करेगा, और उस अपराध के करने के लिए कोई कार्य करेगा, वह सादा कारावास से, जिसकी अवधि एक वर्ष तक की हो सकेगी, (या जुर्माने से, या दोनों से दण्डित किया जाएगा ।"

इस प्रकार, 'आत्महत्या करने का प्रयास' एक अपराध है, जिसके परिणामस्वरूप एक वर्ष की अवधि तक की सजा या जुर्माना या दोनों हो सकते हैं ।

धारा 309 पर विचार करते समय भारत के उच्च न्यायालय के उन दो महत्वपूर्ण निर्णयों का उल्लेख आवश्यक है, जिनमें से प्रथम मामले में, अर्थात <u>पी. रथीनम</u> बनाम <u>भारत का संघ</u> 1994 (3) एस सी सी 394 में, उच्चतम न्यायालय के दो न्यायाधीशों की पीठ ने धारा 309 को असंवैधानिक कहकर अभिखण्डित कर दिया था तथा दूसरे मामले में, अर्थात, <u>ज्ञानकौर</u> बनाम <u>पंजाब राज्य</u>: 1996 (2) एस सी सी 648 में , एक संविधान पीठ ने पूर्वत्तर निर्णय को उलट दिया था और धारा 309 की विधिमान्यता को विधिमान्य ठहराया था ।

दोनों निर्णयों में भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के उपबंध का निर्वचन किया गया था जो इस बात की गारंटी देता है कि किसी भी व्यक्ति को उसके जीवन की व्यक्तिगत स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार से भिन्न वंचित नहीं किया जायेगा । दोनों मामलों में यह अधिनिर्णीत हुआ कि धारा 309, किसी भी दशा में, भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन नहीं करती है।

हम <u>पी. रथीनम</u> के मामले की चर्चा नहीं करना चाहते क्योंकि उसे <u>ज्ञानकौर</u> के मामले में उलट दिया गया था । किन्तु यह कहना आवश्यक है <u>पी. रथीनम</u> में केवल

धारा 309 'आत्महत्या करने का प्रयास' प्रश्नगत थी जबकि दूसरे मामले में, अर्थात, ज्ञानकौर में धारा 306 (आत्महत्या का दुष्प्रेरण) तथा धारा 309 (आत्महत्या करने का प्रयास) की विधिमान्यता प्रश्नगत थी । ज्ञानकौर में, अपीलार्थियों ने, जिन्हें 'आत्महत्या का दुष्प्रेरण' के लिये धारा 306 के अधीन दोष सिद्ध पाया गया था, यह तर्क रखा था कि यदि 'आत्महत्या करने का प्रयास' से संबधित धारा 309 असंवैधानिक थी तो उन्हीं कारणों से धारा 306 भी, जिसका संबध 'आत्महत्या का दुष्प्रेरण' से है, असंवैधानिक मानी जानी चाहिये । किन्तु उच्चतम न्यायालय ने धारा 306 और धारा 309 दोनों की ही संवैधानिक वैधता के पक्ष में निर्णय दिया था ।

उच्चतम न्यायालय ने ज्ञानकौर में स्पष्ट कर दिया था कि 'यूथानासिया' और 'सहायता-जन्य आत्महत्या' भारत में विधि मान्य नहीं हैं और दण्ड संहिता, 1860 के उपबंध इन कृत्यों से आकर्षित हैं । किन्तु प्रश्न यह है कि क्या ज्ञानकौर के मामले में, जिनमें धारा 306 और 309 को विधिमान्य माना गया है, ऐसी कोई बात है जिसका संबंध प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, 'जीवन समर्थक उपायों के रोके जाने से है ?

(अ) सौभाग्य से, धारा 306 (आत्महत्या का दुष्प्रेरण) के संदर्भ में ज्ञानकौर में ऐसे कुछ उपयोगी

कथन हैं जो जीवन समर्थक उपायों के रोके जाने के बाबत् हैं । आत्महत्या के दुष्प्रेरण के संबंध में प्रस्तुत तर्क के संदर्भ में उच्चतम न्यायालय के समक्ष एअरडेल एन. एच. एस. ट्रस्ट बनाम ब्लांड 1993(1) आल ई आर 821 में हाउस ऑफ लार्डस के निर्णय को उद्धृत किया गया था । उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित रूप में (पृष्ठ 665) जीवन समर्थक उपायों के रोके जाने और यूथानासिया के बीच में जो अंतर है उसका उल्लेख किया था ।

"एअरडेल एन. एच. एस ट्रस्ट बनाम ब्लांड ऐसा मामला था जिसका संबंध चिकित्सक द्वारा जीवन बनाये रखने के लिये कृत्रिम उपायों के रोके जाने से था। यद्यपि चिकित्सक सहायता-जन्य आत्महत्या या यूथानासिया के मामले की चर्चा करना आवश्यक नहीं है, किन्तु वकील संघ की ओर से जिस निर्णय को उद्‌धृत किया गया है उसकी संक्षेप में चर्चा की जा सकती है। रोगी की निरन्तर जड़ दशा बने रहने के संदर्भ में, जीवन की सर्वोपरिता के सिद्धांत के बारे में, जो राज्य की चिंता का विषय है, यह उल्लेख किया गया था कि वह आत्यंतिक (एबसोल्यूट) नहीं है। ऐसे मामलों में भी, उन स्थितियों के बीच विद्यमान महत्वपूर्ण अंतर को बताया गया था जिनमें चिकित्सक अपने रोगी को ऐसी देखभाल के उपचार उपलब्ध कराने के लिये, जिससे उसका जीवन बढ़ सकता था या बढ़ जाता, जारी रखने या जारी न रखने का निर्णय लेता है और ऐसे मामले जिनमें वह अपने रोगी के जीवन को सार्थक रूप से समाप्त करने का, उदाहरण के लिए प्राणांतक औषधि देने का, निर्णय लेता है। यह अंतर बताने के पश्चात न्यायालय ने निम्नलिखित अधिकथन किया.... ।"

(रेखांकित अंश पर जोर दिया गया है)

तथा माननीय न्यायाधीशों ने एअरडेल से निम्नलिखित पंक्तियों को उद्‌धृत किया है :

"किन्तु डॉक्टर को अपने रोगी के जीवन का अंत करने के लिये औषधि देना विधिपूर्ण नहीं है भले ही ऐसा कदम उसके कष्टों का अंत करने की मानवीय इच्छा के कारण अपनाया जाये और कष्ट कितना भी बड़ा हो (देखिये आर बनाम कोक्स (18.9.1992, न्या. ओगनेल द्वारा विनचेस्टर के क्राउन कोर्ट में दिया

गया अरिपोर्टित निर्णय) । ऐसा कृत्य रुबिकोन की उस सीमा रेखा को पार करने जैसा है जो एक ओर जीवित रोगी की देखभाल और दूसरी ओर यूथानासिया, अर्थात रोगी के कष्ट को दूर करने या समाप्त करने के लिये उसके जीवन का अंत करने के बीच है । यूथानासिया कामनविधि में विधिपूर्ण नहीं है । यद्यपि यह भलिभाँति विदित है कि हमारे समाज के अनेक उत्तरदायी सदस्यों का यह विश्वास है कि यूथानासिया को विधिमान बनाया जाना चाहिये, मुझे विश्वास है कि इस परिणाम को केवल ऐसी विधि बनाकर प्राप्त किया जा सकता है जो ऐसी जनतांत्रिक इच्छा को प्रगट करे कि हमारी विधि में इतना बुनियादी परिवर्तन किया जाना चाहिये, तथा, यदि ऐसी विधि बनायी जाती है तो यह सुनिश्चित करना होगा कि इस प्रकार की कानूनी मृत्यु केवल तब दी जा सकती है जब वह समुचित अधीक्षण और नियंत्रण के अधीन दी जाये ।"

(रेखांकित अंश पर जोर दिया गया है)

एअरडेल में से उपरोक्त उद्धरण देने के पश्चात् उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित कथन किया है: (पृष्ठ 665)

> "ऐसा परिवर्तन लाने की वांछनीयता विधान मण्डल का कृत्य है जो संभावित दुरुपयोग को रोकने के लिये पर्याप्त रक्षोपायों के अधीन समुचित विधि बना सकता है ।"

परिणाम यह है कि, उच्चतम न्यायालय, यूथानासिया जिसे विधि बनाकर विधिपूर्ण ठहराया जा सकता है, तथा 'जीवन समर्थक उपायों को उठा लेना' के बीच अन्तर को स्पष्ट करने के पश्चात हाउस ऑफ लार्डस से इस बात पर सहमत होती है कि ऐसे रोगी के संबंध में जो निरन्तर जड़ दशा में है और यह सब रोगी के लिये आगे

फायदा पद नहीं है कि 'कृत्रिम उपायों' को 'केवल जीवन बनाये रखने के लिये ही आरंभ किया जाये या जारी रखा जाये', 'जीवन समर्थक उपायों का उठा लिया जाना' अनुज्ञेय है । न्यायालय ने यह बात भी कही है कि 'जीवन की सर्वोपरिता', जिसकी चिंता राज्य को करनी होती है, 'आत्यंतिक' सिद्धांत नहीं है ।

(आ) ज्ञानकौर में किये गये उन कतिपय संप्रेक्षणों का भी हम उल्लेख करना चाहेंगे । जहां पर चर्चा आयी है कि स्वाभिमान के साथ 'मृत्यु का अधिकार' क्या उस दशा में अनुच्छेद 21 के संदर्भ में स्वाभिमान के साथ 'जीवन के अधिकार' का भाग है जहां सामान्य जीवन का मृत्यु के कारण अन्त सुनिश्चित है तथा स्वाभाविक मृत्यु की प्रक्रिया आरंभ हो चुकी है । न्यायालय ने कहा : (पृष्ठ 661)

> "प्राणांततःरूग्ण या निरन्तर जड़ दशा में स्थित मरणासन्न व्यक्ति के संदर्भ में, यह प्रश्न खड़ा होता है कि क्या उन परिस्थितियों में उसके जीवन का मृत्यु से पूर्व ही अन्त करने की अनुमति दी जा सकती है । ऐसे मामले स्वाभिमान के साथ" 'मृत्यु का अधिकार' की परिधि में स्वाभिमान के साथ 'जीवन के अधिकार' के भाग के रूप में उस दशा में आते हैं, जहाँ स्वाभाविक जीवन का अन्त करके मृत्यु निश्चित है और आसान है और स्वाभाविक मृत्यु की प्रक्रिया आरंभ हो चुकी है ।"

उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट है कि उच्चतम न्यायालय ने एअरडेल में हाउस ऑफ लार्डस द्वारा किये गए विधि के इस कथन को स्वीकार किया है कि 'यूथानासिया' अवैध है और उसकी अनुमति, अर्थात, लाइलाज बीमारी से कष्ट पा रहे रोगी को कष्ट से मुक्ति देने के लिये उसे मार देने का कार्य केवल विधान मण्डल द्वारा ही अनुमत है

(और ऐसा समुचित अधीक्षण और नियंत्रण के अधीन होना चाहिये) अन्यथा यह विधिपूर्ण नहीं है । 'सहायता-जन्य आत्महत्या' वह स्थिति है जहां कष्ट पा रहा रोगी डॉक्टर से निवेदन करता है और डॉक्टर उसका जीवन समाप्त करने के लिये औषधि द्वारा ऐसे रोगी की सहायता करता है । कानून इसकी भी अनुमति नहीं देता । उच्चतम न्यायालय ने पृष्ठ 661 पर आगे निम्नलिखित कथन किया है :

> "यह मामले जीवन को समाप्त करने के नहीं है अपितु स्वाभाविक मृत्यु की प्रक्रिया को, जो पहले ही आरंभ हो चुकी है, परिणाम तक पहुँचाने के लिये गति देने के हैं । चिकित्सक सहायता जन्य जीवन को समाप्त करने की अनुमति देने के ऐसे मामलों में भी अभी बहस अपूर्ण है । इस बात पर पुनः बल देना पर्याप्त है कि निश्चित स्वाभाविक मृत्यु के दौरान कष्ट की अवधि को कम करने के ऐसे मामलों में जीवन का अन्त करने की अनुमति देने के विचार के समर्थन में यह तर्क अनुच्छेद 21 का निर्वचन करने में उपलब्ध नहीं है कि इस अनुच्छेद में जीवन की सामान्य अवधि को कम करने का अधिकार सम्मिलित है । "

अन्तिम वाक्य को 'सहायता-जन्य आत्महत्या' के सन्दर्भ में समझना होगा न कि जीवन समर्थक उपायों को रोक देने या हटा देने के सन्दर्भ में । जहाँ रोगी प्राणांततःरुग्ण है या निरन्तर जड़ दशा में है, वहां उन परिस्थितियों में, जीवन समर्थक उपायों को रोककर या उठाकर उसके जीवन की मृत्यु से पूर्व समाप्ति स्वाभिमान के साथ जीवन के अधिकार का भाग है और, तब जब स्वाभाविक रूप से जीवन के अन्त के परिणामस्वरूप मृत्यु निश्चित है और आसन्न है तथा स्वाभाविक मृत्यु की प्रक्रिया आरंभ हो चुकी है, क्या ऐसा करने की अनुमति है ।

एअरडेल एन. एच. एस ट्रस्ट बनाम ब्लांड (1993 (1) आल ई आर 821(एच. एल) में निर्णीत 'जीवन को बनाये रखने के लिये कृत्रिम उपायों का चिकित्सक द्वारा उठा लेना या हठा लेना' के मामले का विषय यूथानासिया या चिकित्सक-सहायता-जन्य आत्महत्या से भिन्न है । इसका सम्बन्ध जीवन को बनाये रखने के लिये चिकित्सक द्वारा कृत्रिम उपायों को हठा लेने से है । ऐसे रोगी के संदर्भ में, जो निरन्तर जड़ दशा में है और जिसका उससे कोई फायदा नहीं है, जीवन की सर्वोपरिता का सिद्धान्त, जिसका संबंध राज्य से है, आत्यंतिक/पूर्ण नहीं माना गया है । ऐसे मामलों में भी, उन मामलों के बीच जिनमें (क) चिकित्सक उपचार या देखभाल की व्यवस्था को रोक देने या जारी न रखने का निश्चय करता है और (ख) उन मामलों में जहां चिकित्सक रोगी के जीवन को सक्रिय रूप से समाप्त कर देने का निश्चय करता है, उदाहरण के लिये, मरणान्तक औषधि देकर,गहरा अन्तर है । प्रथम प्रकार के मामले में अनुमति है किन्तु द्वितीय मामलों में नहीं है । जीवित रोगी की देखभाल 'यूथानासिया का आश्रय लेने के लिये रूबीकोन की सीमा रेखा को लांघने से भिन्न है । (एस.सी.सी का पैरा 40)

यदि ज्ञानकौर के मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय से, जिसमें एअरडेल एन. एच. एस ट्रस्ट बनाम ब्लांड का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है, यदि ऐसे मार्ग दर्शक सिद्धांन्त बनाये जा सकते है तो यू. के. और अन्य देशों में निर्धारित इन सिद्धान्तों को स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं है कि कब किसी रोगी या डाक्टर को श्वासप्रणाली या कृत्रिम पोषण या अन्य जीवन समर्थक उपचारों को रोक देने का निर्देश देना विधिपूर्ण होगा । अतः हम यू. के. और अन्य देशों में निर्णीत विधि के सिद्धान्तों के बारे में विस्तार से चर्चा करेंगे । अन्य देशों में निर्णीत विधि का उल्लेख करने के पश्चात हम भारतीय दण्ड संहिता और अपकृत्य विधि के उपबन्धों की ओर वापस लौटेंगे ।

(ख) भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धाराएं 87, 88 और 92

दण्ड संहिता की ये धाराएं भी सुसंगत हैं और उनकी सुसंगता उन विभिन्न निर्णयों में देखी जा सकती है जिनका विश्लेषण आगे के अध्यायों में किया गया है। इस समय हम केवल इन धाराओं का उल्लेख करेंगे ।

संहिता की धारा 87 सुसंगत है। इस धारा का विषय 'अपराधीय आशय के बिना या अन्य हानि रोकने के लिये किया गया ऐसा कार्य है जिससे हानि कारित हो सकती है' । यह धारा निम्नलिखित शब्दों में है : -

"87 सम्मति से किया गया कार्य जिससे मृत्यु या घोर उपहति कारित करने का आशय न हो और न उसकी सम्भाव्यता का ज्ञान हो :

कोई बात, जो मृत्यु या घोर उपहति कारित करने के आशय से न की गई हो और जिसके बारे में कर्त्ता को यह ज्ञात न हो कि उससे मृत्यु या घोर उपहति कारित होना संभाव्य है, किसी ऐसी अपहानि के कारण अपराध नहीं है जो उस बात से अठारह वर्ष से अधिक आयु के व्यक्ति को, जिसने वह अपहानि सहन करने की, चाहे अभिव्यक्त चाहे विवक्षित, सम्मति दे दी हो कारित करता है ; या कारित होना कर्त्ता द्वारा आशयित हो अथवा जिसके बारे में कर्त्ता को ज्ञात हो कि वह उपर्युक्त जैसे किसी व्यक्ति को, जिसने उस अपहानि की जोखिम उठाने की सम्मति दे दी है, उस बात द्वारा कारित होनी संभाव्य है ।

दृष्टांत : क और य आमोदार्थ आपस में पटेबाजी करने को सहमत होते है । इस सहमति में किसी अपहानि को, जो ऐसी पटेबाजी में खेल के नियम के विरूद्ध न होते

हुए कारित हो उठाने की हर एक की सम्मति विवक्षित है, और यदि क उचित पटेबाजी करते हुए य को उपहति कारित कर देता है, तो क कोई अपराध नहीं करता है।"

धारा 88 का संबंध 'किसी व्यक्ति के फायदे के लिये सम्मति से सदभावपूर्वक लिए गए कार्य से है' जो निम्नलिखित रूप से है :-

"88 किसी व्यक्ति के फायदे के लिए सम्मति से सदभावपूर्वक किया गया कार्य जिससे मृत्यु कारित करने का आशय नहीं है :-

कोई बात, जो मृत्यु कारित करने के आशय से न की गई हो, किसी ऐसी अपहानि के कारण अपराध नहीं है जो उस बात से किसी ऐसे व्यक्ति को, जिसके फायदे के लिये वह बात सदभावपूर्वक की जाए और जिसने उस अपहानि को सहने, या उस अपहानि को जोखिम उठाने के लिये चाहे अभिव्यक्त चाहे विवक्षित सम्मति दे दी हो, कारित हो या कारित करने का कर्त्ता का आशय हो या कारित होने की सम्भाव्यता कर्ता को ज्ञात है।

दृष्टांत : क, एक शल्य चिकित्सक, यह जानते हुए कि एक विशेष शस्त्रकर्म से य को, जो वेदनापूर्ण व्याधि से ग्रस्त है, मृत्यु कारित होने की सम्भाव्यता है किन्तु य की मृत्यु कारित करने का आशय न रखते हुए और सदभावपूर्वक य के फायदे के आशय से य की सम्मति से य पर वह शस्त्रकर्म करता है। क ने कोई अपराध नहीं किया है।"

धारा 92 का संबंध 'सम्मति के बिना किसी व्यक्ति के फायदे के लिये सदभावपूर्वक लिए गए कार्य' से है। यह धारा निम्नलिखित शब्दों में है :

"92 सम्मति के बिना किसी व्यक्ति के फायदे के लिये सदभावपूर्वक किया गया कार्य :

कोई बात, जो किसी व्यक्ति के फायदे के लिये सदभावपूर्वक यद्यपि उसकी सम्मति के बिना, कि गई है, देयी किसी अपहानि के कारण, जो उस बात से उस व्यक्ति को कारित हो जाए, अपराध नहीं है, यदि परिस्थितियाँ ऐसी हों कि उस व्यक्ति के लिये यह असम्भव हो कि वह अपनी सम्मति प्रकट करे या वह व्यक्ति सम्मति देने के लिये असमर्थ हो और उसका कोई संरक्षक या उसका विधिपुर्ण भारसाधक कोई दूसरा व्यक्ति न हो जिससे ऐसे समय पर सम्मति अभिप्राप्त करना सम्भव हो कि वह बात फायदे के साथ की जा सके :

परन्तु-

पहला - इस अपवाद का विस्तार साशय मृत्यु कारित या मृत्यु कारित करने का प्रयत्न करने पर न होगा ;

दूसरा - इस अपवाद का विस्तार मृत्यु या घोर उपहति के निवारण के या किसी घोर रोग या अंगशैथिल्य से मुक्त करने के प्रयोजन से भिन्न किसी प्रयोजन के लिये किसी ऐसी बात के करने पर न होगा, जिसे करने वाला व्यक्ति जानता हो कि उससे मृत्यु कारित होना सम्भाव्य है ;

तीसरा - इस अपवाद का विस्तार मृत्यु या उपहति के निवारण के प्रयोजन से भिन्न किसी प्रयोजन के लिये स्वेच्छया उपहति कारित करने या उपहति कारित करने का प्रयत्न करने पर न होगा ;

चौथा - इस अपवाद का विस्तार किसी ऐसे अपराध के दुष्प्रेरण पर न होगा जिस अपराध के किये जाने पर इसका विस्तार नहीं है ।

दृष्टांत : (क) य अपने घोड़े से गिर गया और मूर्छित हो गया । क, एक शल्य चिकित्सक, का यह विचार है कि य के कपाल पर शस्त्र क्रिया आवश्यक है । क, य की मृत्यु करने का आशय न रखते हुए, किन्तु सदभावपूर्वक य के फायदे के लिए य के स्वयं किसी निर्णय पर पहुँचने की शक्ति प्राप्त करने से पूर्व ही कपाल पर शल्यक्रिया करता है । क ने कोई अपराध नहीं किया ।

(ख) य को एक बाघ उठा ले जाता है । यह जानते हुए कि सम्भाव्य है कि गोली लगने से य मर जाए, किन्तु य का वध करने का आशय न रखते हुए और सदभावपूर्वक य के फायदे के आशय से क उस बाघ पर गोली चलाता है । क की गोली से य को मृत्युकारक घाव हो जाता है । क ने कोई अपराध नहीं किया ।

(ग) क, एक शल्य चिकित्सक, यह देखता है कि एक शिशु की ऐसी दुर्घटना हो गई है जिसका प्राणांतक साबित होना सम्भाव्य है, यदि शस्त्रकर्म तुरन्त न कर दिया जाए । इतना समय नहीं है कि उस शिशु के संरक्षक से आवेदन किया जा सके । क, सदभावपूर्वक शिशु के फायदे का आशय रखते हुए शिशु के अन्यथा अनुनय करने पर भी शस्त्रकर्म करता है क ने कोई अपराध नहीं किया ।

(घ) एक शिशु य के साथ क एक जलते हुए गृह में है। गृह के नीचे लोग एक कम्बल तान लेते हैं। क उस शिशु को यह जानते हुए भी सम्भाव्य है कि गिरने से वह शिशु मर जाए किन्तु उस शिशु को मार डालने का आशय न रखते हुए ओर सदभावपूर्वक उसे शिशु के फायदे के आशय से गृह-छत पर से नीचे गिरा देता है । यहाँ, यदि गिरने से वह शिशु मर भी जाता है, तो भी क ने कोई अपराध नहीं किया ।

स्पष्टीकरण : केवल धन सम्बन्धी फायदा वह फायदा नहीं है, जो धारा 88,89 और 92 के भीतर आता है ।"

(ड) संहिता की धारा 81 :

संहिता की धारा 81 भी सुसंगत है । यह धारा 'ऐसे कार्य जिससे अपहानि कारित होना सम्भाव्य है, किन्तु जो अपराधिक आशय के बिना और अन्य अपहानि के निवारण के लिये किया गया है । यह धारा निम्नलिखित है :

"81 कार्य जिससे अपहानि होना सम्भाव्य है, किन्तु जो आपराधिक आशय के बिना और अन्य अपहानि के निवारण के लिये किया गया :

कोई बात केवल इस कारण अपराध नहीं है कि वह यह जानते हुए की गई है कि उससे अपहानि कारित संभाव्य है, यदि वह अपहानि कारित करने के किसी आपराधिक आशय के बिना और व्यक्ति या संपत्ति को अन्य अपहानि का निवारण या परिवर्तन करने के प्रयोजन से सदभावपूर्वक की गई हो ।

स्पष्टीकरण : ऐसे मामले में यह तथ्य का प्रश्न है कि जिस अपहानि का निवारण या परिवर्तन किया जाना है क्या वह ऐसी प्रकृति की और इतनी आसन्न थी कि वह कार्य, जिससे यह जानते हुए कि उससे अपहानि कारित होना संभाव्य है, करने की जोखिम उठाना न्यायानुमत या माफी योग्य था ।

दृष्टांत : (क) क, जो एक वाष्प जलयान का कप्तान है, अचानक और अपने किसी कसूर या उपेक्षा के बिना अपने ऐसी स्थिति में पाता है कि यदि उसने जलयान का मार्ग नहीं बदला तो इससे पूर्व कि वह अपने जलयान को रोक सके वह बीस या तीस

यात्रियों से भरी नाव ख को अनिवार्यतः टकराकर डुबो देगा, और कि अपना मार्ग बदलने से उसे केवल दो यात्रियों वाली नाव ग को डुबाने की जोखिम उठानी पड़ता है, जिसको वह सम्भव्यतः बचाकर निकल जाए । यहाँ यदि क नाव ग को डुबाने के आशय के बिना और ख के यात्रियों के संकट का परिवर्जन करने के प्रयोजन से सदभावपूर्वक अपना मार्ग बदल देता है तो यद्यपि वह नाव ग को ऐसे कार्य द्वारा टकराकर डुबो देता है, जिससे ऐसे परिणाम का उत्पन्न होना वह संभाव्य जानता था, तथापि तथ्यतः यह पाया जाता है कि वह संकट, जिसे परिवर्जित करने का उसका आशय था, ऐसा था जिससे नाव ग डुबाने की जोखिम उठाना माफी योग्य है, तो वह किसी अपराध का दोषी नहीं है ।

(ख) क एक बड़े अग्निकांड के समय आग को फैलने से रोकने के लिये गृहों को गिरा देता है । वह इस कार्य को मानव जीवन या सम्पत्ति को बचाने के आशय से सदभावपूर्वक करता है । यहां, यदि यह पाया जाता है कि निवारण की जाने वाली अपहानि इस प्रकृति की और इतनी आसन्न थी कि क का कार्य माफी योग्य हे तो क उस अपराध का दोषी नहीं है ।"

हम, अध्याय VIII 'जीवन समर्थक प्रणाली को रोक देना' के बारे में इन उपबन्धों के लागू होने के संदर्भ में उन पर पुनः विचार करेंगे । किन्तु यह अन्य अध्यायों में तुलनात्मक विधि पर चर्चा करने के पश्चात किया जायेगा ।

अध्याय - III

एअरडेल एन. एच. एस ट्रस्ट बनाम ब्लांड में हाउस ऑफ लार्डस द्वारा निर्णीत विधि के सिद्धान्त :

एअरडेल के मामले में (1993)(1) आल ई आर 821 (एच. एल) हाउस ऑफ लार्डस द्वारा अधिकथित सिद्धान्तों का उल्लेख हमने अध्याय II में पहले भी किया है जिनमें एक ओर जीवन समर्थक उपायों को रोक देने तथा दूसरी ओर यूथानासिया और सहायता-जन्य आत्महत्या के बीच अन्तर का उल्लेख है । इस अन्तर को ज्ञानकौर के मामले में (1996 (2) एस सी सी 648) हमारे उच्चतम न्यायालय ने भी स्वीकार किया है ।

हम इस अध्याय में एअरडेल के तथ्यों और लार्डस द्वारा प्रकट किये गए विचार, विशेष रूप से लार्ड कीथ, लार्ड गॉफ ऑफ शिवेले तथा लार्ड ब्राउने विलकिंसन का उल्लेख करेंगे । तत्पश्चात हम एअरडेल में अधिकथित सिद्धान्तों के आधार पर यू. के. में निर्णीत अनेक अन्य मामलों का उल्लेख करेंगे ।

हम एअरडेल एन. एच. एस ट्रस्ट बनाम ब्लांड के प्रमुख निर्णय से आरंभ करेंगे है ।

एअरडेल एन. एच. एस ट्रस्ट बनाम ब्लांड: 1993(1) आल ई आर 821 : (यह शासकीय सालिसीटर द्वारा श्री ब्लांड का प्रतिनिधित्व करते हुए की गई अपील थी) ।

श्री ऐन्थनी ब्लांड एक दुर्घटना का शिकार हो गये थे और तीन वर्ष तक वह ऐसी दशा में थे जिसे 'परसिसटेंट वेजीटेटिव दशा' (पी. वी. एस) (अर्थात, निरन्तर जड़ दशा)

के नाम से जाना जाता है । यह दशा लम्बी अवधि तक ऑक्सीजन न मिलने के कारण सेरिब्रल कोरटेक्स के नष्ट हो जाने का परिणाम थी और कोरटेक्स एक जल समूह के रूप में परिणित हो गया था । कोरटेक्स मस्तिष्क का वह भाग है जो पहचान का और इन्द्रियों की क्षमता का श्रोत है । रोगी न कुछ देख सकता है न और कुछ अनुभव कर सकता है । वह किसी प्रकार की बात दूसरे से नहीं कह सुन सकता है । संज्ञा सदैव के लिये लुप्त हो जाती है । किन्तु ब्रेन-स्टेम, जो शरीर के रिफलेक्टिव फंकशन्स का नियंत्रण करता है विशेष रूप से हृदयगति, श्वास प्रणाली और पाचन प्रणाली, चलता रहता है ।

चिकित्सा जगत की दृष्टि में और विधि की दृष्टि में, निदानात्मक रूप से व्यक्ति की तब तक मृत्यु नहीं हो जाती जब तक ब्रेन-स्टेम अपना काम करता रहता है ।

श्री ब्लांड को उनकी वर्तमान दशा में बनाये रखने के लिये भोजन और जल एक नासोगेसट्रिक ट्यूब के एक कृत्रिम उपाय से पूरे किये जाते हैं और मल आदि निकालने का कार्य एक केथिटर तथा अन्य कृत्रिम उपायों से नियन्त्रित किया जाता है । समय-समय पर केथिटर का उपयोग इनफ्यूजन बढ़ाने के लिए भी किया जाता है जिसके लिये अन्य समुचित चिकित्सा उपचार किये जाते हैं ।

प्रमुख चिकित्सकों की राय के अनुसार, जहाँ तक श्री ब्लांड का संबंध है, ऐसी कोई संभावना नहीं थी कि वह अपनी वर्तमान दशा से वापिस आ पाते । किन्तु इस बात की पूरी संभावना थी कि वह आगे आने वाले वर्षों में अपनी वर्तमान दशा में बने रह सकते थे यदि चिकित्सीय उपचार के कृत्रिम साधनों को लागू रखा जाए ।

श्री ब्लांड के डॉक्टरों और माता-पिता को तीन वर्ष पश्चात् ऐसा लगा कि कृत्रिम चिकित्सीय उपचार चालू रखने से कोई लाभप्रद प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा और श्री ब्लांड के जीवन को खींचते रहने के उद्देश्य से प्रयोग में लाऐ जा रहे उपायों को चालू रखना उचित नहीं होगा ।

जीवन समर्थक उपायों को हटा देना क्या एक दाण्डिक अपराध है, इस बात को लेकर संदेह के कारण अस्पताल के प्राधिकारी (अपीलार्थी) ने इन संदेहों के निवारण के आशय से उच्च न्यायालय में घोषणा के लिऐ कार्यवाही की । उच्च न्यायालय के फेमिली डिवीजन ने 19.11.92 को घोषणाऐं मंजूर की । इस निर्णय की पुष्टि अपील न्यायालय ने (न्या. -सर थोमस बिंगहम एम. आर. तथा लार्ड बटलर-स्लोस और हॉफमैन) 9.12.1992 को की । न्यायालय ने जो घोषणाऐं मंजूर कीं वे निम्नलिखित थीं:

" सम्मति देने में प्रतिवादी की असमर्थता होते हुए भी, वादी तथा उपचार कर रहे उत्तरदायी चिकित्सक:

(1) प्रतिवादी को उसकी विद्यमान निरन्तर जड़ दशा की स्थिति में जीवित रखने के आशय से दिये जा रहे सभी जीवन समर्थक उपचार तथा चिकित्सा समर्थित उपायों को विधिकतः बन्द कर सकते थे, जिनके अन्तर्गत कृत्रिम साधनों से श्वास-प्रणाली, भोजन प्रणाली और जल आपूर्ति प्रणाली को बन्द कर देना भी है ;

(2) प्रतिवादी के चिकित्सीय उपचार को विधिकतः बन्द कर सकते थे और उनके लिये उसे आगे चालू रखना आवश्यक नहीं था सिवाय इस एक मात्र

प्रयोजन के लिऐ कि प्रतिवादी अपने जीवन का अन्त करने में समर्थ हो सके और पूर्ण स्वाभिमान के साथ तथा कम से कम कष्ट और परेशानी के साथ शान्तीपूर्वक मृत्यु को प्राप्त हो सके ।"

हॉउस ऑफ लार्डस में आगे अपील में किनकेल के लार्ड कीथ ने यह उल्लेख किया कि अन्ततः चिकित्सा उपचार और देखभाल का उद्देश्य रोगी का फायदा है किन्तु अपकृत्य विधि और प्रहार दाण्डिक विधि, दोनों, के अर्न्तगत किसी ऐसे वयस्क को जो होश में है और जिसका मस्तिष्क काम कर रहा है, उसकी सम्मति के बिना उसे चिकित्सीय उपचार प्रदान करना अवैध है (एफ. मेन्टल पेशेन्टः स्टरलाइजेशन निर्देश) 1990 (2) ए. सी. 1)। ऐसे व्यक्ति को उपचार लेने से इन्कार करने की पूरी स्वतंत्रता है भले ही ऐसा करने का परिणाम उसकी मृत्यु क्यों न हो । इस स्वतंत्रता का विस्तार इस स्थिति तक है जहां कोई व्यक्ति, किसी एक या अन्य कारण से मृत्यु की संभावना तथा पी. वी. एस, अर्थात् निरन्तर जड़ दशा में प्रवेश करने की संभावना के कारण ऐसा स्पष्ट अनुदेश देता है कि ऐसी स्थिति में उसे चिकित्सीय उपचार, जिनके अर्न्तगत कृत्रिम उपायों से भोजन देना भी है, इस उद्देश्य से प्रदान नहीं किया जाये कि उसे जीवित रखना है । दूसरी बात यह है कि ऐसा प्रायः होता है कि कोई व्यक्ति दुर्घटना के कारण या किसी अन्य कारण से होश खो बैठता है और चिकित्सीय उपचार के लिऐ अपनी सम्मति नहीं दे सकता। ऐसी स्थिति में, आवश्यकता के सिद्धान्त के अंतर्गत, चिकित्सकों के लिये ऐसा उपचार प्रदान करना विधिपूर्ण है जो उनके ज्ञान के अनुसार ऐसे बेहोश रोगी के "सर्वोत्तम हित" में है । अपीली न्यायालय ने, जे (ए माइनर) (वार्डशिप : मेडिकल ट्रीटमेन्ट) निर्देश (1991) फेम /33, में निर्णय दिया कि किसी अत्यन्त अल्प आयु के बालक के जीवन रक्षक उपचार को ऐसी परिस्थितियों में रोक देना विधिपूर्ण है जहां बालक के जीवन के बच जाने पर भी उसके कष्ट और दुख को रोकना असंभव होगा । स्थायी रूप से संज्ञाहीन किसी

व्यक्ति के मामले में, जो यदि जीवित भी रहा आये तब भी तनिक कष्ट का अनुभव नहीं कर सकेगा, यह यदि संभव नहीं तो भी कठिन है कि उसके जीवित रहने और न रहने के बीच कोई सुसंगत तुलना की जा सके । तथापि, यह कहना ठीक होगा कि ऐसे व्यक्ति के लिये, जो संज्ञाहीन स्थिति में है और इस संसार में वह पुनः संज्ञा प्राप्त कर सके इसकी संभावना नहीं है, इस बात से सर्वथा कोई अन्तर नहीं पड़ता कि वह जीवित रहता है या नहीं । लार्ड कीथ ने संप्रेक्षण किया :

> " किसी चिकित्सा व्यवसायी पर ऐसी कोइ बाध्यता नहीं है कि वह ऐसे रोगी का उपचार जारी रखे जिसके बारे में ज्ञानपूर्ण और उत्तरदायी चिकित्सकों के बहुसंख्यक निकाय की राय है कि उसे जीवित रखने का कोई फायदा नहीं होगा । ऐसी राय के अनुसार, ऐसी जड़ दशा में जीवित रखना, जिसमें पुनः होश में आने की कोई संभावना नही है, फायदा नहीं कहा जा सकता, तथा, यदि यह बिना किसी तर्क के सही न भी हो, तब भी, यह ऐसा निर्णय लेने का उचित आधार है कि उपचार और देखभाल बंद कर दिये जायें : (बोलम बनाम फ्रिन हॉस्पीटल मेनेजमेन्ट कमैटी 1957 (1) डब्लयू. एल. आर 582)" ।

लार्ड कीथ ने, यह कथन करने कि पश्चात की जीवन की सर्वोपरिता का सिद्धान्त राज्य के लिये महत्वपूर्ण है किन्तु यह सिद्धांत आत्यंतिक/पूर्ण नहीं है, लार्ड कीथ ने कहा :

> "यह (जीवन की सर्वोपरिता का सिद्धान्त) किसी चिकित्सा व्यवसायी को प्राणांतक कष्ट की दशा में उसे रोगी का उपचार करने के लिए बाध्य नहीं करता जो, रोगी की स्पष्ट इच्छा के प्रतिकूल, यदि चिकित्सक उपचार जारी

नहीं रखता तो रोगी की मृत्यु हो जायेगी । यह सिद्धांत भूख हड़ताल कर रहे बंदियों को जबरन भोजन देने की स्वीकृती नहीं देता । यह सिद्धांत ऐसे रोगियों को, जो प्राणंतक रूप से रुग्ण हैं, अस्थायी तौर पर जीवित बनाये रखने के लिऐ बाध्य नहीं करता जहां ऐसा करने से रोगी के कष्ट की अवधि बढ़ती जायेगी । दूसरी ओर, यह सिद्धान्त प्राणांततःरुग्ण रोगी के जीवन को कम कर देने की अनुमति भी नहीं देता है । मेरी राय में, यदि यह निर्णय दिया जाये कि किसी निरन्तर जड़ दशा (पी.वी.एस) के रोगी के चिकित्सीय उपचार और देखभाल को रोक दिया जाये, जो तीन वर्ष से अधिक समय से ऐसी दशा में है, तो यह इस सिद्धान्त के प्रतिकूल नही होगा, क्योंकि इस बात को ध्यान में रखना होगा कि ऐसा करने से रोगी के शरीर पर ऐसे अनेक अक्रामक कार्य करने होंगे जिसके लिए रोगी ने सम्मति नहीं दी है और जिन्हें करने से रोगी को कोई फायदा नहीं होगा ।"

लार्ड कीथ ने यह संप्रेक्षण किया कि अन्य देशों में, विशेष रूप से यू. एस. ए. में विधि एक समान थी, अर्थात, ऐसे उपचार को रोकना दाण्डिक अपराध नहीं है । न्यायाधीश के कथनानुसार :

"यह देखकर अच्छा लगता है कि अन्य कामन-विधि अधिकारिता वाले देशों में, विशेष रूप से यूनाइटेड स्टेट्स में जहॉं इस विषय पर अनेक मुकदमें हुए हैं, न्यायालयों ने एक मत से यह निष्कर्ष निकाला है कि निरन्तर जड़ दशा (पी.वी.एस) के रोगियों तथा समान दशा वाले अन्य रोगियों के चिकित्सीय उपचार और देखभाल को, जिसके अर्न्तगत कृत्रिम रूप से भोजन देना भी शामिल है, रोक देना अवैध नहीं है ।"

न्यायाधीश महोदय ने यह उल्लेख भी किया है कि रोगियों, डॉक्टरों और रोगियों के परिवारजनों के हित की रक्षा करने के उद्देश्य से और जन साधारण में आशा जगाने के कारण से फेमिली डिवीजन तथा अपीली न्यायालय से जीवन समर्थक उपायों को हटा देने की अनुमति के लिए घोषणा प्राप्त करना अनुज्ञेय है । जब तक अनुभवी और चिकित्सा रत व्यक्तियों का निकाय गठित नहीं होता तब तक यह आवश्यक है ।

शिवेले के लार्ड गॉफ ने अपीली न्यायालय में लार्ड विंगहम के निर्णय को उद्धृत किया है जिसका निम्नलिखित अंश महत्वपूर्ण है :

> "...... कानून की दृष्टि में ऐन्थनी अब भी जीवित है । यह सत्य है कि उसकी दशा ऐसी है कि उसे जीवित रहते हुए भी मृत कहा जा सकता है ; तथापि वह अब भी जीवित है ऐसा इसलिए है क्योंकि आधुनिक चिकित्सक और तकनीक के विकास के परिणामस्वरूप डॉक्टर आजकल मृत्यु का सम्बन्ध केवल श्वास चलते रहने और हृदयगति चलते रहने से नहीं जोड़ते हैं, और यह माना जाने लगा है कि मृत्यु तब होती है जब मस्तिष्क और विशेष रूप से ब्रेन-स्टेम नष्ट हो जाता है । (देखिए प्रोफेसर इयान केनेडी का "स्विचिंग आफ लाइफ सपोर्ट मेडिसीनस : द लीगल इम्पीलकेशंस", शीर्षक लेख जो 'ट्रीट मी राइट' के नाम से मेडिकल लॉ उण्ड इथिक्स ऐसेज (1988), में पृष्ठ 351-352 पर प्रकाशित हुआ है)...... कानून की दृष्टि से........ वह अब भी जीवित है ।

...... हम उन परिथितियों के बारे में विचार कर रहे हैं जिनमें उसे चिकित्सीय उपचार या देखभाल को, जिसके माध्यम से किसी रोगी के जीवन को ऐसे उपचार या

देखभाल से बढ़ाया जा सकता है, यदि ऐसा उपचार या देखभाल उपलब्ध है, किसी भी परिस्थिति में बंद कर देना विधिपूर्ण हो सकता है ।

पहली बात यह है कि यह बात सुस्थापित है कि स्व-अवधारण के सिद्धान्त में यह अपेक्षित है कि रोगी की इच्छा का आदर किया जाना चाहिए ताकि स्वस्थचित्त वाला कोई वयस्क रोगी उपचार या देखभाल से, जिससे उसके जीवन को बढ़ाया जा सकता है या था, चाहे उसके लिए कोई भी कारण न हो, इन्कार कर देता है तो उसकी देखभाल के लिए उत्तरदायी डाक्टरों को उसकी इच्छा का पालन करना चाहिए भले ही वे ऐसा करना रोगी के सर्वोत्तम हित में उचित नहीं समझते हों । (देखिए शोलोएंण्डाफ बनाम सोसाइटी ऑफ न्यूयार्क हॉस्पीटल (1914) 211 एन. वाई 125 में न्यायाधीश कारडोजो का मत ; एस. बनाम मैक (ओरसे एस.) एण्ड एम(डी. एस. इन्टरवीनर); डबल्यू बनाम डबल्यू (1972) ए. सी. 24(43) में लार्ड रीड का मत ; और सीडावे बनाम बोर्ड ऑफ गवर्नरस ऑफ द बेथलम रॉयल हॉस्पीटल एण्ड मोडसले हॉस्पीटल (1985) ए. सी. 871 (882) में लार्ड स्कारमेन का मत । मानव जीवन की सर्वोपरिता के सिद्धान्त को इस विस्तार तक स्व-अवधारण के सिद्धान्त से अधिक महत्व देना होगा (देखिए न्यायाधीश लार्ड हॉफमेन कर पूर्व में उद्धृत निर्णय पृष्ठ 351 एच 352 ए), तथा, विद्यमान प्रयोजनों के लिये संभवतः यह और भी महत्वपूर्ण है कि अपने रोगी के सर्वोत्तम हित में कार्य करने का डॉक्टर का कर्तव्य भी इसी प्रकार से सीमित करना होगा । इस आधार पर यह निर्णय दिया गया है कि स्वस्थ चित्त का रोगी यदि उसे उचित रूप से जानकारी दी जाती है तो, यह अपेक्षा कर सकता है कि उसका जीवन समर्थक उपचार बन्द कर दिया जाना चाहिए, देखिए नैनसी बी बनाम होटल-ड्यू डी क्यूबेक : (1992) 86 डी.एल.आर (चौथा) 385 । इसके अतिरिक्त, यह सिद्धान्त वहां भी लागू होता है जहां रोगी ने बेहोश होने से पूर्व या अपनी बात बताने में अन्यथा असमर्थ होने से पूर्व, किसी पूर्वतर समय पर

सहमति प्रदान करने से इन्कार कर दिया हो ; यद्यपि, ऐसी परिस्थितियों में यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता पर विशेष ध्यान देना पड़ सकता है कि सहमति देने से पूर्व में किया गया इन्कार उन परिस्थितियों में आंका जाये जो तदनन्तर घटी हैं : देखिए, टी (ऐडल्ट : रिफ्यूजल ऑफ ट्रीटमेन्ट) निर्देश 1992 (3) डबल्यू .एल. आर 782 । मैं यह जोड़ना चाहता हूँ कि इस प्रकार के मामलों में यह प्रश्न नहीं उठता है कि क्या रोगी ने आत्महत्या की है और न यह प्रश्न उठता है कि डॉक्टर ने ऐसा करने में रोगी की सहायता की है या दुष्प्रेषण किया है । सीधी सी बात यह है कि रोगी ने ऐसे उपचार के लिऐ सहमति प्रदान करने से इन्कार कर दिया था जिससे उसका जीवन बढ़ सकता था, जैसा करने का उसे अधिकार है तथा डॉक्टर ने अपने कर्त्तव्य के अनुसार अपने रोगी की इच्छा का अनुपालन करके अपने कर्त्तव्य का अनुपालन किया था ।" (रेखांकित अंश पर बल दिया गया है)

लार्ड गॉफ ने सज्ञान सहमति के विषय में लार्ड बिंगहम के निम्नलिखित शब्दों को भी उद्धृत किया है :

" किन्तु, अनेक मामलों में, ऐसा हो सकता है कि रोगी यह कहने कि स्थिति में न हो कि वह सुसंगत उपचार या देखभाल के लिऐ सहमति प्रदान करता है या नहीं करता है, किन्तु यह भी हो सकता है कि उसने इस बारे में अपनी इच्छा उससे पूर्व भी न जतायी हो । ऐसे बालक के मामले में, जो न्यायालय का प्रतिपाल्य है, न्यायालय स्वंय यह निर्णय करेगा कि, चिकित्सीय राय को ध्यान में रखते हुए, क्या चिकित्सीय उपचार को बालक के सर्वोतम हित में जारी रखा जाना चाहिए । किन्तु न्यायालय किसी ऐसे वयस्क रोगी को ओर से, जो यह निर्णय लेने में असमर्थ है कि उपचार के लिए सहमति प्रदान की जाए या न की जाए, अपनी सहमति नहीं दे सकता । मेरी यह राय है कि

उस डॉक्टर पर, जो रोगी के जीवन को बढ़ाने के लिए उसकी देखभाल कर रहा है, परिस्थितियों के प्रतिकूल, कोई आत्यन्तिक बाध्यता नहीं है । वास्तव में यदि यह मान लिया जाता है कि ऐसा कोई आत्यन्तिक नियम है तो यह न केवल अत्यन्त आश्चर्यपूर्ण होगा अपितु रोगी पर उसका अत्यन्त प्रतिकूल और भयानक प्रभाव पड़ सकता है । उन मामलों में, जिसमें स्वस्थ चित्त वाले रोगी ने अपनी सहमति प्रदान करने से इन्कार कर दिया हो, यह बात स्व-अवधारण के सिद्धान्त से संगत नहीं होगी कि विधि में ऐसे किसी भी उपाय के लिये उपबन्ध नहीं किया जाये जिससे ऐसी समुचित परिस्थितियों में, जहां रोगी अपनी असहमति प्रदान करने की स्थिति में नहीं है, और यदि यही उसकी इच्छा है, उपचार को रोक दिया जाए । इस विचार को मैसाशुसेट्स की सुप्रीम कोर्ट ने सुप्रिन्टेनडेन्ट ऑफ बेलचरटाउन स्टेट स्कूल बनाम सार्डकेविज (1977) 370 एन.ई द्वितीय 417 (428) में निम्नलिखित शब्दों में अपने निर्णय में प्रभावशाली ढंग से प्रकट किया था :

> "यह उपधारणा करना कि एक अक्षम व्यक्ति भी वह सब कुछ कर सकता है जो कोई तर्कसंगत और बुद्धिमान व्यक्ति कर सकता है तो इसका अर्थ यह होगा कि अक्षम व्यक्ति के आन्तरिक मानवीय मूल्य और बल को कम आंक कर उसकी हैसियत को गिरा दिया जाता है ।"

लार्ड गॉफ ने आगे कहा :

"तथापि, मैं इस समय इस बात पर बल देना चाहूंगा कि विधि में इन दोनों मामलों में अन्तर है जिनमें से एक में डॉक्टर अपने रोगी के ऐसे उपचार या देखभाल को, जिससे रोगी का जीवन बढ़ सकता था या बढ़ जाएगा, यह निर्णय लेता है कि उपचार न प्रदान किया जाये अथवा जारी न रखा जाये तथा दूसरे मामले में जिनमें डाक्टर सतर्कतापूर्वक निर्णय लेता है कि रोगी के जीवन को समाप्त कर दिया जाये, उदाहरण के लिये उसे

उस डॉक्टर पर, जो रोगी के जीवन को बढ़ाने के लिए उसकी देखभाल कर रहा है, परिस्थितियों के प्रतिकूल, कोई आत्यन्तिक बाध्यता नहीं है । वास्तव में यदि यह मान लिया जाता है कि ऐसा कोई आत्यन्तिक नियम है तो यह न केवल अत्यन्त आश्चर्यपूर्ण होगा अपितु रोगी पर उसका अत्यन्त प्रतिकूल और भयानक प्रभाव पड़ सकता है । उन मामलों में, जिसमें स्वस्थ चित्त वाले रोगी ने अपनी सहमति प्रदान करने से इन्कार कर दिया हो, यह बात स्व-अवधारण के सिद्धान्त से संगत नहीं होगी कि विधि में ऐसे किसी भी उपाय के लिये उपबन्ध नहीं किया जाये जिससे ऐसी समुचित परिस्थितियों में, जहां रोगी अपनी असहमति प्रदान करने की स्थिति में नहीं है, और यदि यही उसकी इच्छा है, उपचार को रोक दिया जाए । इस विचार को मैसाशुसेट्स की सुप्रीम कोर्ट ने सुप्रिन्टेनडेन्ट ऑफ बेलचरटाउन स्टेट स्कूल बनाम साईकेविज (1977) 370 एन.ई द्वितीय 417 (428) में निम्नलिखित शब्दों में अपने निर्णय में प्रभावशाली ढंग से प्रकट किया था :

> "यह उपधारणा करना कि एक अक्षम व्यक्ति भी वह सब कुछ कर सकता है जो कोई तर्कसंगत और बुद्धिमान व्यक्ति कर सकता है तो इसका अर्थ यह होगा कि अक्षम व्यक्ति के आन्तरिक मानवीय मूल्य और बल को कम आंक कर उसकी हैसियत को गिरा दिया जाता है ।"

लार्ड गॉफ ने आगे कहा :

"तथापि, मैं इस समय इस बात पर बल देना चाहूंगा कि विधि में इन दोनों मामलों में अन्तर है जिनमें से एक में डॉक्टर अपने रोगी के ऐसे उपचार या देखभाल को, जिससे रोगी का जीवन बढ़ सकता था या बढ़ जाएगा, यह निर्णय लेता है कि उपचार न प्रदान किया जाये अथवा जारी न रखा जाये , तथा दूसरे मामले में जिनमें डाक्टर सर्तकतापूर्वक निर्णय लेता है कि रोगी के जीवन को समाप्त कर दिया जाये, उदाहरण के लिये उसे

कोई प्राणांतक औषधि देकर । जैसा कि मैं पहले उल्लेख कर चुका हूं, प्रथम प्रकार का निर्णय विधिमान्य हो सकता है क्योंकि डाक्टर उपचार या देखभाल बन्द करके यात्री की इच्छा को पुरा कर रहा है या ऐसी परिस्थितियों क कारण से भी जिनमें रोगी यह बताने में असमर्थ है कि वह अपनी सहमति प्रदान करता है या नहीं प्रदान करता है (उन सिद्धान्तों के अनुसार जिनका में वर्णन करूँगा) । किन्तु डाक्टर के लिये अपने रोगी के जीवन का अंत करने के लिये औषधि देना विधिपूर्ण नहीं है भले ही वह ऐसा मार्ग रोगी के कष्ट को समाप्त करने की मानवीय इच्छा से प्रेरित होकर अपना रहा हो और रोगी का कष्ट कितना भी बड़ा क्यों नहीं हो । देखिए रेग बनाम कोक्स (अरिपोर्टित)(18 सितम्बर 1992)......यूथानासिया कामन विधि में विधिपूर्ण नहीं है; मुझे विश्वास है कि कानून बनाकर यह परिणाम प्राप्त किया जा सकता है......"

जीवन समर्थक उपायों को रोक देना अपराध क्यों नहीं है इस विषय में लार्ड गॉफ ने लार्ड बिंगहम के महत्वपूर्ण तर्क को उद्धृत किया है । एम. आर बिंगहम का कथन है कि :

> "ऐसा क्यों है कि यदि डाक्टर, जो अपने रोगी को ऐसा प्राणांतक इंजेक्शन देता है जिससे उसकी मृत्यु हो जाती है, एक अवैध कृत्य करता है और हत्या का दोषी है, जबकि वह डाक्टर जो जीवन समर्थक उपायों को रोक कर अपने रोगी को मरने देता है, कोई अवैध कृत्य नहीं करता - और न उसका कृत्य अवैध माना जायेगा यदि वह अपने रोगी के प्रति कर्तव्य का उल्लंघन नहीं करता है । प्रो. ग्लानविले विलियम्स ने सुझाव दिया है (देखिये उनकी पुस्तक टेक्सट बुक ऑफ क्रिमिनल लॉ, द्वितीय प्रकाशन (1983) पृष्ठ 282) कि उसका कारण यह है कि जीवन समर्थक तन्त्र को जब डॉक्टर बन्द करदे तो वह जो

करता है वह" तात्विक रूप से कोई कृत्य नहीं है अपितु संघर्ष का विलोप है" और "यह विलोप डॉक्टर द्वारा कर्त्तव्य का उल्लंघन नहीं है क्यों कि किसी आशाहीन मामले में जीवन समर्थक तन्त्र को जारी रखने के लिये वह बाध्य नहीं है।"

लार्ड गॉफ ने विशेष रूप से आगे और यह स्पष्ट किया है कि जीवन समर्थक उपायों को हटा देने से क्या होता है। उनका कथन है :

"मैं इस से सहमत हूं कि जीवन समर्थक उपायों को बन्द कर देने का डाक्टर का आचरण वस्तुतः लोप की श्रेणी में आता है। यह सत्य है कि डाक्टर वास्तव में जो करता है उसे लोप कहना कठिन हो सकता है, उदाहरण के लिए, जहां वह जीवन समर्थक तन्त्र को विराम देकर एक सकारात्मक कदम उठाता है। किन्तु, वर्तमान प्रयोजनों के लिए, जीवन समर्थक उपायों को रोक देना, प्रथमतः, जीवन समर्थक उपायों को प्रारम्भ करने से भिन्न नहीं है। प्रत्येक मामले में, डॉक्टर इस अर्थ में अपने रोगी को मरने दे रहा है कि वह ऐसे कदम उठाने से स्वयं को रोक रहा है जो कतिपय परिस्थितियों, में रोगी की पूर्वत्तर स्थिति के परिणामस्वरूप मर जाने देते ; किन्तु सामान्य सिद्धान्त की दृष्टि से, इस प्रकार का लोप तब तक अवैध नहीं होगा जब तक कि वह रोगी के प्रति कर्त्तव्य का उल्लंघन नहीं है। मैं इससे भी सहमत हूं कि डाक्टर का आचरण उस आचरण से भिन्न है जो, उदाहरण के लिए, कोई घुसपैठिया दुर्भावना से जीवन समर्थक तंत्र का स्विच बंद करके अपनाता है .....। तदानुसार, जहां एक ओर डाक्टर, जीवन समर्थक उपायों को बंद करके केवल अपने रोगी को उसकी पूर्वत्तर दशा के कारण मृत्यु अपनाने मात्र की अनुमति दे रहा है, वहीं दूसरी ओर घुसपैठिया रोगी के जीवन को बढ़ाने से डाक्टर को सकारात्मक रूप

से रोक रहा है, तथा ऐसे आचरण को संभवतः लोप की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है ।

......जीवन समर्थक उपायों को रोक देने में और प्राणांतक इंजेक्शन द्वारा रोगी के जीवन को समाप्त कर देने में अन्तर है । .....इस अन्तर का कारण यह है कि जहां कानून एक ओर यह मानता है कि जीवन समर्थक उपायों को रोक देना रोगी की देखभाल कर रह डाक्टर के कर्तव्य से संगत है वहीं कानून, नीति के कारणों से, यह नहीं मानता कि रोगी को उसके कष्ट से छुटकारा देने के लिये उसे प्राणांतक इंजेक्शन देना डाक्टर के कर्तव्य का हिस्सा है । "

एफ (मेन्टल पेशेन्ट; स्टरलाईजेशन) निर्देश (1990) (2) ए. सी -1, का उल्लेख करते हुए, जिस मामले में यह निर्णय दिया गया था कि डॉक्टर, जब वह किसी बेहोश रोगी का उपचार कर रहा हो, रोगी के "सर्वोत्तम हित" में रोगी का उपचार कर सकता है, लार्ड गॉफ ने कहा कि यही सिद्धान्त तब लागू होता है जब डाक्टर यह निर्णय लेता है कि क्या रोगी के सर्वोत्तम हित में जीवन समर्थक उपायों को बन्द कर देना चाहिए या नहीं । जैसा कि न्यायाधीश जे. थोमस ने ऑकलैण्ड ऐरिया हेल्थ आथोरिटी बनाम ए जीः 1993 (1) एन जेड एल आर 235 में निर्णय दिया है, डॉक्टर किसी कैंसर के रोगी की शल्य चिकित्सा करने के लिए बाध्य नहीं है यदि ऐसा करने के परिणामस्वरूप रोगी का जीवन कम हो जाने की संभावना है । ऐसी स्थिति में वह रोगी के कष्ट और व्यथा को कम करने के लिये उसे दर्दनाशक औषध दे सकता है । अतः, न्यायाधीश महोदय के अनुसार-

"जहां डाक्टर द्वारा अपने रोगी का उपचार विधिपूर्ण है वहां रोगी की मृत्यु, कानून में, केवल उस क्षति या रोग के कारण हुई मानी जाएगी जिससे उसकी ऐसी दशा हुई है ।"

जीवन समर्थक प्रणाली चिकित्सा तकनीक में नए प्रयोग हैं । प्रारम्भिक में जीवन समर्थक उपायों का प्रयोग किया जा सकता है, "किन्तु यदि रोगी की दशा जीवन समर्थक प्रणाली को हटा देने से न तो पर्याप्त रूप से सुधरती है और न उसकी मृत्यु होती है तो उसके परिणामस्वरूप यह प्रश्न खड़ा होगा कि क्या उसे अनिश्चित काल तक के लिये उस प्रणाली पर रखा जाना चाहिए ।" प्रो. इयान केनेडी तथा न्यूजीलैण्ड के न्या. थोमस के उद्‌धृत करने के पश्चात् लार्ड गॉफ ने यह कथन किया कि प्रश्न यह नहीं है कि क्या डॉक्टर उस मार्ग को अपनाए जिससे रोगी की मृत्यु हो जाएगी, अपितु प्रश्न यह हे कि "क्या यह रोगी के सर्वोत्तम हित में है कि इस प्रकार के चिकित्सीय उपचार या देखभाल को जारी रखकर रोगी के जीवन को बढ़ाया जाना चाहिए । वर्तमान मामले में, डॉक्टर के अनुसार, उपचार को जारी रखने की कोई उपयोगिता नहीं है क्योंकि उससे किसी प्रकार का कोई चिकित्सा-शास्त्रीय प्रयोजन पूरा नहीं होता है ।"

लार्ड गॉफ ने, क्यूनियानः (1976)355 ए द्वितीय 647 निर्देश तथा सुपरिटेन्डेन्ट ऑफ बेलंचर टाउन स्टेट स्कूल बनाम साईकेविज 370 एन. ई. द्वितीय 417, के आधार पर, अमेरीका के न्यायालयों के इस मत को अस्वीकार करते हुए कि अक्षम रोगी की ओर से निर्णय लेने की अनुमति किसी धार्मिक उत्तराधिकारी प्रतिस्थापक को दी जा सकती है, लार्ड गॉफ ने निम्नलिखित कथन किया है :

"........मैं नहीं समझता कि अक्षम वयस्कों के सम्बन्ध में, जिनकी ओर से चिकित्सा उपचार के लिए सम्मति देने की शक्ति किसी को भी प्राप्त नहीं

है इंगलैण्ड की विधि में ऐसी कोई कसौटी है । निश्चित रूप से, एफ निर्देश 1990 (2) ए. सी 1 में हाउस ऑफ लार्डस ने रोगी के सर्वोत्तम हित पर आधारित एक स्पष्ट कसौटी स्वीकार की थी......।"

अन्ततः लार्ड गॉफ ने लार्ड एम. आर. विंगहम के इस मत का अनुमोदन किया कि न्यायालय रोगियों, डॉक्टरों और रोगियों के कुटुम्बजनों के हित में तथा जनसाधारण को पुनः आश्वस्त करने के सन्दर्भ में, जीवन समर्थक उपायों को रोकने के लिए घोषणाएं प्रदान कर सकते थे ।

लार्ड लाउरी ने लार्ड गॉफ से सहमति प्रकट की ।

लार्ड ब्राउने-विलकिंसन की राय भी उतनी ही महत्वपूर्ण है । हम उसके केवल कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं की चर्चा करेंगे ।

लार्ड ब्राउने-विलकिंसन का कथन है कि कुछ समय पूर्व तक मृत्यु मानव के नियंत्रण के परे थी किन्तु चिकित्सा विज्ञान में हाल ही में हुए विकासों ने उन पूर्वतर अनिश्चितताओं पर मूलरूप से प्रभाव डाला है । "चिकित्सा शास्त्र में, हृदय गति का रुकना अब मृत्यु नहीं मानी जाती । वेन्टीलेटर के प्रयोग से फेफड़ों को, जो सहायता के बिना समान्य स्थिति में श्वास लेना बन्द कर देते, अब श्वास लेना आरंभ कराया जा सकता है, तथा हृदय गति चालू हो सकती है ......। इसके परिणामस्वरूप चिकित्सा व्यवसाय ने मृत्यु को ब्रेन-स्टेम मृत्यु के रूप में पुनःपरिभाषित किया है ।" चिकित्सा विज्ञान के शब्दों में वेन्टीलेटर का प्रयोग करके बेहोश रोगी को जीवित रखने को

'वेन्टीलेटड कोर्पस' का नाम दिया जाता है । आधुनिक तकनीक से उत्पन्न एक प्रश्न भी लार्ड ब्राउने-विलकिन्सन ने उठाया है :

> " यह मान लेते हुए कि चिकित्सीय देखरेख के लिए उपलब्ध श्रोत सीमित हैं, क्या यह सही है कि उन लोगों के जीवन को बचाए रखने पर धन व्यय किया जाए जिन्हें अपनी विद्यमानता का ज्ञान नहीं है और न कभी होगा और उन लोगों के उपचार पर धन व्यय किया जाए जो वास्तव में लाभान्वित हो सकते हैं, अर्थात्, जो साधनों के अभाव में डाईलिसिस से वंचित है ।"

दुर्घटना के मामलों में इस आधार पर कि व्यक्ति जीवित है या उसकी मृत्यु हो चुकी है क्षतिपूर्ति की रकम की गणना में समस्याएं खड़ी हो रही हैं । उत्तराधिकार का प्रश्न भी मृत्यु के समय पर निर्भर करता है ।

कुछ ऐसे कार्य हैं जिनका लोप करने से अपराध बन जाता है, जैसे, " वहां जहां अभियुक्त मृतक के प्रति कोई ऐसा कार्य करने के लिए कर्त्तव्य बाध्य था जिसे करने से उसने लोप किया गया ।" श्री मुनवाई, अधिवक्ता, का तर्क था कि 'कृत्रिम भोजन प्रदान करने के लिए आवश्यक नासोगेस्ट्रिक ट्यूब को हटा देना और कृत्रिम भोजन की विद्यमान प्रणाली को बंद कर देना' कर्त्तव्य संबंधी 'सकारात्मक कृत्य है' । लार्ड ब्राउने-विलकिन्सन का कथन है : (पृष्ठ 881)

> "मैं इसे स्वीकार नहीं करता । नासोगेस्ट्रिक ट्यूब को हटा देने के कृत्य के अतिरिक्त, उस कार्य को करते रहने में चूक मात्र, जिसे आप पहले करते रहे हैं, किसी भी सामान्य अर्थ में सक्रिय कृत्य नहीं है; इसके

की सम्पत्ति पर केवल कानूनी अधिकारिता ही बची रह गई जो 1954 के अधिनियम के द्वारा प्रदान की गई थी (और ऐसे व्यक्ति के जीवन पर अधिकारिता नहीं रही) ।

लार्ड ब्राउने विलकिंसन ने निम्नलिखित टिप्पणी की :

> " इस समस्या से जुझते हुए, हाउस ऑफ लार्डस ने एफ निर्देश में (1990) (2) ए. सी. पृष्ठ 1, आवश्यकता के सिद्धान्तों पर आधारित एक सिद्धान्त विकसित और तैयार किया जिसके अन्तर्गत कोई डाक्टर ऐसे रोगी का, जो उपचार के बारे में सहमति नहीं दे सकता है, विधिमान्यतः उपचार कर सकता है यदि ऐसा उपचार लेना रोगी के हित में है । मेरे मतानुसार, वर्तमान मामले का सही उत्तर इस अधिकार के विस्तार पर निर्भर है कि क्या ऐन्थनी ब्लांड की सहमति के बिना उसकी शारिरीक समग्रता पर विधिमान्यतः हस्तक्षेप जारी रखा जा सकता है । यदि, परिस्थितियों के अनुसार, उन्हें कृत्रिम भोजन जारी रखने का अधिकार नहीं है तो वे उसा भोजन प्रदान करने की कार्यवाही को रोककर किसी कर्तव्य का उल्लंघन नहीं करते हैं ।"

न्यायालय से घोषणा अभिप्राप्त करने की प्रक्रिया को स्वीकार करते हुए, श्री विलकिंसन ने कहा है :

> "(एफ निर्देश में), ओकब्रुक के लार्ड ब्रान्डन (पृष्ठ 64) और लार्ड गॉफ ने (पृष्ठ 75, 77) यह स्पष्ट किया है कि आक्रामक चिकित्सीय देखभाल प्रदान करने का अधिकार रोगी के सर्वोत्तम हित में देखभाल

पर निर्भर करता है । इसके अतिरिक्त डाक्टर के इस निर्णय को कि आक्रामक देखभाल रोगी के सर्वोत्तम हित में है या नहीं, बोलम बनाम फ्रैन हॉस्पीटल मेनेजमैन्ट कमेटी 1957 (1) डबल्यू. एल. आर. 582 में अधिकथित कसौटी के प्रति निर्देश से जांचना होगा, अर्थात, क्या ऐसा निर्णय उस पद्धति के अनुसार है जो तत्समय चिकित्सीय राय के किसी उत्तरदायी निकाय द्वारा स्वीकृत है ।"

इस कसौटी के आधार पर लार्ड ब्राउने विलकिंसन के निष्कर्ष निकाला कि "एक ऐसा आवाम आता है जहां उत्तरदायी डाक्टर इस तर्कपूर्ण निर्णय पर पहुँचता है (जो कि चिकित्सीय राय के उत्तरदायी निकाय के मत से संगत है), कि आक्रामक जीवन समर्थक प्रणाली का आगे चालू रखना रोगी के "सर्वोत्तम हित" में नहीं है तो डाक्टर उस जीवन समर्थक प्रणाली को विधिक्तः और आगे चालू नहीं रख सकता । यदि वह ऐसा करता है तो वह प्रहार के अपराध का और अपकृत्य विधि में व्यक्ति पर अतिक्रमण का दोषी होगा । अतः वह रोगी के जीवन को बनाए रखने के कर्तव्य के उल्लंघन का दोषी नहीं हो सकता । अतः वह लोप के आधार पर हत्या का दोषी नहीं है ।"

एअरडेल में हाउस ऑफ लार्डस के उपरोक्त निर्णय में विधि के एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त को प्रतिपादित किया गया है और कहा गया है कि मृत्युप्राय रोगी के जीवन समर्थक तंत्र को रोक देने या हटा देने मात्र का अर्थ है कि रोगी को प्राकृतिक मृत्यु अपनाने की अनुमति दी जाए और जहां मृत्यु सामान्य अनुक्रम में निश्चित है वहां जीवन समर्थक प्रणाली को रोक देना या हटा देना अपराध नहीं है ।

विपरीत, परिभाषा के अनुसार यह उस कृत्य को करने से लोप है जो आपने पहले किया है ।

नासोगेस्ट्रिक ट्यूब को हटाने का सकारात्मक कृत्य अधिक कठिनाई पेश करता है । निःसन्देह यह एक सकारात्मक कृत्य है, ठीक उसी प्रकार से जैसे ऐसे रोगी की दशा में, जिसका जीवन कृत्रिम श्वसन प्रणाली पर टिका हुआ है, वेन्टीलेटर के स्विच को ऑफ कर देना । किन्तु, मेरे निर्णय में दोनों में से किसी भी मामले में ऐसे कार्य को सकारात्मक के रूप में वर्गीकृत किया जाना चाहिए क्योंकि ऐसा करने का अर्थ होगा कि हम अति सूक्ष्म असहय भेद कर रहे हैं । यदि नासोगेस्ट्रिक ट्यूब को हटाने की अपेक्षा उसे वैसे ही रहने दिया जाता किन्तु रोगी के पेट में जाने के लिए ट्यूब में कोई और पोषक नहीं डाले जाते तो वह सकारात्मक कृत्य नहीं होता । पुनः, जैसा कि उल्लेख किया गया है ('लॉ, एथिक्स एण्ड मेडीसिन' (1984) पृष्ठ 161 आदि), यदि वेन्टीलेटर के स्विच को ऑफ कर देने को सकारात्मक कृत्य की श्रेणी में रखा जाए तो निश्चित रूप से वही परिणाम प्राप्त हो सकेगा जो घड़ी लगाने से होगा जिसे हर घंटे पर पुनः सैट करने की आवश्यकता होती है ; मशीन को पुनः सैट करने में चूक को सकारात्मक कृत्य की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता ।"

माननीय न्यायाधीश ने निष्कर्ष निकाला कि :

"मेरी समझ में, जो कुछ किया जा रहा है वह अनिवार्यतः भोजन देने या श्वसन प्रणाली कायम रखने से लोप है ; नासोगेस्ट्रिक ट्यूब को हटा देना या वेन्टीलेटर के स्विच को ऑफ कर देना ऐसी चूक या लोप के

लक्षण मात्र हैं । (देखिए ग्लानविले विलियम्स की पुस्तक 'टैक्स्ट बुक ऑफ क्रिमिनल लॉ, पृष्ठ 282; स्कैग, पृष्ठ 169 आदि)" ।

डाक्टर द्वारा रोगी को दिया गया कोई भी उपचार जो आक्रामक है, अर्थात, (जिससे रोगी की शारीरिक समग्रता में विघ्न होता है) तब के सिवाय अवैध है जब ऐसा रोगी की सहमति से किया जाए; यह प्रहार नामक अपराध है और व्यक्ति के प्रति अतिचार नामक अपकृत्य है । किसी कार्य को करने में लोप के कारण हत्या के आरोप के मामले में, लोप केवल रोगी की सहमति से किया जा सकता था ; रोगी द्वारा इन्कार एक विधिमान्य प्रतिरक्षा होगी ।

"वहा डाक्टर पर रोगी के जीवन को बनाए रखने का कोई कर्त्तव्य नहीं है जहाँ जीवन केवल अतिक्रमणकारी चिकित्सीय देखरेख से ही बनाए रखा जा सकता है जिसके लिए रोगी सहमत नहीं होगा ।"

अवयस्कों की दशा में, न्यायालय, जो प्रतिपाल्य अधिकारिता के अन्तर्गत क्राउन के <u>पैरेन्स पैट्रिया</u> के अधिकार का प्रयोग कर रहा है बालक की ओर से सहमति दे सकता है । यू. के. में 1960 तक, न्यायालय को मानसिक रूप से अक्षम वयस्कों की दशा में भी <u>पैरेन्स पैट्रिया</u> की अधिकारिता प्राप्त थी । किन्तु मेन्टल हेल्थ ऐक्ट, 1959 तथा साइन मैन्युल के अन्तर्गत वारंट का प्रतिसंहरण जिसके अन्तर्गत क्राउन का उन व्यक्तियों पर, जो अस्वस्थ मस्तिष्क के थे <u>पैरेन्स पैट्रिया</u> की अधिकारिता न्यायालयों को प्रदान की गई थी, मिले जुले परिणामस्वरूप, न्यायालयों की <u>पैरेन्स पैट्रिया</u> की अधिकारिता उन व्यक्तियों पर से समाप्त हो गई जो मानसिक रूप से अक्षम वयस्क थे और न्यायालय को ऐसे व्यक्तियों

कोई ऐसा रोगी, जो सज्ञान सहमति देने में समर्थ है, सहमति देने से इन्कार करता है या उसने पहले ही ऐसे सहमति से इन्कार कर दिया है तो डाक्टर उसके जीवन को बनाए रखने के लिये जीवन समर्थक प्रणाली को चालू नहीं रख सकता भले ही डाक्टर यह समझता हो कि ऐसी प्रणाली को चालू रखना रोगी के हित में है । रोगी का स्व-अवधारण का अधिकार आत्यंतिक है । किन्तु रोगी के जीवन को बचाने का डाक्टर का कर्त्तव्य आत्यंतिक नहीं है । यदि यह रोगी के सर्वोत्तम हित में है तो डाक्टर कृत्रिम उपायों से रोगी के जीवन को खींचते रहने से स्वयं को रोक सकता है । ऐसा लोप अपराध नहीं है । डाक्टर या अस्पताल न्यायालय से इस आशय की घोषणा मांग सकते हैं कि जीवन समर्थक प्रणाली को हटा देना, जैसा कि प्रस्तावित है, विधिपूर्ण होगा ।

इस अध्याय में हमने <u>एअरडेल</u> में हाउस ऑफ लार्ड्स द्वारा अधिकथित मुख्य सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया है । अगले अध्याय में हम <u>एअरडेल</u> के पहले और उसके पश्चात् यू. के. में निर्णीत अन्य मामलों का उल्लेख करेंगे ।

अध्याय - IV

एअरडेल के पूर्व और पश्चात यू. के. तथा आयरलैण्ड में निर्णीत अन्य मामले

हाउस ऑफ लार्ड्स द्वारा निर्णीत एअरडेल (1993) का यू. के. में अनेक मामलों में अनुसरण किया गया था और यह उल्लेख किया गया था कि अक्षम रोगियों के मामले में यदि डाक्टर सज्ञान चिकित्सा राय के आधार पर कार्य करते हैं और कृत्रिम जीवन समर्थक प्रणालियों को हटा देते हैं और यदि यह रोगियों के सर्वोत्तम हित में है तो उक्त कार्य दाण्डिक विधि के अर्न्तगत अपराध नहीं कहा जा सकता । एअरडेल से पहले भी ऐसे महत्वपूर्ण निर्णय हुए हैं जिनकी एअरडेल में व्याख्या की गई है ।

प्रश्न यह उठता है कि 'रोगी का सर्वोत्तम हित' शब्दों का क्या अर्थ है । यह प्रश्न एक अन्य पहलू से भी जुड़ा हुआ है जिसका सम्बन्ध रोगी की सहमति या इच्छा से है, अथवा, यदि रोगी अवयस्क है तो उसके माता-पिता की इच्छा से अथवा जहां रोगी स्थायी रूप से जड़ दशा में है वहां इस बात से जुड़ा हुआ है कि उसके बारे में निर्णय किसे करना चाहिए । प्रत्येक व्यक्ति को, जिसके अर्न्तगत डाक्टर और न्यायालय भी आते हैं, रोगी या उसके माता-पिता की इच्छा को ध्यान में रखना होता है, अतः प्रश्न उठता है कि क्या रोगी या उसके माता-पिता के विचार समस्या के तर्कपूर्ण विश्लेषण पर आधारित हैं या असंगत विषयों पर आधारित हैं । अतः यह निर्णय दिया गया है कि रोगी या उसके माता-पिता की सहमति या इन्कार पर केवल वहां ध्यान रखना आवश्यक है जहां वह सज्ञान है, अर्थात, यह कि निर्णय जीवन को कष्ट या परेशानी रहित बनाए रखने के लिए जीवन समर्थक प्रणाली की पसन्द या नापसन्द का निर्णय पूर्ण ज्ञान के पश्चात लिया गया है ।

जहां तक राज्य का दृष्टिकोण है, जीवन सर्वोपरि है और रोगी के जीवन को बनाए रखने के लिए प्रत्येक प्रयास किया जाना चाहिए, तब प्रश्न उठता है कि जीवन समर्थक प्रणाली को रोक देने के बारे में रोगी के माता-पिता की इच्छा को कब स्वीकार किया जा सकता है ? यदि एक ओर रोगी / माता-पिता की राय और डाक्टर की राय में मत-भिन्नता है तो क्या उनमें से किसी को या प्रत्येक को न्यायालय की राय अभिप्राप्त करना सदैव आवश्यक होगा? ये पहलू अनेक मामलों में यू. के. में निर्णय के लिए सामने आये हैं ।

अब हम, इन महत्वपूर्ण प्रश्नों पर यू. के. में विधि के निरन्तर विकास को दर्शाने के लिये यू. के. के अन्य निर्णयों का उल्लेख करेंगे ।

(1) बी (ए माइनर)(वार्डशिप : मेडिकल ट्रीटमेन्ट) निर्देश : 1981 (1) डबलयू. एल. आर 1421 (लार्ड न्या. श्री टेम्पलमैन और डन): एक बालिका अपने जन्म से ही डाउन सिन्ड्रोम से पीड़ित थी और उसकी आंतों में भी रुकावट थी जिसका शल्य चिकित्सा से निदान हो सकता था । यदि शल्य चिकित्सा न की जाती तो कुछ ही दिनों में उसकी मृत्यु हो जाती । शल्य चिकित्सा करने से वह 20 से 30 वर्ष तक जीवित रह सकती थी । माता-पिता ने शल्य चिकित्सा की अनुमति पर आपत्ति की क्योंकि वे ये समझते थे कि यदि बालिका बच भी गई तो वह मानसिक और शारीरिक रूप स विकलांग रहेगी । स्थानीय प्राधिकारी ने उसे न्यायालय का प्रतिपाल्य बना दिया और न्यायालय में आवेदन किया कि बालिका की शल्य चिकित्सा करने का निर्देश दिया जाए । न्या. इयुबैंक ने निर्णय दिया कि माता-पिता के मत का आदर किया जाना चाहिए और शल्य चिकित्सा की अनुमति देना बालिका के सर्वोत्तम हित में नहीं था ।

अपीली न्यायालय ने इस आधार पर असहमति दर्शायी कि यदि ऑपरेशन किया जाता है तो बालिका एक 'मोंगोलोइड बालक' का समान्य जीवन, ऐसे बालक की विकलांगताओं / खामियों / जीवन सहित जीवित रह सकती थी और यह प्रामाणित नहीं किया गया था कि इस प्रकार के जीवन को समाप्त कर दिया जाए ।

अपीली न्यायालय ने निर्णय दिया कि चूंकि बालक को न्यायालय का प्रतिपाल्य बना दिया था अतः न्यायलय यह निश्चय करेगा कि बालक के 'सर्वोत्तम हित' में क्या था और माता-पिता या डाक्टर ऐसा निर्णय नहीं ले सकते थे यद्यपि माता-पिता और डाक्टरों के मतों को ध्यान में रखा जाएगा । विचारण न्यायालय ने केवल माता-पिता की इच्छा को आधार बनाकर भूल की थी । न्यायालय ने शल्य चिकित्सा करने का निर्देश दिया ।

(2) <u>जे (ए माइनर)(वार्डशिप : मेडिकल ट्रीटमेन्ट)</u> निर्देश : 1990 (3) आल. इ.आर 930 (न्या. एम.आर लिमिंगटन के लार्ड डोनाल्डसन, लार्ड बालकोम्ब तथा टेलर)

यह भी न्यायालय के प्रतिपाल्य का मामला था । जे नाम का एक बालक, जिसने समय से पूर्व जन्म लिया था, घोर मस्तिष्क क्षति से पीड़ित था तथा मस्तिष्क के टिशू बदले जाने योग्य नहीं थे । वह एपीलेपटिक (मिर्गी दोष) से पीड़ित था और इस प्रकार का चिकित्सीय साक्ष्य था कि उसे इस्पासटिक क्वाड्रीप्लेगियां का रोग पनप सकता था, जिससे वह अंधा और बहरा हो जाएेगा और वह बोल भी सकेगा या उसमें ज्ञानेन्द्रियों का विकास हो सकेगा इसकी भी संभावना नहीं थी । उसकी जीवन अवधि की संभावना अनिश्चित थी और संभव था कि वह कौमार्य पूर्व अवस्था तक मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा, अथवा हो सकता था कि वह कुछ वर्ष और जीवित रहे ।

उसे दो बार लम्बी अवधियों तक वेन्टीलेटर पर रखा गया था और वह उपचार कष्टप्रद और संकटपूर्ण था । डाक्टर के विचार में उसे पुनः वेन्टीलेशन पर रखने के परिणाम स्वरूप उसकी मृत्यु हो जाएगी । न्यायालय के समक्ष प्रश्न था कि यदि उसकी श्वास बन्द हो जाये तो उसे पुनः वेन्टीलेटर पर रखा जाये या नहीं ?

<u>पैरेन्स पैट्रिया</u> की अधिकारिता का प्रयोग कर रहे विचारण न्यायाधीश ने उपचार का निर्देश दिया किन्तु यह निर्णय भी दिया कि उसे पुनः वेन्टीलेटर पर नहीं रखा जाये । शासकीय सालीसीटर ने जीवन सुरक्षा उपचार को रोक दिये जाने के विरूद्ध अपील की ।

तर्क दिया गया कि अपील को खारीज किया जाए क्योंकि बालक इतनी गंभीर शारीरिक असमर्थताओं से पीड़ित था कि, यदि उसको जीवित रखा गया तो उसका जीवन उसके मत के अनुसार इतना 'असहनीय' होगा कि उसकी अपेक्षा वह मरना पसन्द करता यदि वह उचित निर्णय लेने की स्थिति में होता और "ऐसी परिस्थितियों में न्यायालय ऐसा उपचार जिसे न देने से निर्देश दे सकता था कि "मृत्यु प्राकृतिक कारणों से आ जाएगी, प्रतिपाल्य को उसके जीवन को बढ़ाने के लिए ऐसे उपचार की आवश्यकता नहीं थी, यद्यपि मृत्यु आसन्न नहीं थी और न वह मर रहा था ।" तथापि, न्यायालय सकारात्मक कदम उठाकर जीवन को समाप्त करने की अनुमति कभी नहीं दे सकता था । यह निर्णय लेते समय कि उपचार करने या न करने का अधिकार दिया जाए या नहीं, "न्यायालय को <u>बालक के सर्वोत्तम हित</u> में ग्रहण किये जाने वाले मार्ग का निर्धारण करते समय संतुलन बनाए रखना होगा और बालक के दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए और उसकी जीवित रहने की इच्छा को पूर्णतः संभव महत्व देते हुए, अर्थात, यह मानकर की यदि वह सही निर्णय लेने की स्थिति में होता तो क्या करता तथा <u>"उस कष्ट और पीड़ा को तथा जीवन के रूप"</u> को भी ध्यान में रखते हुए, जिसका उसे अनुभव करना होगा यदि उसके जीवन को और खींचा जाता है तथा प्रस्तावित उपचार के कारण कितना

कष्ट और पीड़ा होगी, ध्यान में रखना होगा । पुनः वेन्टीलेशन की कष्टप्रद और संकटपूर्ण प्रकृति, यदि जे को पुनः वेन्टीलेशन पर रखा जाता तो भविष्य में और क्षीण होने की जोखिम तथा उपचार से या उपचार के बिना जे की अत्यन्त लाभरहित विकास को ध्यान में रखते हुए ये जे के सर्वोत्तम हित में था कि उसे पुनः वेन्टीलेशन पर रखने की अनुमति न दी जाए ।

एम. आर डोनाल्डसन का कथन था कि ऐसे बालक की दशा में जो प्रतिपाल्य (वार्ड) था उसका उपचार ठीक उसी प्रकार से किया जा सकता था जैसे कि ऐसे बालक की दशा में जो शारीरिक रूप से ठीक नहीं है ; और केवल इतना ही अन्तर होगा कि डाक्टर, आवश्यक सहमति के लिए माता-पिता की ओर न देखकर न्यायालय की ओर देखेंगे । किसी विशिष्ट रोगी को सीमित साधन आवंटित करते समय यह तथ्य सुसंगत नहीं है कि बालक न्यायालय का प्रतिपाल्य है या नहीं । न्या. लार्ड बालकोम्ब का कथन था कि न्यायालय से राज्य की संप्रभु (सावरिन) पैरेन्स पैट्रिया अधिकारिता का प्रयोग करने के दौरान यह अपेक्षा नहीं की जा सकती थी कि वह उससे कोई उच्चतर भिन्न मापदण्ड अपनाएगा जिसे एक तर्कपूर्ण और उत्तरदायी माता-पिता, उद्देश्य परख रूप से, अपनाते ।

न्या. लार्ड टेलर ने टिप्पणी की कि उपचार देने के विरुद्ध निर्णय लेते समय, न्यायालय का उच्चकोटि की संभावना तक यह समाधान हो जाना चाहिए कि उसका निर्णय बालक के "सर्वोत्तम हित" में है; सबूत की निश्चितता अपेक्षित नहीं थी ।

लार्ड डोनाल्डसन ने टिप्पणी की कि अधिकांश मामलों में, यह (उपचार को रोक देना) एक ऐसा विषय जिस पर डाक्टर, माता-पिता के साथ परामर्श करके चर्चा करे और निर्णय लें । इसका अर्थ यह नहीं कि माता-पिता, डाक्टर को यह निर्देश दें कि

क्या करना चाहिए, अपितु उन्हें केवल उपचार के लिए सहमति न देने का अधिकार होगा, और यह भी डाक्टर के इस अधिकार के अधीन होगा कि बालक को न्यायालय का प्रतिपाल्य बनाने के लिए वे न्यायालय के समक्ष आवेदन कर सकते थे और निर्णय प्राप्त कर सकते थे । (वर्तमान मामले में डाक्टरों और माता-पिता के बीच मतभेद था कि उपचार को रोक देना चाहिए या नहीं) ।

न्यायाधीश ने यह निर्णय भी दिया की सैद्धान्तिक रूप से, न तो न्यायालय और न माता-पिता, डाक्टरों पर जोर दे सकते थे कि कोई विशेष उपचार, जो कि डाक्टरों को उपयुक्त नहीं लगता था, रोगी को दिया जाए । एक निश्चित और वांछित परिणाम यह है कि उपचार के बारे में पसंद कुछ सीमा तक डाक्टर, न्यायालय, माता-पिता का एक संयुक्त निर्णय है ।

उनका यह कथन भी किया कि इस अपूर्ण संसार में साधन सदैव सीमित रहेंगे और समय-समय पर उन साधनों को किसी विशिष्ट रोगी को आवंटित करते समय कष्टपूर्ण निर्णय लेते होंगे । न्यायाधीश सी (ए माइनर)(वार्डशिप : मेडिकल ट्रीटमेन्ट) निर्देश 1989 (2) आल. ई. आर 702, में जहां एक बालक की मृत्यु हो रही थी और किसी प्रकार की चिकित्सीय दक्षता और देख-रेख से उससे अधिक कुछ नहीं हो सकता था कि मृत्यु के क्षण को कुछ और अवधि तक स्थगित कर दिया जाए ।

लार्ड डोनाल्डसन ने सुप्रीन्टेन्डेन्ट ऑफ फेमिली एण्ड चाईल्ड साइंस एण्ड डाउसन निर्देश : (1983) 145 डी. एल. आर (तृतीय) 610 में ब्रिटिश कोलम्बिया की सुप्रीम कोर्ट के निर्णय का उल्लेख किया । इस मामले में, बालक का मस्तिष्क गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त था और यह प्रश्न उठा कि क्या बालक की एक 'साधारण' शल्य चिकित्सा की

जा सकती थी जिससे उसका आगे जीवन सुनिश्चित हो जाता या ऐसी शल्य चिकित्सा नहीं की जानी चाहिए ताकि बालक स्वाभिमान पूर्वक मृत्यु को प्राप्त हो सके और माता - पिता ऐसी शल्य चिकित्सा को बालक के सर्वोत्तम हित में नहीं समझ रहे थे क्योंकि इससे उसका जीवन कष्टदायक बना रहता तथा ऐसी शल्य चिकित्सा नहीं की जानी चाहिए ताकि बालक स्वाभिमानपूर्वक मृत्यु प्राप्त कर ले । लार्ड डोनाल्डसन ने ब्रिटिश कोलम्बिया की सुप्रीम कोर्ट के न्या. मेकेन्जी के निर्णय को उद्धृत किया जो निम्नलिखित रूप में है :

> "मेरे विचार में यह न तो माता-पिता के और न इस न्यायालय के विशेषाधिकार के अन्तर्गत है कि असुविधा ग्रस्त व्यक्ति की उपेक्षा करे और उस व्यक्ति के जीवन की क्वालिटी के बारे में ऐसा निर्णय ले कि वह जीवन ऐसे निम्न प्रकार का होगा जिसे बना नहीं रखना चाहिए । यह विषय अमेरिका के एक निर्णय में उठा था, अर्थात, वेवरलिस्ट निर्देश (1974) 360 एन.वाई.एस (द्वितीय) 783 (पृष्ठ 787 पर) जहां विद्वान न्यायाधीश एश का निम्नवत कथन था :
>
> > "अमेरीका में शारीरिक या मानसिक रूप से विकृत समझे गए अन्य व्यक्तियों के जीवन को समाप्त कर देने की विकट आवाज उठ रही है.........। निश्चित रूप से सभ्यता की एक कसौटी 'अत्यन्त अयोग्यतम' को बचाने की चिन्ता है जो डारविन के सिद्धान्त का उल्टा है ....। इस मामले में न्यायालय को वह निर्णय लेना होगा जो प्रतिपाल्य चुनता यदि वह उचित निर्णय लेने की स्थिति में होता ।"

यह अन्तिमवाक्य सही बात प्रस्तुत करना है । किसी बाहरी निर्णायक के लिए यह समुचित नहीं है कि वह इस सम्बन्ध में अपने मापदण्डों को लागू करे कि जीवित रहने योग्य जीवन क्या है, तथा यदि ऐसा मापदण्ड निर्णायक के अनुमान के अनुरूप नहीं है तो वह मृत्यु अधिरोपित करने के अधिकार का प्रयोग करे । ऐसा निर्णय केवल किसी असमर्थ व्यक्ति के संदर्भ में लिया जा सकता है और वह भी इस बात पर विचार करने के पश्चात कि, असमर्थ व्यक्ति के रूप में उसका जीवन बचाने योग्य है या नहीं और इस संदर्भ में, वह ऐसे व्यक्ति के जीवन की तुलना उस व्यक्ति के साथ नहीं करेगा जो सामान्य आनन्द का लाभ ले रहा है । असमर्थ व्यक्ति सामान्य व्यक्ति के जीवन के बारे में कुछ नहीं जान पायेगा क्योंकि उसने उसका अनुभव नहीं किया है ।"

लार्ड डानल्डसन ने स्पष्ट किया कि विचारग्रस्त प्रश्न मृत्यु अधिरोपित करने के अधिकार के बारे में नहीं था अपितु ऐसी कार्यप्रणाली चुनने के बारे में था जो मृत्यु को दूर करने में सफल नहीं हो सकती थी। ऐसा चयन उस रोगी का होता, यदि वह पूर्ण आयु और सामर्थ्य का होता, ऐसा चयन माता-पिता अथवा न्यायालय का होता यदि बालक अपनी आयु के कारण ऐसा चयन करने में समर्थ नहीं होता तथा वह ऐसा चयन था जिसे पूर्णरूप से बालक की ओर से लिया जाना चाहिए और जिसे न्यायालय या माता-पिता, अपनी आत्मा से "उसके सर्वोत्तम हित में " मानते थे । न्यायाधीश ने निर्णय दिया कि कनाडा के निर्णय को सर्वथापूर्ण अभिमत की पुष्टि करने वाले के रूप में नहीं समझा जाना चाहिए । वास्तविक जीवन में, उपधारणाऐं होती हैं, पुष्ट उपधारणाऐं होती है और लगभग सर्वव्यापी उपधारणाऐं भी होती हैं किन्तु ऐसी उपधारणाऐं कम होती हैं जो सम्पूर्ण हों ।"

लार्ड डोनाल्डसन ने बी निर्देश (1981) (1) डबल्यू. एल. आर 142) एक ऐसा भिन्न मामला माना जहां बालक के जन्म से ही डाउन सिन्ड्रोम से ग्रस्त होने के कारण उसके कष्ट को तथा इस बात को ध्यान में रखते हुए कि बालक मंगोल था, माता-पिता, अत्यन्त दुख के साथ इस निर्णय पर पहुंचे थे कि बालक के जीवन को बनाए रखना उसके सर्वोत्तम हित में नहीं था । माता-पिता ने इस विषय में उस दृष्टिकोण से गौर नहीं किया था जो बालक को होता यदि वह निर्णय लेने में समर्थ होता । अतः यह भार न्यायालय पर आ पड़ा । इसके अतिरिक्त, एस मामले में, शल्य चिकित्सकों की रायों में भिन्नता थी । न्यायालय ने शल्य चिकित्सा के लिए अपनी सहमति प्रदान की न्यायालय ने समझा कि वह ऐसा मामला नहीं था 'प्रत्यक्ष रूप से इतना भयावह' अथवा 'असहीय' माना जाए । लार्ड डोनाल्डसन ने आगे कथन किया :

> "हम जानते हैं कि जीवित रहने की प्रेरणा और इच्छा अत्यंत मजबूत होती है हम सभी मानव जीवन की सर्वोपरिता में विश्वास रखते हैं उसकी सराहना करते हैं । जैसाकि स्पष्ट किया गया है इस संरचना में इस बात पर ध्यान रखा गया है तथा इस आवश्यकता पर भी जोर दिया गया है कि इस समस्या को एक निर्णनायक की ओर देखा जाए अपितु उसकी समस्या को इस रोगी के दृष्टिकोण पर विचार किया जाए । परिणामस्वरूप यह तथ्य प्रमाणित होता हे और होना भी चाहिए, कि अत्यधिक रूप से विकलांग व्यक्ति भी ऐसा जीवन मांगना चाहता है जो विकलांगता रहित व्यक्तियों को स्थायी रूप से दिखाई दे । लोगों में आश्चर्यजनक अनुकूलन शक्ति होती है । किन्तु अन्त में ऐसे मामले आयेंगें जिनमें यह मामला सुलझ जाएगा उत्तर यह होगा कि बालक को जैसे उपचार का विषय बनाया जाए जिससे उसका हित नहीं होगा जिससे कष्ट में इजाफा हो और कोई उपयोगी लाभ प्राप्त न हो तथा बच्चो

और समस्त मानव को जीवित रहने की इच्छा को भी यथा संभव बल प्रदान किया जाए ।"

यहां, जहां तक जे का संबंध है, डाक्टर इस बात पर एक मत थे कि कोई भी आक्रामक प्रक्रिया, जैसे नासोगेस्ट्रीक ट्यूब से ड्रिप देना, जिन्हें देना आवश्यक होगा, तथा निरन्तर रक्त के सेम्पल लेना, ऐसी प्रक्रिया है जिससे बालक को पीड़ा होगी । अतः जीवन समर्थक प्रणाली को बन्द कर देना विधिमान्य ठहराया गया ।

(3) <u>सी (ए माइनर)(वार्डशिप : मेडिकल ट्रीटमेन्ट) निर्देश</u> : 1989(2) आल. ई. आर 782 (19/20 अप्रैल, 1989) (सी. ए)

(न्या. एम. आर लेमिंगटन के लार्ड डोनाल्डसन, बालकोम्ब तथा निकोलस)

इस मामले में स्थानीय प्राधिकारी ने बालिका का उसके जन्म के पश्चात ही प्रतिपाल्य बनाया था क्योंकि ऐसा लगा था कि उसके माता-पिता को उसकी देखभाल करने में अत्यन्त कठिनाई होगी । बालिका का मस्तिष्क गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त था और वह अत्सन्त विकलांग और प्राणांततःरूग्ण थी । चिकित्सकों की राय थी की कष्ट और पीड़ा के निवारण के लिये केवल पेलियेटिव देखभाल मात्र की जा सकती थी और जीवन को बचाया नहीं जा सकता था । स्थानीय प्राधिकारी के आवेदन पर विचारण न्यायालय ने शास्कीय सालीसीटर को सुना जो कि बालक का वादार्थ संरक्षक था और यह अनुमति प्रदान की कि "प्रतिपाल्य का उपचार ऐसी रीति से किया जाऐ जिससे बालिका अपना जीवन शान्तीपूर्वक तथा बिना दर्द, पीड़ा और कष्ट से समाप्त कर सके तथा निर्देश दिया गया कि अस्पताल किसी गंभीर संक्रामकता का, जो बालिका को लग जाए, उपचार नहीं करेगा और न उसके लिए कोई इन्ट्रावीनस भोजन प्रणाली लगाएगा ।" शास्कीय सालीसीटर ने इस आदेश के विरूद्ध अपील की ।

अपीली न्यायालय ने आदेश की पुष्टि की और निर्णय दिया कि जहां न्यायालय को प्रतिपाल्य प्राणांततःरूग्ण हो वहां न्यायालय ऐसे उपचार की अनुमति दे सकेगा जिससे उसके जीवन के शेष भाग के दौरान प्रतिपाल्य के कष्ट का निवारण हो जाए तथा न्यायालय डाक्टरों की उस राय को स्वीकार करेगा जिसका उद्देश्य केवल कष्ट का निवारण हो और केवल कुछ समय के लिए जीवन को बढ़ाने मात्र का नहीं हो । तथापि, न्यायालय ऐसे निर्देश नहीं दे सकता था कि बालक का किस प्रकार से उपचार किया जा सकता है । तथापि न्यायालय यह निर्देश नहीं दे सका कि बालक का उपचार कैसे किया जा सकता था । अतः विचारण न्यायाधीश के उन निर्देशों को खारिज कर दिया जिनके अनुसार बालक के किसी गंभीर संक्रमण का उपचार नहीं किया जा सकता था या उसे इन्ट्रावीनस भोजन नहीं दिया जा सकता था ।

लार्ड डोनाल्डसन ने बी (ए माइनर)(वार्डशिप : मेडिकल ट्रीटमेन्ट) निर्देश (1981) (1) डबल्यू. एल. आर 1421 (सी. ए): बी (ए माइनर)(वार्डशिप : स्टरलाईजेशन) निर्देश : 1987(2) आल.ई.आर (एच. एल) = 1988 ए. सी. 199; डी (ए माइनर)(वार्डशिप : स्टरलाईजेशन) (निर्देश) 1976 (1) आल.ई.आर 326 को उद्धृत किया है ।

डी निर्देश (1976) में, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है, न्या. हिलबोर्न ने कहा है कि "यदि एक बार किसी बालक को प्रतिपाल्य मान लिया जाता है तो उस बालक के जीवन का कोई भी महत्वपूर्ण कदम न्यायालय की सहमति के बिना नही उठाया जा सकता ।"

लार्ड डोनाल्डसन ने उपरोक्त बी निर्देश (1991) (1) डबलयू. एल. आर 1421 (सी. ए) का और उसमें व्यक्त किये गए इस मत का उल्लेख किया कि बालक का "सर्वोत्तम हित" मात्र ही सुसंगत है न कि माता-पिता के विचारों को मानना । उनका कथन है कि बी निर्देश (1987)(एच. सी), यह भी कहा गया था कि प्रतिपाल्य की सुरक्षा, कल्याण, हित सर्वोपरि आधार है ।

हम इसके पश्चात न्या. लार्ड बालकोम्ब के पृथक निर्णय की ओर अग्रसर होते हैं । उन्होंने कनाडा की न्यायालय के एस. डी निर्देश 1983 (3) डबलयू. डबलय. आर 618 में दिये गये न्या. मेकेन्जी निर्णय को भिन्न बताया । इस मामले में एक सात वर्ष के बालक का मस्तिष्क मैनिनजाइटिस के कारण गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त हो गया था । प्रश्न यह था कि एक 'शण्ट' (एक प्लास्टिक की ट्यूब जो सैरीब्रो स्पाइनल के अतिरिक्त द्रव को मस्तिष्क से दूर रखने का कार्य करती है) जो बन्द हो गई थी, उसे खोलने के लिए ऑपरेशन किया जाए या नहीं । बच्चे के माता-पिता ने इस आधार पर आपत्ति की कि बालक को जीवन भर कष्ट पाते रहने की अपेक्षा सम्मान सहित मरने की अनुमति दी जानी चाहिए । साक्ष्य यह था कि 'शण्ट' को पुनः खोलने से बालक की मृत्यु नहीं हो जायेगी, बल्कि वह महीनों तथा वर्षों तक जीवित रह सकता था । न्या. मेकेन्जी ने कहा (629):-

> "यह कोई 'मृत्यु के अधिकार ' की स्थिति नहीं थी जहां न्यायालयों को ऐसे व्यक्तियों के संबंध में निर्णय लेने होते हैं जो लाइलाज दशाओं के कारण प्राणांततःरुग्ण होते हैं । वस्तुतः प्रश्न यह है कि क्या एस को तुलनात्मक दृष्टि से एक साधारण प्रकार की उपयुक्त चिकित्सा तथा शल्य देखभाल

> प्राप्त करने का अधिकार है जिससे उसके जीवन का बना रहना सुनिश्चित हो जायेगी जेसी कि इस मामले में स्थिति है ।"

न्या. लार्ड बालकोम्ब ने एक अन्य महत्वपूर्ण टिप्पणी भी की -

> "यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ अमेरीका के न्यायालयों को भी इसी प्रकार के मामले का सामना करना पड़ा है और यह समस्या विधिक कान्फ्रेन्सों में चर्चा का विषय रही है। यह सब होते हुए भी, न तो इस देश में और, जहां तक मैं जानता हूं किसी अन्य देश में विधान मण्डल ने इस प्रकार की समस्या का, जैसी इस मामले में पैदा हुई है, सामना कर रहे न्यायालयों अथवा अन्य कि लिये कोई मार्गदर्शक सिद्धान्त निर्धारित करने का प्रयास किया है ।"

इस मामले में एक महत्वपूर्ण टिप्पणी जो लार्ड डोनाल्डसन ने की है, यह थी की इस प्रकार के मामलों में रोगी का नाम और प्रोफेसरों आदि की राय गोपनीय रखी जानी चाहिए और उनका उल्लेख न्यायालय के निर्णय में भी नहीं किया जाना चाहिए । लार्ड डोनाल्डसन का कथन है कि -

> "ऐसे मामलो में अपेक्षित यह है कि न्यायाधीश को निर्णय खुले न्यायालय में देना चाहिए और संबंधित व्यक्तियों की निजी एकांगता बनाए रखनी चाहिए ....। अतः, इस निर्णय में, मैंने प्रोफेसर की सलाह को विस्तारपूर्वक उद्धृत किया है किन्तु मुझे आशा है कि मैंने

उनकी पहचान के बारे में या सी के बारे में या उसके माता-पिता के बारे में या संबंधित प्राधिकारी के बारे में कोई संकेत नहीं दिया है ।"

(4) सी (ए माइनर)(वार्डशिप : मेडिकल ट्रीटमेन्ट) निर्देश संख्या 2 (ए) 1989 (2)) आल. ई.आर 791

(न्या. लिमिंगटन एम.आर के लार्ड डोनाल्डसन, लार्ड बालकोम्ब तथा निकोलस)(21/26 अप्रैल 1989)

इस निर्णय में 'प्रकाशन की स्वतंत्रता' को निर्बाधित करने की आवश्यकता और प्रकाशनों के कारण प्रतिपाल्य को जो नुकसान हो सकता है उसके बारे में उल्लेख किया गया है । प्रश्न यह था कि ऐसे समाचार पत्रों के विरुद्ध, जो प्रतिपाल्य की देखभाल और उपचार से संबंधित व्यक्तियों की पहचान और साक्षात्कार करने के इच्छुक थे, व्यादेश मंजूर किया जा सकता था और उन्हें देखभाल और उपचार और पारिवारिक पृष्ठभूमि के ब्यौरे प्रकाशित करने से रोका जा सकता है ।

न्यायालय ने अपीली न्यायालय के समक्ष डेली मेल और मेल ऑन सनडे के आवेदन को सुना जिसमें न्यायालय के तारीख 20.4.1989 के उस पूर्वतर आदेश के पुनरीक्षण की प्रार्थना की गई थी जिस आदेश से किसी भी व्यक्ति को रोगियों, रोगियों के माता-पिता, डाक्टरों, अस्पतालों और चिकित्सीय परामर्शकों की पहचान सुनिश्चित करने के उद्देश्य से कोई जांच पड़ताल करने या करने की अनुमति देने पर पाबंदी लगाई गई थी ।

पुनरीक्षण भागतः स्वीकार किया गया । यह निर्णय दिया गया कि न्यायालय के प्रतिपाल्य के चिकित्सीय उपचार के बारे में जानकारी प्रकाशित करने से रोगी की देखभाल की गुणवत्ता प्रभावित हो सकती थी अतः लोक हित में अर्थात रोगी जो उपचार ले रही थी उस देखभाल की गुणवत्ता प्रभावित नहीं हो यह सुनिश्चित करने के लिए अपेक्षित था कि प्रतिपाल्य के हित में, न्यायालय के लिए ऐसा व्यादेश जारी करना आवश्यक था जिससे प्रतिपाल्य, माता-पिता की पहचान या उस संबंध में किसी जानकारी के प्रकाशन पर प्रतिबंध लगाया जाए भले ही प्रतिपाल्य ऐसी पहचान या प्रकाशन पर ध्यान देने में असमर्थ क्यों न हो । इसके अतिरिक्त, ऐसे व्यादेश से रोगी की देखभाल करने वालों पर गोपनीयता बनाये रखने का जो कर्तव्य है, उसे भी बल मिलेगा । माता-पिता की पहचान के विरुद्ध व्यादेश इस दृष्टि से भी न्यायोचित था कि इससे प्रतिपाल्य अधिकारिता की भी रक्षा होगी क्योंकि माता-पिता संभवतः किसी बालक को न्यायालय का प्रतिपाल्य बनाने से इसलिए इन्कार करना चाहें क्योंकि उनकी समझ में इससे उनको पहचाना जा सकता था और समाचार जगत द्वारा इसके लिए उन्हें रेखांकित किया जा सकता था ।

(तथापि, जबकि बाहरी प्रकाशनों को रोक दिया जाना चाहिए, डाक्टरों या अस्पताल या स्थानीय प्राधिकारी को रोगी या रोगियों के सही नाम पता होने चाहिए जिससे कि उन्हें यह जानकारी रहे कि किस रोगी के बारे में न्यायालय ने जीवन समर्थक उपचार, आदि को जारी रखने या रोक देने के बारे में आदेश दिये हैं ।)

(5) प्रतिपाल्य न्यायालय, निर्देश ए :(1995) आई. एल. आर. एम 401) (मुख्य न्या. हेमलटन, न्या. फ्लाहर्टी, ईगन, ब्लेने, डेनहम) (आयरलैण्ड) (सुप्रीम कोर्ट) (हाई कोर्ट के न्या. लिंच के आदेश के विरुद्ध अपील)

1950 में जन्मा प्रतिपाल्य, 1972 में एनेसथीसीया के परिणामस्वरुप मस्तिष्क की लाइलाज क्षति से पीड़ित था और अनेक वर्षो तक वह अपंग था । 1994 में न्यायालय ने बालक की मां को उसका और उसकी सम्पत्ति का संरक्षक नियुक्त किया । 1995 में मां ने न्यायालय से सभी कृत्रिम भोजन आपूर्ति तथा जल आपूर्ति उपायों को हटा लेने के लिए निर्देश देने का आवेदन किया और बालिका की देखभाल के लिए आवश्यक निर्देश देने की प्रार्थना की ।

इस मामले में, बालिका गंभीर प्रकृति की मस्तिष्क क्षति से पीड़ित थी, वह अपंग थी, दोनों भुजाएं और हाथ संकुचित हो गए थे, दोनों पैर खिंच गए थे, जबड़े जकड़ दिए गये थे क्योंकि अन्यथा वह अपने गालों और जीभ के भीतरी भाग को काटने लगती, उसके पिछले दांतों पर कैप चढ़ा दी गई थी जिससे कि आगे के दांतों को उन पर चढ़ने से रोका जा सके । वह निगल नहीं सकती थी और न बोल सकती थी । वह अस्थिर दशा में थी । 20 वर्ष तक उसे नासोग्रास्टिक ट्यूब से भोजन दिया जाता रहा था । यह कष्टप्रद था और उसके स्थान पर 1972 में गेसट्रोनोमी ट्यूब लगाई गई थी जिसे लगाने के लिए उसे समस्त बेहोशी द्रव्य चढ़ाना आवश्यक था । दिसम्बर 1993 में ट्यूब हट गई और समस्त बेहोशी द्रव्य देकर नई ट्यूब लगानी पड़ी थी । प्रतिपाल्य का हृदय और फेंफड़े समान्य रूप से काम कर रहे थे । वह बोल नहीं सकती थी । वह उन लोगों को भी पहचानने में बहुत कम समर्थ थी जो लम्बी अवधि से उसकी देखभाल कर रहे थे । उसकी आंखें लोगों का पीछा करती थीं और शोर की उस पर प्रतिक्रिया होती थी, यद्यपि यह मस्तिष्क के स्टेम का मुख्यतः रिफलेक्स था ।

उच्चन्यायालय ने, जिसने मामले की सुनवाई की, नासोगेसट्रिक अथवा गेसट्रोसटोमी ट्यूब के जरिए भोजन देना बंद करने की प्रार्थना पर सहमति दी और उपचार को इस प्रकार

से रोक देने को विधिपूर्ण ठहराया । न्यायालय ने संक्रमण या अन्य विकृतिजन्य दशाओं के उपचार की चर्चा करने के बारे में भी सहमति दी जिससे प्रतिपाल्य ठीक हो सकती थी (सिवाय पीड़ा नाशक देखभाल की जिससे दर्द और पीड़ा न हो) और ऐसे उपचार को विधिपूर्ण घोषित किया ; न्यायालय ने मां और परिवार को ऐसी व्यवस्थाएं करने के लिए प्रधिकृत किया जिन्हें वे प्रतिपाल्य को किसी ऐसी संस्था में प्रवेश के लिए उचित या ठीक समझें जो उसके दर्शन और नैतिकता के प्रतिकूल न हो तथा बहुमत और घोषणाओं के अनुसार आगे कार्यवाही करें (न्यायालय ने आदेश की कार्यवाही को 21 दिन तक के लिए रोक दिया जिससे पक्षकार सुप्रीम कोर्ट जा सकें ।)

सुप्रीम कोर्ट ने निर्णय की पुष्टि कर दी । मुख्य न्या. हेमलटन ने विधि के विभिन्न महत्वपूर्ण पहलुओं पर विचार किया जो अनेक मामलों में आयरलैण्ड के न्यायालयों को परेशान कर रहे थे ।

न्या. महोदय ने <u>जे (ए माइनर)(वार्डशिप : मेडिकल ट्रीटमेन्ट) निर्देश 1990</u> (3) आल. ई. आर 930 (पृष्ठ 941) में लार्ड जस्टिस बालकोम्ब की इन टिप्पणीयों को उद्धृत किया कि कौन सी बात प्रतिपाल्य के पक्ष में है यह निर्णय करते समय न्यायालय का रुख वही होता है जो किसी माता-पिता का अपने बालक की दशा में होता है ; न्यायालय से, <u>पैरेन्स पैट्रिया</u> के रूप में प्रभुतासंपन्न (सोवरिन) के कर्तव्यों का प्रयोग करने के दौरान उससे उच्चतर या भिन्न स्तरमान अपनाने की आशा नहीं की जाती जिसे उद्देश्यपूर्ण दृष्टि के कोई युक्तियुक्त और उत्तरदायी माता-पिता अपनाते ।

अपीली न्यायालय का यह समाधान हो गया था कि प्रतिपाल्य पूर्ण रूप से स्थायी जड़ दशा (पी. वी. एस) में नहीं थी क्योंकि उसमें न्यूनतम पहचान की सामर्थ्य थी । तथापि 20 वर्ष के पश्चात् भी उसके सुधार की कोई संभावना नहीं थी ।

माँ और परिवारजनों ने जीवन समर्थक उपचार को बंद करने का समर्थन किया ।

हाउस ऑफ लार्डस द्वारा निर्णीत एअरडेल के मामले में से, तथा हाई कोर्ट के निर्णयों में से, विस्तृत रूप से उदाहरण देते हुए मुख्य न्या. हेमलटन ने एअरडेल में सर एम. आर थोमस विंगहम के इस निर्णय का उल्लेख किया कि यूथानासिया और सहायता-जन्य आत्महत्या भिन्न-भिन्न थे, जैसा कि निम्नलिखित कथन है :

> "तथापि, प्रारम्भ से ही इस बारे में स्पष्ट रहना होगा कि मामला क्या है न कि मामला किस बावत है । यह यूथानासिया की बाबत नहीं है यदि उसका अर्थ मृत्युकारित करने के लिए सकारात्मक कार्यवाही करना है । यह किसी वृद्ध और अपंग को या मानसिक रूप से या शारीरिक रूप से अपूर्ण व्यक्ति को समाप्त करने की बावत् में नहीं है.......। प्रश्न यह है कि क्या आप किसी ऐसे संज्ञाहीन रोगी के, जिसके सुधार की कोई आशा नहीं है और जब यह ज्ञात है कि यदि ऐसा किया जाता है तो रोगी की तत्पश्चात मृत्यु हो जाएगी, कृत्रिम भोजन तथा ऐन्टीबायोटिक औषधियों को हटा दिया जाए ।"

इसके पश्चात न्यायाधीश ने आयरलैण्ड के संविधान के अध्याय XII के उपबंधों पर विचार किया । अनुच्छेद 40 में "निजी या व्यक्तिगत अधिकारों" का (जिनके अन्तर्गत जीवन का अधिकार आदि आते हैं) उल्लेख है । अनुच्छेद 41 में "परिवार" के अधिकारों का वर्णन है और इसी में इन अधिकारों के संबंध में जीवन समर्थक प्रणाली को हटा देने की अनुमति के प्रभाव का उल्लेख है । न्यायाधीश ने कहा है कि 'जीवन का अधिकार'

की प्रकृति और महत्व के कारण, जीवन को बनाए रखने में समर्थ सभी उपाय करने के पक्ष में, सिवाय अपवादजनक परिस्थितियों में, एक मजबूत उपधारणा है । समस्या ऐसी परिस्थितियों को परिभाषित करने की थी । उन्होंने आगे कहा :

> "मृत्यु की प्रक्रिया जीवन का अन्तिम और निश्चित परिणाम है अतः जीवन के अधिकार में अनिवार्य रुप से यह अधिकार अन्तर्निहित है कि प्रकृति अपनी तरह से कार्य करे तथा प्राकृतिक मृत्यु प्राप्त हो और, जब तक कि व्यक्ति ऐसी कोई इच्छा न करे तब तक असामान्य कृत्रिम साधनों से भोजन व्यवस्था को कृत्रिम रुप से बनाए रखकर, जिन साधनों का उपचार की दृष्टि से कोई प्रभाव नहीं है केवल जीवन को कृत्रिम तरीकों से खींचा जाए ।
>
> इस प्रकार से परिभाषित अधिकार में जीवन को समाप्त कर देने का अथवा मृत्यु की गति बढ़ा देने का अधिकार नहीं है, और यह अधिकार मृत्यु की प्राकृतिक प्रक्रिया तक सीमित है । किसी भी व्यक्ति को अपना जीवन समाप्त करने या करा देने का अथवा अपनी मृत्यु की गतिशीलता में वृद्धि करने या कराने का अधिकार नहीं है ।"

इस मामले में क्योंकि रोगी को कृत्रिम रुप से जीवित रखा जा रहा है और उपचार से न तो सुधार होगा न सुधार होने का उद्देश्य है और गत बीस वर्षो में ऐसा चला आ रहा है, अतः यह जीवन को समाप्त करने का मामला नहीं है ।

मुख्य न्या. हेमलटन ने यह भी कहा कि शारीरिक समग्रता, निजत्व और स्वअवधारण के अधिकार "अगणित अधिकारों" में है किन्तु वे 'जीवन के अधिकार' में अन्तरनिहित हैं। यदि रोगी मानसिक रूप से सक्षम है तो यह अधिकार उपलब्ध है, और रोगी यह कामना कर सकता है कि कृत्रिम उपचार को रोक दिया जाये भले ही उसके परिणामस्वरूप मृत्यु हो जाये। कृत्रिम उपचार गहन होता है अतः रोगी की शारीरिक की समग्रता में व्यवधान है और ऐसे उपचार को भोजन का सामान्य साधन नहीं माना जा सकता। 'कोई सक्षम व्यस्क यदि प्राणांततःरूग्ण है, तो उसे जीवन बचाव उपचार को छुड़वा देने का या बंद कर देने का अधिकार है। प्रतिपाल्य को दिया जा रहा उपचार 'चिकित्सीय उपचार' की श्रेणी में आता है और 'चिकित्सीय देखभाल' मात्र नहीं है जैसा कि सर स्टीफेन ब्राउन ने एअरडेल एन. एच. ट्रस्ट में कथन किया था। नासोगेस्ट्रीक ट्यूब के माध्यम से कृत्रिमतः भोजन देना 'चिकित्सीय उपचार' है। क्योंकि प्रतिपाल्य चिकित्सीय उपचार को बंद कर देने के अधिकार का प्रयोग करने में असमर्थ थी अतः किसी व्यक्ति या किन्हीं व्यक्तियों को उसकी ओर से इस अधिकार के प्रयोग की छूट नहीं थी। सभी नागरिक, मानव के रूप में, विधि के समक्ष समान हैं। यदि किसी व्यक्ति की मानसिक सामर्थ्य नष्ट हो जाती है तो इससे उसके संविधान द्वारा स्वीकृत वैयक्तिक अधिकार जिनके अर्न्तगत जीवन का अधिकार, शारीरिक समग्रता का अधिकार, निजत्व का अधिकार, स्वअवधारण का अधिकार और चिकित्सीय देखरेख या उपचार करने से इन्कार करने के अधिकार भी हैं; कम नहीं हो जाते हैं। कम या क्षीण हो गई सामर्थ्य के उपरान्त भी प्रतिपाल्य इन अधिकारों के आदर, प्रतिरक्षा, निवारण और सुरक्षा पर अन्यायपूर्ण आक्रमण के विरूद्ध सामर्थ्य होती है। इस तथ्य के कारण कि रोगी न्यायालय का प्रतिपाल्य है और कोर्ट्स (सपलीमेन्टेड प्रोवीजन) एक्ट, 1961 की धारा 9 के उपबन्ध उसे लागू होते हैं, उक्त अधिकारों के प्रयोग और अनुतोष प्रदान करने का उत्तरदायित्व न्यायालय पर आ जाता है। पहली विचारयोग्य बात यह है कि प्रतिपाल्य का कल्याण और हित सर्वोपरि हैं जैसा कि

लार्ड एल. सी हेलशाम ने (ए माइनर)(वार्डशिप : स्टरलाईजेशन) निर्देश ; (1988 ए. सी 199 पृष्ठ 202 पर) कहा है । जे (ए माइनर)(वार्डशिप : मेडिकल ट्रीटमेन्ट) निर्देश 1990 (3) आल. ई. आर 930 में न्या. बालकोम्ब के कथनानुसार, पैरेन्स पैट्रिया के रूप में प्रभुत्वसम्पन्न के प्रतिनिधि के रूप में न्यायालय उसी मानदण्ड को ग्रहण करेगा जिसे युक्तियुक्त और उत्तरदायी माता-पिता अपनाते । न्यायालय प्रतिपाल्य के संवैधानिक अधिकारों का सम्मान करता है और इन अधिकारों की रक्षा करने और अनुतोष प्रदान करने के लिए बाध्य है ।

सुप्रीम कोर्ट ने, इसी आधार पर समाधान हो जाने पर, ट्यूब से भोजन के कृत्रिम असामान्य साधन को हटा देने और बंद कर देने की 'भयावह' सहमति प्रदान की थी और इस प्रकार रोगी के जीवन के निष्प्रयोजन बढ़ाये जाने से रोक दिया था और उसे मरने की अनुमति दी थी । "प्रतिपाल्य की मृत्यु का सही कारण इस प्रकार से भोजन देना बंद करना नहीं होगा अपितु वह क्षतियाँ होंगी जो उसे 26 अप्रैल 1972 को हुई थी ।" विचारण न्यायाधीश ने उक्त उपचार को रोकने की अनुमति देते समय इस तथ्य को ध्यान में रखा था कि "उपचार उल्लंघन कार्य था और भारपूर्ण था तथा उसका कोई निदानात्मक प्रभाव नहीं था और इस बात को भी ध्यान में रखा था कि प्रतिपाल्य की पहचान की शक्ति न्यूनतम मात्र थी, वह तेईस वर्षों से उस दशा में थी तथा माता और परिवार के अन्य सदस्यों की इच्छा, चिकित्सीय साक्ष्य तथा कार्यवाही के सभी पक्षकारों के विचारों को भी ध्यान में रखा था ।"

न्या. ओ. फ्लाहर्टी ने एक पृथक् किन्तु सहमति का निर्णय देते हुए, वाल्श बनाम फेमिली प्लानिंग सर्विस लि. 1992 आई. आर 496 का उल्लेख करते हुए यह कथन किया कि सक्षम व्यक्ति को चिकित्सीय उपचार के बारे में सहमति देनी चाहिए और,

परिणामतः, उसे चिकित्सीय उपचार से इन्कार करने का पूर्ण अधिकार है भले ही उसके परिणामस्वरूप मृत्यु हो जाए । अमेरिका की विधि में, यह अधिकार स्व-अवधारण का संवैधानिक अधिकार है (जो अन्यथा शारीरिक समग्रता का अधिकार है) तथा इसे वैयक्तिकता या निजता का अधिकार भी माना जाता है । आयरलैण्ड की विधि भी ऐसी ही है (रियान बनाम ए. जी : (1965) आई. आर 94 तथा कैनेडी बनाम आयरलैण्ड : (1987) आई. आर 587) यदि प्रतिपाल्य उपचार को हटा देने का निर्णय लेने में असमर्थ है तो उसकी ओर से सहमति दी जानी चाहिए । " जीवन के अधिकार" के बारे में, यूरोपीय कन्वेन्शन के अनुच्छेद 2 और 6 तथा आई. सी. सी. पी. आर का अनुच्छेद 6 सुसंगत हैं । न्यायाधीश का कथन है कि :

> " यह मामला जीवन समाप्त करने के बारे में नहीं है अपितु इस बारे में है कि प्रकृति को अपना मार्ग अपनाने की अनुमति दी जानी चाहिए जैसाकि कुछ वर्ष पूर्व हो गया होता और उस स्थिति में हो जाता है जहाँ चिकित्सीय तकनीक में इतनी प्रगति नहीं हुई है जितनी कि इस देश में ।"

न्यायाधीश महोदय ने ऐरीजोना की सुप्रीम कोर्ट के रासमुसीन बनाम फ्लैमिंग (1987) 154 ऐरीजोना 207 में से एक सुन्दर उदाहरण दिया है जो निम्नलिखित रूप में है :

> "बहुत दिन की बात नहीं है जब जीवन और मृत्यु के क्षेत्रों को एक स्वर्णिम रेखा से विभाजित किया गया था । अब यह रेखा चिकित्सीय तकनीक में आश्चर्यजनक प्रगति के कारण- ऐसी प्रगति जो कुछ ही वर्ष पूर्व तक वैज्ञानिक कल्पना के सृष्टाओं के, जैसे जूल्स वर्न तथा एच. जी.

वेल्स, विचारों के रूप में कल्पित थी, इस रेखा को धुंधला कर दिया है। चिकित्सा तकनीक एक ऐसी स्थगित सक्रियता के प्रकाश क्षेत्र में प्रवेश कर गई है जहाँ मृत्यु का आरंभ हो जाता है किन्तु जीवन, किसी न किसी रूप में, चलता रहता है। तथापि, कुछ रोगी नहीं चाहते कि केवल चिकित्सा तकनीक द्वारा जीवन की निरन्तरता बनाई रखी जाये। इसकी अपेक्षा वह चिकित्सा उपचार की ऐसी योजना अधिक पसंद करते हैं जो प्रकृति को अपना मार्ग अपनाने दे और स्वाभिमानपूर्वक मृत्यु की अनुमति प्रदान करे।" (रेखांकित अंश पर बल दिया गया है।)

न्यायाधीश ने फियोरी निर्देश (1995) ए. आर (द्वितीय) 1350 में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में राज्य अपीली न्यायालय के निर्णय का उल्लेख किया है जिसमें अमेरिका के न्यायालयों के 50 से अधिक निर्णयों का पुनरीक्षण करने के बाद कहा गया था कि "ऐसा प्रतीत होता है कि यूनाईटेड स्टेट में इस बारे में लगभग न्यायिक मतैक्य है कि उसी मार्ग की अनुमति दी जाये जो इस मामले में विद्वान् विचारण न्यायालय ने स्वीकार किया है।" इस मामले में यू. एस के निम्नलिखित मामलों का संक्षिप्त विवरण दिया गया था :

"(1) इस विषय पर किसी कानून का अभाव होते हुए भी, निरन्तर जड़ दशा में स्थित किसी व्यक्ति की जीवन प्रणाली को हटा देने की स्वीकृति जिन विभिन्न कानूनी सिद्धान्तों पर आधारित है वे अब 'सर्वोत्तम हित' विश्लेषण, 'प्रतिस्थापित निर्णय मानदण्ड' तथा 'स्पष्ट तथा समाधानप्रद' सबूत के साक्ष्य के रूप में सीमित हो गये हैं जिन्हें संघ और राज्य के निजता के अधिकारों से बल प्राप्त होता है।

(2) जीवन समर्थक चिकित्सीय उपचार को त्याग देने के किसी व्यक्ति के अधिकार को शारीरिक समग्रता (स्व-अवधारण) में अवांछित व्यवधान से स्वतंत्रता की कामन विधि का अधिकार भी समान रूप से लागू होता है ।

(3) किन्तु शारीरिक समग्रता के अधिकार का प्रयोग केवल ऐसे व्यक्ति द्वारा किया जा सकता है जो अपनी दशा का मूल्यांकन करने में सक्षम है । अन्यथा, इसका प्रयोग 'प्रतिस्थापित निर्णय' के सिद्धान्त के अर्न्तगत किसी प्रतिनिधि द्वारा लिया जायेगा । न्यायालय <u>केवल</u> 'प्रतिस्थापित निर्णय' के सिद्धान्त का आश्रय लेंगे यदि प्रतिनिधि के रुप में निर्णय लेने वाला अक्षम व्यक्ति के चयनों को युक्ति-युक्त सुनिश्चितता के साथ प्रकट करता है । जहां रोगी ने सक्षमता की समाप्ति से पूर्व उपचार के चयन के संबंध में अपने विचार प्रकट किये हैं तो न्यायालय प्रतिनिधि के बारे में यह मत रखता है कि प्रतिनिधि अक्षम के चयन को प्रभावी करने का साधन मात्र प्रस्तुत कर रहा है । उदाहरण के लिए, मृत्यु को प्राप्त हो रहे रोगी का स्वअवधारण का अधिकार उसके परिवार, चिकित्सक या अन्य देखभाल करने वालों के अधिकारों की अपेक्षा इस विषय में अधिक महत्वपूर्ण है कि व्यक्ति के हितों या नैतिक मूल्यों के विषय में उपचार के निर्धारण का आधार क्या हो । ऐसे अक्षम व्यक्ति का, जिसकी क्षमता वापिस नहीं आएगी स्वअवधारण का अधिकार राज्य के उस हित की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है तो राज्य को जीवन के संरक्षण, आत्महत्या के निवारण मरणासन्न रोगी के तृतीय पक्षकार आश्रितों के बचाव, तथा चिकित्सा व्यवसाय की नैतिक समग्रता के संरक्षण के लिये है । (<u>विवलान</u> रीवीजीटेड; द ज्यूडीशियल रोल इन प्रोटेक्टिंग द प्राइवेसी राइट ऑफ डाइंग

इनकाम्पीटेंटस निर्देश; (1988) 15 हेस्टी कान्सटी लॉ क्वाटरली 479, 484-486)"।

यदि कोई सक्षम रोगी सज्ञान निर्णय लेता है तो वह स्वीकार योग्य है । तथापप, न्या. ओ. फ्लाहर्टी ने अमेरीका के न्यायालय के 'प्रतिस्थापित निर्णय' के सिद्धांत से असहमति जतायी है, जो ठीक है (इस सिद्धान्त को हाउस ऑफ लार्डस ने भी एअरडेल में खारिज कर दिया था ।) न्यायाधीश महोदय का कथन है कि वह 'सर्वोत्तम हित' के सिद्धान्त को अधिमानता देते हैं ।

न्या. ब्लेनी ने अपने सहमति के निर्णय में, यू. एस सुप्रीम कोर्ट द्वारा क्रूजन बनाम डाइरेक्टर, मिसूरी डिपार्टमेन्ट ऑफ हेल्थ (1990) 497 यू. एस 261 को उद्धृत करते हुए उल्लेख किया है कि यू. एस के मामले में ब्रेनन तथा ओ. कोनूर इस बात पर सहमत थे कि कृत्रिम प्रकार से भोजन देना 'चिकित्सीय उपचार' है । मार्शल तथा ब्लैकमेन भी इस विचार से सहमत थे । मुख्य न्या. रैनक्विस्ट ने भी कृत्रिम पोषण और जल आपूर्ति की गणना 'चिकित्सीय उपचार' में की है ।

न्या. डेनहम ने, विचारण न्यायालय के साथ सहमति व्यक्त करते हुए, क्विनलॉन निर्देश (1976 355 ए (द्वितीय) 647) का उल्लेख किया है जिसमें यह कहा गया था कि "निजता का अधिकार शारीरिक आक्रमण की मात्रा के साथ-साथ बढ़ता है ।"

(6) लॉ हॉस्पीटल एन. एच. ट्रस्ट बनाम लार्ड एडवोकेट (स्कोटलैण्ड); (1996) एस. एल. टी 848 = 1996 एस. सी. एल. आर 491) (22 मार्च 1996) (लार्ड प्रेसीडेन्ट (होप), लार्ड

क्लाईड, लार्ड कूलन, लार्ड मिलिंगन और लार्ड वायली) (कोर्ट ऑफ सेशन, इनर हाउस) पांच न्यायाधीशो का न्यायालय -

श्रीमती जे नाम की रोगी 22 जनवरी 1992 से निरन्तर जड़ दशा (पी. वी. एस.) में थी । उनके सुधार की आशा नहीं थी और वे आगे कार्यवाही करने के बारे में विधिपूर्ण सहमति देने में असमर्थ थी । वह न तो देख सकती थी, न सुन सकती थी, न दुख सुख का अनुभव कर सकती थी, न शब्दों या संकेतों द्वारा बात कर सकती थी, न तो किसी प्रकार स्वैच्छिक हिलना डुलना कर सकती थी । मस्तिष्क स्टेम जीवित था । श्वास प्रणाली, हृदयगति और पाचन प्रणाली को कृत्रिम रूप से चालू रखा जा रहा था । अनिच्छापूर्वक आंखों के हिलने डुलने और आवाज निकालने की सामर्थ्य से ऐसा लगता था कि वह प्रकट रूप से जाग्रत थीं । बीच बीच में वह आंखें बन्द कर लेती थी जिससे प्रकटरूप से लगता था वह सो रही हैं । वह स्थायी रूप से संज्ञाहीन थी । परामर्शी चिकित्सक और दो संज्ञा-विज्ञानियों का यह मत था कि उसकी दशा निराशापूर्ण थी और उपचार के कोई उपयोगी रास्ते नहीं बचे थे । वादार्थ संरक्षक उनका प्रतिनिधित्व कर रहा था । उसके पति, पुत्री और दो भाई सहमत थे कि जीवन समर्थक प्रणाली और चिकित्सीय उपचार बन्द कर दिये जाने चाहिए । तथापि, रोगी सहमति देने के योग्य नहीं थी ।

वर्तमान कार्यवाही एन एच ट्रस्ट ने आउटर हाउस में सामान्य कार्यवाही के रूप में प्रारम्भ की थी और इसकी रिपोर्ट इनर हाउस को दी गई । जिन घोषणाओं की वांछा की गई थी वे <u>एअरडेल</u> में वांछित घोषणाओं के समान थीं । इंग्लैंड में, जहॉं <u>पैरेन्स पैट्रीया</u> की अधिकारिता समाप्त कर दी गई थी, न्यायालयों ने एक ऐसी प्रक्रिया आरम्भ की जिसके द्वारा जीवन समर्थक उपचार को समाप्त कर देने के बारे में घोषणाऐं प्रदान

की जा सकती थी । जहाँ पैरेन्स पैट्रीया अधिकारिता शेष थी इस अधिकारिता के अन्तर्गत घोषणात्मक अनुतोष की प्रार्थना की गई थी । लार्ड आरडीनरी ने, जिनके समक्ष यह मामला आया था, इनर हाउस को रिपोर्ट करते हुए निवेदन किया कि इस संबंध में निर्णय दिया जाए जिसमें कार्यवाही की सक्षमता के बारे में निर्णय भी सम्मिलित हैं ।

लार्ड प्रेसीडेन्ट (लार्ड होप) ने व्यक्ति को कृत्रिम श्वास प्रणाली और कृत्रिम पोषण से जीवित रखने के चिकित्सा तकनीक में उपलब्ध आधुनिक आक्रामक प्रक्रियाओं का उल्लेख किया जिनके प्रयोग न किये जाने से रोगी की सामान्यतया मृत्यु हो जाती । ऐसे मामले में जहां रोगी पूर्ण आयु का था और जिसमें समझने की सामर्थ थी तथा उक्त प्रक्रियाओं के लिये सहमति देने में समर्थ था और जहां चिकित्सकीय राय में कहा गया था कि ऐसी प्रक्रियायें उसके हित में थी वहां रोगी स्व-अवधारण के अधिकार के आधार पर चिकित्सीय उपचार से इन्कार कर सकता था और ऐसा करने से, जहां तक न्यायालय का संबंध था, सभी समस्याओं का समाधान हो जाता था । इसमें कोई संदेह नहीं था कि उस चिकित्सक को जो अपने रोगी की सहमति से कोई कार्य करता हैं या कार्य करने में कोई लोप करता है, न्यायालय की मंजूरी अपेक्षित नहीं हैं ।

समस्यायें वहां उठी जहां रोगी पूर्ण आयु का नहीं था और उसमें प्रस्तावित उपचार पर सहमति देने की सामर्थ्य नहीं थीं । ऐसे प्रश्नों पर विधि को दृढ़तापुर्वक निर्णय देने चाहिए न कि डाक्टरों की चारित्रिक बाध्य का उल्लेख भर करना चाहिए क्योंकि 'जानबूझकर किया गया ऐसा लोप जिससे मृत्यु हो जाती है, चिकित्सक पर आरोप लगा सकता है कि उसका आचरण आपराधिक है ।' विधि की वर्तमान स्थिति में, डाक्टर के लिये ऐसा कथन एक पर्याप्त आश्वासन नहीं है कि उसका प्रस्तावित आचरण चिकित्सीय

दृष्टि से नैतिकतापूर्ण है । डाक्टर को विधि के अर्न्तगत सिविल या दाण्डिक दायित्व को जानने का अधिकार था ।

लार्ड प्रेसीडेन्ट ने यह कथन किया कि एअरडेल में हाउस ऑफ लार्डस ने इस लोकनीति के आधार पर निर्णय लिया था कि न्यायालयों को, घोषणायें प्रदान करके स्पष्ट निर्णय देना चाहिए कि वह मार्ग, जो डाक्टर अपनाने चाहते थे, विधिपूर्ण था या नहीं । चिकित्सा जगत को न्यायालयों की ओर निहारने का अधिकार था । इस मत का समर्थन स्काटिश लॉ कमीशन ने रिपोर्ट ऑन इन्केपेबिल एडल्टस के विषय में अपनी रिपोर्ट में किया है ।
स्काट लॉ, कोम नं. 151, पेरा 5.86) ।

लार्ड प्रेसीडेन्ट ने कहा कि उसी रीति से घोषणा की प्रार्थना की जा सकती है जिस रीति से एअरडेल में की गई थी और वैसे ही अनुतोष का दावा किया जा सकता है जिसका उल्लेख ओफिशियल सालिसीटर द्वारा मार्च 1994 के प्रेक्टिस नोट में किया गया है (1994) 25 ऑल. इंग्लैण्ड रिपोर्ट 143) ।

यह निर्णय देने के पश्चात कि स्कॉटलैण्ड में लार्ड आडीनरी को पैरेन्स पैट्रीया की अधिकारिता थी तथा वैसे ही अनुतोष की घोषणा की वांछा की गई थी जैसी स्कॉटिश लॉ कमिशन ने सोची थी अतः ऐसी याचिका चलाने योग्य थी, भले ही ऐसी याचिका पर आपत्ति की गई हो या न की गई हो ।

लेकिन, लार्ड एडवोकेट ने जो अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न उठाया था वह यह था कि क्या इस प्रकार की घोषणा के लिये आवेदन किया जा सकता है कि कोई विशेष प्रस्तावित

आचरण अपराध है या नहीं क्योंकि न्यायालय से ऐसी प्रार्थना करना दाण्डिक न्यायालयों के, जिन्हें प्रश्नों पर निर्णय देने की आत्यंतिक अधिकारिता है, उनकी अधिकारिता में हस्तक्षेप तो नहीं होगा (स्कॉटलैण्ड में, हाईकोर्ट ऑफ जस्टीसीयरी) ।

यद्यपि, वर्तमान मामले में, क्योंकि डाक्टर, माता-पिता, नातेदार, सभी जीवन समर्थक प्रणाली को हटा देने के पक्ष में थे, कोई घोषणात्मक अनुतोष मांगने की आवश्यकता नहीं थी । किन्तु, किसी भी स्थिति में लार्ड आडीनरी परिचारकों तथा रोगी के चिकित्सक को 'मार्गनिर्देश और पुनः आश्वासन' देने के प्रयोजन के लिये, जीवन समर्थक उपचार को समाप्त कर देने के कानूनी परिणामों के बारे में घोषणा प्रदान कर सकते थे यदि 'न्यायालय' द्वारा ऐसा मार्ग प्रदान करना उसकी अधिकारिता में था । ऐसे मार्गनिर्देश के बिना वे उपचार को बंद करने में समर्थ नहीं होंगे । अन्यथा, बहुत बड़ी जोखिम थी । वास्तव में, उनकी जोखिमें इस तथ्य के कारण कम नहीं हो जाती थी क्योंकि श्रीमती जे के वादार्थ संरक्षक ने शपथपत्र में यह अभिव्यक्त किया था कि यह रोगी के सर्वोत्तम हित में था कि उसका उपचार और देखभाल जारी रखा जाये, और जैसा प्रस्तावित था, उसे बंद नहीं किया जाये । प्रस्तावित घोषणा में इस अनुतोष की मांग नहीं की गई थी कि किसी विशिष्ट आचरण के बारे में यह घोषित किया जाये कि वह आपराधिक नहीं था । "मांग ऐसी घोषणा के लिये की गई है कि परिचारक और चिकित्सक उपचार को विधिपूर्णतः बंद कर सकते हैं ।"

किन्तु, अपेक्षित घोषणा में 'विधिपूर्ण' शब्द के अन्तर्गत, बिना किसी बंदिश के, यह अर्थ निकलता है कि आचरण सिविल विधि के अनुसार कर्त्तव्य भंग नहीं था और न स्कॉटलैण्ड की ज्ञात विधि के अंतर्गत की कोई अपराध था ।' हाउस ऑफ लार्डस ने एअरडेल एन. एच. एस ट्रस्ट बनाम ब्लांड में, अन्य बातों के साथ-साथ, इस तथ्य पर

विचार करने के पश्चात कि उपचार को बंद कर देने का प्रस्ताव अवैध था या नहीं क्योंकि उससे कोई अपराध बनता, इन्हीं शर्तों पर घोषणा का अनुमोदन किया था । सर स्टीफेन ब्राउन ने, फेमिली डिवीजन में, कहा था (पृष्ठ 808) कि जहां तक दाण्डिक विधि का संबंध है, किन्हीं संभावित परिणामों की बाबत् कोई घोषणा करना वह उचित नहीं समझते थे । उनकी राय के संदर्भ में, ऐसी घोषणा करने का कि प्रस्तावित कार्यवाही विधिपूर्ण थी, यह अर्थ निकलता था कि वह 'सिविल विधि के अनुसार' विधिपूर्ण थी । किन्तु अपीली न्यायालय में और हाउस ऑफ लार्डस के समक्ष, शासकीय सालीसीटर ने यह प्रस्ताव भी रखा था कि क्या प्रस्तावित कार्यवाही आपराधिक प्राकृति की है । इसके पश्चात् लार्ड प्रेसीडेन्ट ने कथन किया है कि -

> " शिवले के लार्ड गॉफ ने (पृष्ठ 862 जी पर) और लार्ड मस्टिल ने (पृष्ठ 888 ई - 889 एफ पर) किसी सिविल मामले में आपराधिकता के बारे में घोषणा मंजूर करने के बारे में गहरी हिचकिचाहट प्रकट की है । लार्ड मस्टिल ने संकेत दिया कि उस मामले में निर्णय दाण्डिक न्यायालयों में किसी भी दशा में ऐसा विबंध (ऐस्टोपेल) उत्पन्न नहीं करेगा जो भविष्य में अभियोजन पर निश्चायक वर्जन का रूप ले ले । तथापि उन्होंने प्रश्न पर निर्णय दिया और उनके सभी अभिकथनों से स्पष्ट है कि लार्डशिप का यह मत था कि प्रस्तावित आचरण इंग्लैण्ड की विधि के अनुसार अपराध नहीं बनता था ।"

लार्ड प्रेसिडेन्ट ने यह कथन करने के पश्चात, इस बात पर संदेह प्रकट किया कि यदि कोई घोषणा मंजूर की जाती है तो क्या वह दाण्डिक न्यायालयों को इस प्रश्न पर विचार करने से रोक सकती थी। उनका कथन है कि-

" यद्यपि इस कार्यवाही में सिविल विधि के बारे में घोषणा प्रदान की जा सकती है किन्तु इस न्यायालय के लिये यह कहना उसकी अधिकारिता के बाहर है कि प्रस्तावित आचरण आपराधिक है या नहीं है । फिर भी मैं समझता हूं कि यह न्यायालय केवल घोषणा के आधार पर यह कहने के लिये स्वतंत्र नहीं है कि प्रस्तावित आचरण आपराधिक है या नहीं है । यदि न्यायालय के लिये इस प्रश्न का समाधान करना इसलिये आवश्यक है कि वह यह अभिनिश्चित कर सके कि कार्यवाही का कोई पक्षकार किसी अन्य सिविल अनुतोष का हकदार है या नहीं है तो ऐसा करना उसकी अधिकारिता के अंतर्गत होगा । आचरण की आपराधिकता के बारे में निर्णय करना अनुतोष प्रदान करने का आनुषंगिक कहा जा सकता है क्योंकि ऐसा अनुतोष स्वीकार करना इस न्यायालय की शक्ति के अंतर्गत है । किन्तु केवल ऐसी घोषणा कि कोई आचरण अथवा प्रस्तावित आचरण आपराधिक है या नहीं है एक अलग स्थिति है । ऐसी घोषणा से जो प्रयोजन मात्र सिद्ध होगा वह दाण्डिक विधि के प्रवर्तन की बावत् होगा जो कि न्यायालय की अधिकारिता से परे है ।"

स्कॉटलेण्ड में, सिविल अधिकारिता कोर्ट ऑफ सैशन को है (जिसने यह निर्देश इनर हाउस के समक्ष किया जबकि दाण्डिक अधिकारिता हाई कोर्ट ऑफ जस्टीसियरी को है) । तथापि उनका कथन है कि :-

"हमसे किसी दाण्डिक कार्यवाही में हस्तक्षेप करने के लिये नहीं कहा जा रहा है जो कि पहले ही संस्थापित की जा चुकी है और न किसी अन्य प्रकार से हाईकोर्ट ऑफ जस्टीसियरी द्वारा की जा रही कार्यवाही में हस्तक्षेप करने के लिये कहा जा रहा है । हमसे यह करने की अपेक्षा

की जा रही है कि लार्ड आडीनरी को प्रस्तावित आचरण की आपराधिकता के बारे में घोषणा प्रदान करने के लिये प्राधिकृत करें और वह भी इस जानकारी के रहते हुए कि इससे उन न्यायालयों की कार्यवाही भी वर्जित नहीं होगी किन्तु इस आशा के साथ करें कि व्यावहारिक रूप से इससे यह सुनिश्चित हो जायेगा कि कहीं कोई अभियोजन नहीं होगा ।"

उनका कथन है कि कौन सी बात 'दाण्डिक आचरण' है इसका निर्णय दाण्डिक न्यायालय को करना चाहिये और ऐसा करने के लिये नीतिगत ठोस कारण हैं ।

"हम कोई भी घोषणायें प्रदान कर दें वे हाई कोर्ट ऑफ जस्टीसियरी पर बाध्यकारी नहीं होगी और ऐसी कोई घोषणा भी, जो हमारे द्वारा प्राधिकृत की जाये, लार्ड एडवोकेट पर बाध्यकारी होगी जिसे लोकहित में, हम कुछ भी क्यों न कहते रहें, दाण्डिक न्यायालयों के समक्ष कोई मामला लाने का हक है और यह प्रश्न स्पष्ट रूप से ऐसे न्यायालयों की अधिकारिता में ही है क्योंकि दाण्डिक विधि का कार्य दाण्डिक वर्जनाओं द्वारा आचरण को विनियमित करना है ।"

स्कॉटलेण्ड की दशा में एक और विशेष भिन्नता निम्नलिखित रूप में है जो कि दूसरे कारण के रूप में है:-

"एक दूसरा बिन्दु, जिसे अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए, यह है कि कोर्ट ऑफ सैशन के विरूद्ध अपील हॉउस ऑफ लार्डस में हो सकती है, हाई कोर्ट ऑफ जस्टीसियरी स्कॉटलेण्ड की दाण्डिक अधिकारिता

का सर्वोच्च न्यायालय है और उसके निर्णयों के विरूद्ध हाउस ऑफ लार्डस में अपील नहीं की जा सकती । मैकिनटॉश, लार्ड एडवोकेट (1876 (3) 12 (एच. एल 34) में यह निर्णय दिया गया था कि हाई कोर्ट ऑफ जस्टीसियरी के निर्णयों को उस न्यायालय द्वारा अंतिम तथा निश्चायक न मानना, एक्ट ऑफ यूनियन, 1707 के अनुच्छेद-19 के उपबंधों के विपरीत होगा । मेरी राय में, हमें यह बात हाईकोर्ट ऑफ जस्टीसियरी पर छोड़ देनी चाहिऐ कि वह यह परिभाषित करे कि कौन सा आचरण स्कॉटलेण्ड की विधि के अंतर्गत आपराधिक है या नहीं है । दाण्डिक विधि के विस्तार से संबधित प्रश्नों पर विचार करना कोर्ट ऑफ सैशन का काम नहीं है । हाई कोर्ट ऑफ जस्टीसियरी के निर्णय से यह बात अभी तक स्थापित नहीं हुई है ।"

इन कारणों से यद्यपि मैं यह मानता हूं कि इस मामले में लार्ड आडीनरी उचित रूप से घोषणा प्रदान कर सकते हैं, प्रस्तावित घोषणा घोषणा की शर्तो में यह स्पष्ट करने के लिये संशोधन करने की आवश्यकता होगी कि प्रस्तवित आचरण के बारे में केवल सिविल परिणामों के बारे में प्रदान की जा रही है । परिचारकों और चिकित्सक को उस आचरण के दाण्डिक परिणाम की बावत् किस प्रकार से पुनः आश्वासन दिया जाये इसके लिये अन्य समाधान तलाश करना होगा ।"

जहां तक पैरेन्स पैट्रीया अधिकारिता की विद्यमानता का संबंध है, लार्ड प्रेसिडेन्ट ने कथन किया है कि यह क्राउन की अधिकारिता थी जैसाकि एअरडेल में कहा गया है, और उसका आरंभ 13 वीं शताब्दी में हुआ था । इसमें उन व्यक्तियों के शरीर और संपत्ति की रक्षा के कर्त्तव्य को अधिकथित किया गया था जो अपनी रक्षा करने में

असमर्थ थे, जैसे की अवयस्क और विकृत चित्र के व्यक्ति । किन्तु इंग्लैण्ड और वेल्स में यह अधिकारिता केवल अवयस्कों के लिये है और जहां तक विकृतचित्त व्यक्तियों का संबंध है, मेन्टल हेल्थ ऐक्ट, 1959 तथा 10.4.1965 के वारंट के 'साईन मैन्युल के अंतर्गत वारंट' के प्रतिसंहरण के कारण, जिनके द्वारा ऐसी अधिकारिता विकृतचित्त व्यक्तियों की बावत् लार्ड चांसलर तथा हाईकोर्ट के चांसरी डिवीजन के न्यायाधीशों के समनुदेशित थी; समाप्त हो गई । अतः हॉउस ऑफ लार्डस ने एअरडेल में यह अधिकथित किया कि अवयस्कों से भिन्न व्यक्तियों की दशा में, अंतरनिहित शक्ति के अंतर्गत ऐसी घोषणा प्रदान की जा सकता थी, कि 'उपचार को बंद करने का प्रस्ताव रोगी के सर्वोत्तम हित में था' । स्कॉटलेण्ड में पैरेन्स पैट्रीया अधिकारिता की बावत् कोई समस्या नहीं थी क्योंकि एक्सचैकर कोर्ट (स्कॉटलेण्ड 1 एक्ट, 1856) की धारा-1 निरसित नहीं की गई थी यद्यपि धारा-19 निरसित कर दी गई थी ।

लार्ड प्रेसिडेन्ट ने कनाडा के मिसेज ई बनाम ईव 1986 (2) एस. सी. आर 388 का कनाडा के एक ऐसे केस के रूप में उल्लेख किया जहां पैरेन्स पैट्रीया अधिकारिता के बारे में न्या. एल. ए फौरेस्ट ने यह निर्णय दिया कि (पृष्ठ 410) न्यायालय को यह अधिकारिता उसकी अंतरनिहित शक्तियों के अंतर्गत उपलब्ध थी और न्यायालय मानसिक रूप से अक्षम व्यक्तियों के नॉन थेरापयूटिक स्टेरीलाईजेशन की अनुमति दे सकते थे । (बी (ए माइनर) (वार्डशिप;स्टेरीलाईजेशन) निर्देश ; 1988 (1) ए. सी. 199 (पृष्ठ 211) में उद्घृत) । आयरलैण्ड में, 'वार्ड ऑफ कोर्ट, इन द मैटर ऑफ ए' 1995 (2) आई सी. आर एम 401 में भी, न्यायालय यह निर्णय दे सके थे कि हाईकोर्ट के न्यायाधीश, निरन्तर जड़ दशा (पी. वी. एस) वाले किसी प्रतिपाल्य की ओर से अपनी पैरेन्स पैट्रीया अधिकारिता का प्रयोग करते हुए सहमति प्रदान कर सकते थे । स्कॉटलेण्ड में विकृतचित व्यक्तियों को न्यायालय का प्रतिपाल्य मानने की रीति नहीं है ।

अन्त में, लार्ड प्रेसिडेन्ट ने निर्णय दिया कि ऐरिया हेल्थ ओथोरिटी या एन. एच. एस ट्रस्ट द्वारा, कोई रोगी तत्समय जिसकी देखरेख में था, अथवा, डेमेजेज (स्कॉटलेण्ड) ऐक्ट, 1956 की धारा एक के अर्थ में, रोगी के किसी नातेदार द्वारा आउटर हॉउस के समक्ष आवेदन प्रस्तुत किया जा सकता है । आवेदन उपचार को हटा देने की राहत मांगने के लिये किया जायेगा । लार्ड एडवोकेट, एरिया हेल्थ ओथोरिटी या एन. एच. एस ट्रस्ट को तथा रोगी के नातेदारों को सुनना होगा । चिकित्सा रिपोर्टों, प्रस्तावित उपचार या चिकित्सा समर्थक उपायों को बंद कर देने के प्रस्ताव की मांग की जायेगी । ट्रीटमेन्ट डिसीजन फॉर पेशैन्ट्स इन परसिसटेन्ट वेजीटेटिव स्टेज विषय पर बी. एम. ए मार्गनिर्देशों (जुलाई 1993) में दी गई सलाह को ध्यान में रखते हुए जीवन को बढ़ाने वाले उपचार को तब तक चालू रखा जाना चाहिए जब तक कि रोगी 12 माह तक संज्ञाहीन न रहा हो । पी. वी. एस के उपचार तथा ब्यौरे प्रस्तुत किये जाने चाहिये । रोगी के अग्रिम निर्देशों का, यदि कोई हैं, कथन किया जाना चाहिए चाहे वह लिखित में हों या अन्यथा । यह प्रार्थना की जानी चाहिये कि रोगी के हितों की रक्षा करने के लिये एक वादार्थ संरक्षक नियुक्त किया जाये । मामले की सुनवाई नोटिस बोर्ड पर कोई सूचना लगाये बिना, जब तक कि लोकहित में यह अपेक्षित न हो, चैम्बर में की जानी चाहिये । घोषणा के लिये प्रार्थना करने की आवश्यकता नहीं है । न्यायालय के पैरेन्स पैट्रीया अधिकारिता के प्रयोग किये जाने की प्रार्थना की जा सकती है । रोगी की दशा के बारे में कम से कम दो चिकित्सा रिपोर्टें आवश्यक हैं, और आवेदन में प्रस्तावित उपचार या उपचार बंद करने के प्रस्ताव का उल्लेख किया जाना चाहिये जिससे कि रोगी स्वाभिमानपूर्वक मृत्यु को प्राप्त हो सके । (लार्ड क्लाईड, लार्ड कल्लेन, लार्ड मिलिगन ने अलग-अलग निर्णय लिखे थे । लार्ड वाइली ने लार्ड प्रेसिडेन्ट के साथ सहमति प्रकट की थी)।

(7) बी (ए माइनर) ; वार्डशिप स्टेरीलाइजेशन) निर्देश ; 1988 (1) ए. सी. 199

यह मामला एक 17 वर्षीय मानसिक रूप से अविकसित प्रतिपाल्य की बावत् था जिसकी भाषा की समझ की सामर्थ्य 6 वर्ष के बालक के बराबर थी। सनडरलैण्ड बोरो काउंसिल, जहां वह रहती थी का स्टॉफ ओर रोगी की माँ ने यह जान लिया था कि लड़की में लैंगिक जागरूकता के चिन्ह प्रकट हो रहे थे और वह गर्भवती हो सकता थी। काउंसिल ने इस आदेश के लिये न्यायालय में आवेदन किया कि न्यायालय के प्रतिपाल्य बी का अनिवार्य रूप से स्टेरीलाइजेशन किये जाने की अनुमति दी जाये। वह हंगामा कर सकती थी और सामान्य रूप से बालक के जन्म के दौरान उसे भारी मात्रा में बेहोशी में रखना आवश्यक था जिससे उसे क्षति पहुंचने की संभावना थी। सीजेरियन को अनुपयुक्त समझा गया था। वह माँ के रूप में बालक की देखभाल नहीं कर सकती थी। न्या. बुश ने स्टेरीलाइजेशन की अनुमति प्रदान की।

अपील में, उक्त निर्णय की पुष्टि की गई। आगे और अपील में, हाउस ऑफ लार्डस ने भी निर्णय की पुष्टि कर दी और कहा कि प्रतिपाल्य अधिकारिता का प्रयोग करने वाले न्यायालय को किसी प्रतिपाल्य के स्टेरीलाइजेशन के ऑपरेशन की अनुमति के लिये किये गये आवेदन पर निर्णय देते समय केवल एक बुनियादी और सर्वोपरि बात पर ध्यान देने की आवश्यकता थी अर्थात, प्रतिपाल्य का कल्याण और सर्वोतम हित; तदनुसार, बी के गर्भवती हो जाने की जोखिम के बारे में प्रस्तुत किये गये साक्ष्य, प्रभावशील गर्भनिरोधकों की कमी, जो उसके लिये निर्मित करने की आवश्यकता थी, बच्चे के जन्म से उसे जो कष्ट हो सकता था उसे और रोगी या उसके बालक को क्षति

(7) बी (ए माइनर) : वार्डशिप स्टेरीलाइजेशन) निर्देश ; 1988 (1) ए. सी. 199

यह मामला एक 17 वर्षीय मानसिक रूप से अविकसित प्रतिपाल्य की बावत् था जिसकी भाषा की समझ की सामर्थ्य 6 वर्ष के बालक के बराबर थी । सनडरलैण्ड बोरो काउंसिल, जहां वह रहती थी का स्टॉफ और रोगी की माँ ने यह जान लिया था कि लड़की में लैंगिक जागरूकता के चिन्ह प्रकट हो रहे थे और वह गर्भवती हो सकता थी । काउंसिल ने इस आदेश के लिये न्यायालय में आवेदन किया कि न्यायालय के प्रतिपाल्य बी का अनिवार्य रूप से स्टेरीलाइजेशन किये जाने की अनुमति दी जाये । वह हंगामा कर सकती थी और सामान्य रूप से बालक के जन्म के दौरान उसे भारी मात्रा में बेहोशी में रखना आवश्यक था जिससे उसे क्षति पहुंचने की संभावना थी । सीजेरियन को अनुपयुक्त समझा गया था । वह माँ के रूप में बालक की देखभाल नहीं कर सकती थी । न्या. बुश ने स्टेरीलाइजेशन की अनुमति प्रदान की ।

अपील में, उक्त निर्णय की पुष्टि की गई । आगे और अपील में, हाउस ऑफ लार्डस ने भी निर्णय की पुष्टि कर दी और कहा कि प्रतिपाल्य अधिकारिता का प्रयोग करने वाले न्यायालय को किसी प्रतिपाल्य के स्टेरीलाइजेशन के ऑपरेशन की अनुमति के लिये किये गये आवेदन पर निर्णय देते समय केवल एक बुनियादी और सर्वोपरि बात पर ध्यान देने की आवश्यकता थी अर्थात, प्रतिपाल्य का कल्याण और सर्वोतम हित; तदनुसार, बी के गर्भवती हो जाने की जोखिम के बारे में प्रस्तुत किये गये साक्ष्य, प्रभावशील गर्भनिरोधकों की कमी, जो उसके लिये निर्मित करने की आवश्यकता थी, बच्चे के जन्म से उसे जो कष्ट हो सकता था उसे और रोगी या उसके बालक को क्षति

पहुंचने की जोखिम को रोकने की दृष्टि से और इस दृष्टि से कि रोगी में बालक की चाह या देखभाल की सामर्थ्य नहीं थी, ऑपरेशन करना रोगी के सर्वोत्तम हित में था ।

तथापि, लार्ड टैम्पेलमैन ने यह टिप्पणी की कि 18 वर्ष से कम की लड़की का स्टेरीलाइजेशन (गर्भरोधक शल्य चिकित्सा) हाईकोर्ट के न्यायाधीश की अनुमति के सिवाय नहीं किया जाना चाहिये । अन्यथा, केवल माता-पिता की सहमति के आधार पर किसी बालक की गर्भनिरोधक शल्य चिकित्सा करने वाला डाक्टर आपराधिक दायित्व के अधीन आ सकता था ।

कनाडा की सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश एल. ए फोरेस्ट द्वारा <u>इरे निर्देश</u>; (1986) 31 डी. एल. आर चतुर्थ) सी. ए में दिए गए निर्णय से, जिसमें यह कहा गया था कि न्यायालय किसी अवयस्क की गर्भनिरोधक शल्य चिकित्सा के लिये कभी अनुमति नहीं दे सकता था, बहुमत ने असहमति प्रकट की। न्यायाधीशों ने <u>डी (ए माइनर) (वार्डशिप ; स्टेरीलाइजेशन) निर्देश</u>; 1976 (फेम) 185 में न्यायाधीश हीलबोर्न के इस निर्णय का अनुमोदन किया कि किसी बालिका की गर्भनिरोधक शल्य चिकित्सा की अनुमति दी जा सकती थी यदि ऐसा न करने से गर्भधारण करने का निरुपाय खतरा हो सकता था ।

(8) <u>एफ (मेन्टल पेशेन्ट: स्टेरीलाइजेशन) निर्देश;</u> 1990 (2) ए. सी. 1 - इस मामले में रोगी अवयस्क नहीं था अतः <u>पैरेन्स पैट्रीया</u> अधिकारिता उपलब्ध नहीं थी, किन्तु फिर भी अंतरनिहित शक्ति के सिद्धान्त को लागू करते हुए वही कसौटी, अर्थात्, 'रोगी का सर्वोत्तम हित' की कसौटी ओकब्रुक के लार्ड ब्राण्डन ने लागू की (पृष्ठ 64) ।

इस मामले में महिला रोगी की आयु ३६ वर्ष थी, वह मानसिक रूप से विकलांग थी और शल्य चिकित्सा के लिये सहमति देने योग्य नहीं थी । वह गर्भवती हो गई । अस्पताल के कर्मचारीवृंद को लगा कि वह गर्भावस्था तथा बच्चे को जन्म देने के प्रभावों को सहन नहीं कर पायेगी और क्योंकि अन्य सभी प्रकार के गर्भनिरोधक अनुपयुक्त थे अतः इसे अवांछनीय समझा गया कि लैंगिक कार्यकलापों को वर्जित करने के उद्देश्य से उसकी हिलने डुलने की सीमित स्वतंत्रता पर रोक लगाई जाये और यह उसके सर्वोत्तम हित में था कि उसे स्टेरीलाइज किया जाये । रोगी की मां ने, जिसका भी यही मत था, न्यायालय से ऐसी घोषणा के लिये प्रार्थना की कि ऐसी शल्य चिकित्सा रोगी की सहमति के अभाव के कारण अवैध कार्य नहीं होगी । विचारण न्यायाधीश ने और अपीली कोर्ट ने भी यह स्वीकार किया कि रोगी को स्टेरीलाइज किया जाये ।

अपील में, हाउस ऑफ लार्ड्स ने इस निर्णय की पुष्टि की और <u>बोलम</u> बनाम <u>फ्रीइर्न हॉस्पीटल मेनेजमेन्ट कमैटी</u> : 1957 (1) डबल्यू. एल. आर 582 तथा <u>बी (ए माइनर) (वार्डशिपः स्टेरीलाइजेशन) निर्देशः</u> (1988 ए. सी 199 को उद्धृत किया । न्यायालय ने कहा कि अपनी 'अंतरनिहित' अधिकारिता के अन्तर्गत न्यायालय ऐसी घोषणा करने के लिये स्वतंत्र था कि प्रस्तावित आपरेशन वहां रोगी के सर्वोत्तम हित में थे जहां रोगी वयस्क तो थी किन्तु सज्ञान सहमति देने में असमर्थ थी तथा जहां ऐसी कार्यवाही का उद्देश्य उसे गर्भवती होने की जोखिम से बचाना था ।

यद्यपि इंग्लैण्ड में, मानसिक रूप से रूग्ण रोगियों की दशा में, <u>पैरेन्स पैट्रीया</u> अधिकारिता कानून के द्वारा समाप्त कर दी गई थी, विचारण न्यायाधीश द्वारा अपीली

न्यायालय ने निर्णय दिया कि न्यायालय अपनी अंतरनिहित अधिकारिता के अंतर्गत अपनी सहमति प्रदान कर सकता था ।

हाउस ऑफ लार्डस ने निर्णय दिया की यद्यपि <u>पैरेन्स पैट्रीया</u> अधिकारिता उपलब्ध नहीं थी क्योंकि वह मानसिक रूप से रूग्ण रोगियों की दशा में कानून द्वारा समाप्त कर दी गई थी, न्यायालय को फिर भी यह घोषणा प्रदान करने की अंतरनिहित अधिकारिता थी कि उस मामले की परिस्थितियों में एफ को स्टेरीलाइज करना अवैध नहीं होगा यदि ऐसा करना रोगी के सर्वोत्तम हित में था । यद्यपि कोई घोषणा प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं था, क्योंकि डॉक्टर इस आधार पर शल्य चिकित्सा कर सकते थे कि ऐसा करना रोगी के सर्वोत्तम हित में था, किन्तु <u>व्यवहार में,</u> ऐसा ऑपरेशन करने का जब भी प्रस्ताव हो तब न्यायालय की अधिकारिता की शरण ली जानी चाहिए 'क्योंकि ऐसी घोषणा, न्यायिक प्रक्रिया द्वारा, यह स्थापित करेगी कि प्रस्तावित ऑपरेशन रोगी के सर्वोत्तम हित में था या नहीं तथा वह 'विधिपूर्ण' था । यह अवधारण करते समय की प्रस्तावित आपरेशन रोगी के सर्वोत्तम हित में था, न्यायालय इस सुस्थापित कसौटी को लागू कर सकता था कि किसी उचित चिकित्सीय राय के निकाय द्वारा, जो किसी विशेष प्रकार के उपचार में कुशलता प्राप्त है, तत्समय कौन सा उपचार उचित उपचार के रूप में स्वीकार किया जायेगा । <u>कॉमन विधि में, डॉक्टर ऐसे वयस्क रोगियों का, जो उपचार के बारे में सहमति देने में असमर्थ हों, विधि पूर्ण रूप से ऑपरेशन कर सकता है या अन्य उपचार कर सकता है</u> परन्तु यह तब जब आपरेशन ऐसे रोगियों के सर्वोत्तम हित में हो । ऑपरेशन या उपचार तब रोगियों के सर्वोत्तम हित में होगा जब वह या तो उनके जीवन को बचाने के उद्देश्य से या सुधार सुनिश्चित करने के लिये या उनके शारीरिक या मानसिक स्वास्थ्य में गिरावट रोकने के उद्देश्य से किया जा रहा है (लार्ड ग्रिफिथ ने असहमति व्यक्त की) ।

जिन मामलों पर विचार किया गया उनमें बोलम 1957 (2) आल. ई. आर 118, डी (ए माईनर)(वार्डशिप:स्टेरीलाइजेशन) निर्देश: (1976) (1) आल. ई. आर 326, ईव निर्देश (1986)31 डी एल. आर (चतुर्थ) 1 (कनाडा की सुप्रीम कोर्ट), ग्राडी निर्देश (1981)85 एन. जे 235 (न्यूजीलैण्ड सुप्रीम कोर्ट), जेन निर्देश (1988) (आस्ट्रेलिया की फेमीली कोर्ट), मार्शल बनाम करी (1933) (3) डी. एल. आर 260 (एन. एस. एस. सी); मुरे बनाम मैकार्थी ; 1949(2)(डी. एल. आर 422 (बी.सी, एस.सी), श्लोएनडोर्फ बनाम सोसाइटी ऑफ न्युयार्क हॉस्पीटल (1914) 211 एन वाई 123 (न्यूयार्क अपीली कोर्ट); तथा इंगलैण्ड के न्यायालयों के अन्य मामले हैं । मुख्य निर्णय ओकब्रुक के लार्ड ब्राडन तथा शिवले के लार्ड गॉफ द्वारा दिया गया था । (अपीली न्यायालय का निर्णय लिमिंगटन एम. आर के लार्ड डोनाल्डसन तथा लार्ड नील तथा बटलर-स्लोस न्यायाधीशों द्वारा दिया गया था ।

ऐसे तीन मामलों को उदधृत किया गया था जिनमें न्यायालय ने मानसिक रूप से अक्षम ऐसे व्यक्तियों के स्टेरीलाइजेशन की अनुमति प्रदान की थी जो सहमति नहीं दे सकते थे: टी निर्देश (14 मई 1987, असिपोर्टित) न्यायाधीश लेटे; एक्स निर्देश (1987, टाइम्स, 4 जून, न्यायाधीश रीव तथा टी बनाम टी : 1988 (1) आल. ई. आर 613 (न्या. वुड)।

हाउस ऑफ लार्डस ने श्लोएनडोर्फ बनाम सोसाइटी ऑफ न्युयार्क हॉस्पीटल (1914) 211 एन वाई 123 (126) में न्या. कारडोजो का उल्लेख किया जो निम्नलिखित आशय का था (सक्षम रोगी के संबंध में था):

> "प्रत्येक वयस्क तथा स्वस्थ्य मस्तिष्क के मानव को यह निश्चित करने का अधिकार है कि उसके शरीर के साथ क्या किया जाये ; और जो शल्य

चिकित्सक रोगी की सहमति के बिना आपरेशन करता है वह हमला करने का दोषी है ।"

इसी बात की पुष्टि लार्ड रीड ने एस बनाम एस, डब्लयू बनाम आफिशियल सालीसीटर (1970)(3) आल. ई आर 107 (एच. एल) में की थी ।

ग्राडी निर्देश (1981) 85 एन. जे 235 (यू. एस) और जेन निर्देश (22 दिसम्बर 1988) (आस्ट्रेलिया, मुख्य न्या. निकलसन) में यह टिप्पणी की गई थी कि यह महत्वपूर्ण है कि रोगी का (जो अवयस्क था) प्रतिनिधित्व किसी हित रहित तीसरे पक्षकार द्वारा किया जाये।

लार्ड एल. सी हेलशाम, ईव निर्देश (1986 31 डी. एल. आर (चतुर्थ) में पृष्ठ 1 पर दिये गए मत से असहमत थे जिसमें यह निर्णय दिया गया था कि "गैरथेरापयूटिक प्रयोजनों के लिये स्टेरीलाइज करने की अनुमति कभी-भी नहीं दी जानी चाहिए" (पृष्ठ-32) और इसे असंतोषप्रद तथा कल्याण के सिद्धांत के विपरीत और चौंकाने वाला बताया था जो सिद्धांत प्रतिपाल्य मामलों में प्रथम और सर्वोपरि आधार होना चाहिए ।

तथापि, लार्ड टेम्पलमैन का कथन है कि ऐसे मामलों में संबंधित व्यक्तियों को उच्च न्यायालय जाना चाहिए और यदि स्टेरीलाइजेशन न्यायालय की सहमति के बिना किया जाता है तो डाक्टर दाण्डिक, सिविल या व्यावसायिक कार्यवाहियों के दायित्व के अधीन होंगे भले ही डॉक्टर ने बच्चे के माता-पिता की सहमति ले ली हो ।

(१अ) <u>प्रेक्टिस नोट वाई आफिशियल सालीसीटर : 1994 (2) आल. ई. आर 403: उपचार का रोका जाना-संज्ञाहीन रोगी-निरन्तर जड़ दशा वाला रोगी । उपचार को रोकने से पूर्व हाईकोर्ट की मंजूरी आवश्यक-निदान की पुष्टि</u> ।

यह प्रेक्टिस नोट शासकीय सालीसीटर ने उस प्रक्रिया का उल्लेख करते हुए जारी किया था जिसका अनुपालन घोषणात्मक अनुतोष मांगने के लिये किया जाना चाहिए । प्रेक्टिस नोट में घोषणा का प्रारूप भी दिया गया है ।

नोट में कहा गया है कि निरन्तर जड़ दशा (पी. वी. एस) के रोगियों को कृत्रिम रूप से भोजन और जल देना बंद करने के लिये, <u>लगभग सभी मामलों में,</u> हाईकोर्ट की मंजूरी अपेक्षित है । <u>ऐअरडेल एण्ड फ्रेंचे हैल्थ केयर एन. एच ट्रस्ट</u> बनाम <u>एस</u>: 1994 (2) आल. ई. आर 403 उद्धृत किये गये । (हर केस में ऐसा आवश्यक नहीं है यह बात अपीली न्यायालय ने <u>बुर्क निर्देश</u> (2005) इ. डबल्यू. सी. ए (सिवि.) 2003 में अधिकथित की थी ।)

<u>रोग की पहचान</u> : ब्रिटिश मेडीकल एसोसियेशन की <u>मेडीकल ईथिक्स कमैटी</u> ने जुलाई 1993 में मार्गनिर्देश जारी किये थे । पी. वी एस स्थिति की तब तक पुष्टि नहीं की जानी चाहिये जब तक कि रोगी 12 मास तक उस स्थिति में न रहा हो । ऐसा निर्णय करने के पूर्व पुनःस्थापन के उपाय, जैसे, ऐराउजल कार्यक्रम, अपनाये जाने चाहिये । (<u>एअरडेल</u> तथा मेडिकल ईथिक्स विषय पर हाउस ऑफ लार्डस की सलैक्ट कमेटी की रिपोर्ट एच. सी पेपर (1993-94)(21-I)।

हाउस ऑफ लार्डस ने एफ बनाम वेस्ट बर्कशायर हैल्थ आथिरीटी; 1989 (2) आल. ई. आर 545 (एच. सी) तथा शासकीय सालीसीटर के मई 1993 के प्रेक्टिस नोट : 1993 (3) आल. ई. आर 222 में दर्शायी गई प्रक्रिया के आधार पर न्यायालय में आवेदन करने की प्रक्रिया का विस्तार से वर्णन किया है । (वर्तमान प्रेक्टिस डायरेक्शन में वांछित घोषणा का प्रारूप भी दिया गया है)।

पक्षकार : नातेदार या संबधित ऐरिया हैल्थ आथिरीटी / एन. एच एस ट्रस्ट (जिसे हर दशा में पक्षकार बनाया जाना चाहिए) आवेदक हो सकते हैं। नातेदारों के विचार अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं और न्यायालय की जानकारी में लाये जाने चाहिए । शासकीय सालीसीटर को रोगी के वादार्थ संरक्षक के रूप में कार्य करने के लिये आमंत्रित किया जाना चाहिए ।

साक्ष्य :- रोगी के बारे में कम से कम दो स्नायु वैज्ञानिकों की रिपोर्ट होनी चाहिए जिनमें से एक शासकीय सालीसीटर द्वारा कमीशन की जायेगी । दूसरा चिकित्सीय साक्ष्य, जैसे पुनःस्थापन या देखरेख के बारे में साक्ष्य, आवश्यक हो सकता है ।

रोगी का मत : यदि रोगी ने लिखित में या अन्यथा, यदि कोई मत पहले अभिव्यक्त किया है तो वह महत्वपूर्ण है और हाईकोर्ट भविष्य में चिकित्सीय उपचार के बारे में तात्पर्यित अग्रिम निर्देश का प्रभाव अवधारित कर सकता है (टी निर्देश: 1992 (4) आल. ई. आर 649) ।

(८आ) प्रेक्टिस नोट १९९६ (४)आल. ई. आर ७६६ -

यह प्रेक्टिस नोट संज्ञाविहीन रोगियों और निरन्तर जड़ दशा के रोगियों के उपचार को रोक देने के विषय में है । इसमें अपेक्षा की गई है कि उपचार को बंद कर देने के पूर्व हाई कोर्ट के न्यायाधीश की मंजूरी ली जानी चाहिये । यह अपेक्षा भी की गई है कि रोग के बारे में स्नायु वैज्ञानिकों से संज्ञा में विघ्न का निर्धारण करने में अनुभव प्राप्त अन्य डाक्टरों से दो स्वतंत्र रिपोर्टों से पुष्टि होनी चाहिए। वर्किंग ग्रुप ऑफ रायल कालेज ऑफ फिजिशियन्स की रिपोर्ट में जैसा बताया गया है, उन डॉक्टरों के कर्त्तव्य वर्णित हैं जो रोग निर्धारित करते हैं । नोट में यह भी कहा गया है कि रोगी के और अन्य व्यक्तियों के मत प्राप्त किये जाने चाहिये और वे डॉक्टरों के निर्णयों का एक महत्वपूर्ण अंग होंगे । प्रेक्टिस निर्देश के विस्तृत ब्यौरों के लिये, जिसके अतंर्गत यह रीति भी है जिसके अनुसार न्यायालय में आवेदन किये जायेंगे, आफिशियल सालीसीटर एक्ट, १९९६ (४) आल.ई.आर ७६६ में प्रस्तुत प्रेक्टिस नोट को देखा जा सकता है ।

(९) टी निर्देश (एडल्ट; रिफ्यूजल ऑफ मेडीकल ट्रीटमेन्ट) ; १९९२ (४) आल. ई. आर ६४९ = १९९२ (३) डबलयू. एल. आर ७८२

(लिमिंगटन के लार्ड डोनाल्डसन तथा लार्ड बटलर-स्लोस और स्टाउटन न्यायाधीश) (दि. ३०.७.९२)

यह मामला एक वयस्क रोगी श्रीमती टी, से संबंधित था जो १.७.९२ को एक दुर्घटना में जख्मी हो गई थीं । उसे ३४ सप्ताह का गर्भ था और रक्त देना आवश्यक था । उसे, उसकी माँ ने पाला था जो जीहोवा विटनेस थीं , किन्तु रोगी स्वयं इस धार्मिक सम्प्रदाय की सदस्य नहीं थी । रोगी ने अपनी माँ के साथ व्यक्तिगत वार्तालाप के

पश्चात् स्टाफ नर्स को बताया कि उक्त सम्प्रदाय के विश्वास के अनुसार रोगी को रक्त देना पाप था । तब उसने आँख मूंदकर सीजेरियन आपरेशन के पश्चात् रक्त चढ़ाने के लिये सहमति से इन्कार के फार्म पर हस्ताक्षर कर दिये । अतः परामर्शदाता ने उसे रक्त चढ़ाने के बारे में हिचकिचाहट दिखाई और उसे वेन्टीलेटर पर रख दिया तथा औषधियाँ दे दी । उसके पिता के एक मित्र ने न्यायालय के समक्ष आपात सुनवाई के लिये आवेदन करके रक्त चढ़ाने की अनुमति मांगी और न्यायाधीश ने अनुमति प्रदान करते हुए कहा कि तत्कालीन परिस्थितियों में ऐसा करना अवैध नहीं था और रोगी के 'सर्वोत्तम हित' में था। विद्वान् न्यायाधीश ने टिप्पणी की कि आपातकाल की स्थिति में रोगी ने कोई आपत्ति नहीं की थी अतः उस स्थिति में रक्त चढ़ाना विधिपूर्ण था ।

टी द्वारा, अपील करने पर अपीली न्यायालय ने उल्लेख किया कि काउन्सिल द्वारा उदघृत कतिपय पूर्वतर निर्णय से भिन्न प्रकार के थे और क्योंकि रोगी अवयस्क नहीं थी अतः रक्त चढ़ाने के लिये न्यायालय की अनुमति आवश्यक नहीं थी ।

यह निर्णय भी लिया गया कि यद्यपि प्रत्यक्ष-दृष्टया हर एक वयस्क को यह निर्णय लेने का अधिकार और क्षमता थी कि वह स्वास्थ्य में स्थाई क्षति और समय पूर्व मृत्यु की जोखिम के होते हुए भी चिकित्सीय उपचार स्वीकार करे या न करे, तथा यदि किसी वयस्क में तात्पर्यित इन्कार के समय, सामर्थ्य नहीं थी और ऐसी सामर्थ्य आगे भी नहीं हो सकती थी, अथवा यदि निर्णय लेने की उसकी सामर्थ्य पर अन्य व्यक्ति हावी थे, तो इस बात पर ध्यान दिये बिना कि इंकार के कारण युक्तिपूर्ण थे या अयुक्तिपूर्ण थे अथवा अज्ञात या अविद्यमान थे, डॉक्टरों का यह कर्त्तव्य था कि वे

रोगी का उपचार उस रीति से करें जो वे, अपने नैदानिक निर्णय का प्रयोग करते हुए, रोगी के सर्वोत्तम हित में समझते थे ।

तथ्यों के आधार पर यह निर्णय दिया गया कि डॉक्टरों द्वारा टी के निर्देशों की अवज्ञा करना और आवश्यक समझते हुए रक्त चढ़ाना न्यायोचित था क्योंकि ऐसा साक्ष्य था कि टी-उचित निर्णय लेने योग्य नहीं थी क्योंकि उसकी चिकित्सीय दशा ठीक नहीं थी और वास्तव में उस पर उसकी माँ का असम्यक् प्रभाव था जिसके कारण रक्त चढ़ाने से इन्कार करने का उसका निर्णय दुष्प्रभावित हो गया था । अपील खारिज कर दी गई ।

न्यायाधीश लार्ड एम. आर डोनाल्डसन तथा बटलर-स्लोस ने निर्णय दिया कि -

(1) ऐसे रोगी की ओर से जो शारीरिक और मानसिक रूप से कोई निर्णय लेने में समर्थ हैं किन्तु निर्णय लेने की स्थिति में नहीं है क्योंकि, उदाहरण के लिये, वह बेहोश है, तो उसके निकट सम्बन्धियों को चिकित्सीय उपचार के लिये रोगी की ओर से सहमति देने या इन्कार करने का कोई विधिपूर्ण अधिकर नहीं है । तथापि, निकट संबंधी की सहमति प्राप्त करना कोई अवांछनीय कार्य नहीं है क्योंकि इसके परिणामस्वरूप किसी विलम्ब के कारण रोगी के हित पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ; निकट संबंधी के परामर्श से यह प्रकट हो सकता है कि किसी विनिर्दिष्ट उपचार को स्वीकार करने या उससे इन्कार करने के बारे में, उदाहरण के लिये, रक्त का चढ़ाया जाना, रोगी ने संभावित निर्णय पहले ले रखा था और यदि यह बात स्पष्ट रूप से स्थापित हो जाती है और परिस्थितियों में लागू है तो इससे चिकित्सक बाध्य होगा ।

(2) रक्त चढ़ाना स्वीकार करने से इन्कार करने का जो मानक फार्म है और जिसका प्रयोग अस्पताल में किया जाता है उसे पुनः प्रारूपित करना होगा जिससे कि (अस्पताल की ओर से) विधिक दायित्व की अस्वीकृति को रोगी द्वारा रक्त चढ़ाया जाना स्वीकार न करने के अपने निर्णय की घोषणा से पृथक किया जा सके जिससे कि बलपूर्वक इन्कार कि संभावित परिणामों की ओर रोगी का ध्यान आकर्षित किया जा सके ।

(3) रोगी को मोटी तौर पर उस चिकित्सीय प्रक्रिया की प्रकृति और प्रभाव का ज्ञान होना चाहिये जिनकी बावत् सहमति प्रदान की गई है या उससे इन्कार किया गया है । किन्तु, यद्यपि डाक्टरों का यह कर्त्तव्य है कि वह उपचार की प्रकृति और संभावित जोखिमों के बारे में (जिसके अंतर्गत किसी विशिष्ट व्यक्ति द्वारा दिये जा रहे उपचार के संबंध में कोई विशेष जोखिमें भी आती हैं), रोगी को जानकारी दें किन्तु इस कर्त्तव्य का पालन करने में चूक का अर्थ केवल असावधानी माना जायेगा किन्तु इसके कारण सहमति या इन्कार दुष्प्रभावित नहीं होंगे । तथापि, रोगी को गलत सूचना, चाहे अनजाने में या अन्यथा और रोगी को ऐसी जानकारी न देना जो रोगी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से चाहता है, सहमति या असहमति को दुष्प्रभावित करेंगें -

(क) यदि, जीवन को अत्यन्त संकट में डालने वाली स्थिति में अथवा ऐसी स्थिति में जिसमें रोगी के स्वास्थ्य को ऐसी हानि हो सकती है जिसका पुनः सुधार नहीं हो सकता, और जिस हानि की कल्पना की जा सकती है, और डॉक्टर या अस्पताल के अधिकारी आवश्यक उपचार करने की बावत् किसी वयस्क रोगी के इन्कार का सामना कर रहे हैं, तो उन्हें लोकहित में तथा रोगी के हित में, तुरन्त न्यायालय से ऐसी घोषणा प्राप्त करनी चाहिये कि प्रस्तावित उपचार विधिपूर्ण है और रोगी के परिवार पर यह बात नहीं छोड़ देनी चाहिये कि क्या कदम उठाया जाये ।

(10) सी निर्देश (ऐडल्ट: रिफ्यूजल ऑफ़ मेडीकल ट्रीटमेन्ट: 1994 (1) आल. ई. आर 819 (न्या. थोरपे) (14.10.93): सी परीक्षण:

एक अढ़सठ वर्षीय रोगी को जब वह सात वर्ष के कारागार की सजा भोग रहा था और जो पेरानोइड सीजोफ्रेनिया से पीड़ित था, एक सुरक्षित अस्पताल में इलाज के दौरान एक पैर में गेंग्रीन हो गई । उसे एक जनरल अस्पताल में ले जाया गया जहां परामर्शदाता शल्य चिकित्सक ने राय दी कि यदि घुटने से नीचे की टांग को काटा नहीं जायेगा तो उसके बचने का अवसर 15 प्रतिशत था और अधिक संभावना यह थी कि उसकी मृत्यु हो जायेगी । सी ने टांग काटे जाने से इन्कार कर दिया । इसी दौरान एक सालीसीटर को बुलाया गया, औषधियों के कारण कुछ सुधार भी हुआ था, फिर भी भविष्य में गेंग्रीन को किसी नये आक्रमण से बचाव के लिये टांग काटने की आवश्यकता बनी हुई थी । अस्पताल के प्राधिकारियों ने घुटने के नीचे टांग को काटने की अनुमति के लिये न्यायालय से आवेदन किया जिसमें कहा गया कि रोगी द्वारा टांग काटने से इन्कार करने का निर्णय उसकी मानसिक रूग्णता से दुष्प्रभावित था जिससे रोगी में मृत्यु की जोखिम को समझने की सामर्थ्य नहीं थी ।

यह निर्णय दिया गया कि उच्च न्यायालय अपनी अन्तरनिहित अधिकारिता का प्रयोग करते हुए, ऐसे रोगी के संबंध में जिसमें चिकित्सीय उपचार से इन्कार करने / सहमति देने की सामर्थ्य नहीं हो (जिसके अन्तर्गत भविष्य में चिकित्सीय उपचार भी है), व्यादेश/घोषणा के रूप में निर्देश देने का अधिकार है । तथापि जिस प्रश्न को विनिश्चित करना था वह यह था कि क्या यह बात सिद्ध हो चुकी थी कि रोगी की गहन मानसिक रूग्णता के कारण उसकी सामर्थ्य इतनी कम हो गई थी कि वह प्रस्तावित चिकित्सीय उपचार की प्रकृति, उद्देश्य और प्रभाव को पर्याप्त रूप

से सुलक्ष नहीं पा रहा था । यह इस पर निर्भर था कि <u>क्या रोगी प्रस्तावित उपचार के बारे में जानकारी को समक्ष पा रहा था और संजो सकता था और उस पर उसे विश्वास था और निर्णय लेते समय उसने उसे तौल लिया था(जिसे सी परीक्षण कहा जाता है</u>) । यही 'सक्षमता' परीक्षण या कसौटी है ।

न्यायाधीश थोरपे ने रोगी की सक्षमता का वर्णन निम्नलिखित रुप में किया :-
डॉ. ई ने निर्णय लेने की प्रक्रिया को जिन तीन आयामों में बांटा है उसे मैं सहायक मानता हूं । पहला आयाम, उपचार संबंधी जानकारी को समझाना और संजोना, दूसरा आयाम, उसमें विश्वास रखना, तीसरा आयाम, निर्णय पर पहुंचने से पूर्व उसे तौलना है ।"

(सक्षमता परीक्षण)

तथ्यों के आधार पर निर्णय दिया गया कि टांग नहीं काटी जानी चाहिए क्योंकि रोगी की निर्णय लेने की सामर्थ्य सीजोफ्रेनिया के कारण इतनी कम नहीं हुई थी रोगी के स्वअवधारण के अधिकार के पक्ष में अवधारणा गलत नहीं थी । <u>टी निर्देश (ऐडल्ट; रिफ्युजल ऑफ मेडीकल ट्रीटमेन्ट;</u> 1992 (4) आल. ई. आर 649 तथा <u>एअरडेल 1993</u> (1) आल. ई. आर 821 (एच. एल) का उपयोग किया गया ।

(11) <u>फ्रेंचे हैल्थ केयर एन. एच. एस ट्रस्ट</u> बनाम <u>एस; 1994 (2) आल. ई. आर 403 (सी. ए)</u>

(न्यायाधीश सर थोमस बिंघम एम. आर, लार्ड वेट तथा पीटर गिब्सन) (14.1.1994)]
एस नामक एक स्वस्थ्य वयस्क ने जून 1991 में एक औषधी अधिक मात्रा में ले ली

जिसके परिणामस्वरूप उसे तीव्र तथा अत्यधिक मस्तिष्क क्षति हो गई । चिकित्सीय उपचार से कोई लाभ नहीं हुआ। जून 1993 तक उसका पोषण नासोगेस्ट्रिक ट्यूब द्वारा किया गया जो कि उसे भोजन देने का एक मात्र व्यावहारिक उपाय था और बाद में ऐसा पोषण पेट की दीवाल से होकर एक गेस्ट्रोनोमी ट्यूब द्वारा किया जाने लगा । उसके हिलने डुलने से गेस्ट्रोनोमी ट्यूब हट गई और डॉक्टरों के अनुसार ट्यूब पुनः लगाने के लिये नया आपरेशन करने के परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु की संभावना थी । डॉक्टरों का विचार था कि उसे स्वभाविक मृत्यु प्राप्त करने के लिये छोड़ देना चाहिये ।

अस्पताल ने अत्यावश्यक मामले के रूप में हाई कोर्ट में ऐसी घोषणा के लिये आवेदन किया कि अस्पताल को गेस्ट्रोनोमी ट्यूब न बदलने के लिये प्राधिकृत किया जाये । न्यायाधीश ने रोगी के सर्वोत्तम हित को ध्यान में लेकर ऐसी घोषणा प्रदान कर दी । शासकीय सालीसीटर द्वारा अपील करने पर, अपीली न्यायालय ने निर्णय दिया कि न्यायाधीश ने ठीक किया था और अस्पताल को ट्यूब बदलनी या पुनः लगानी नहीं चाहिए ।

सर थोमस बिंघम एम. आर ने निर्णय दिया कि किसी स्थाई जड़ दशा (पी.वी. एस) रोगी के उपचार को जारी न रखने की अनुमति के लिये किये गए आवेदन में न्यायालय को जिस प्रश्न का अवधारण करना होता है वह यह विचार करता है कि रोगी के 'सर्वोत्तम हित' में क्या है। यद्यपि, न्यायालय को चिकित्सीय राय का पुनरीक्षण करने की शक्ति है और सभी मामलों या परिस्थितियों में, जो उसके समक्ष रखी जायें ऐसी राय को स्वीकार करने के लिये बाध्य नहीं है, तथापि, न्यायालय को उन व्यक्तियों को, जो रोगी का उपचार कर रहे हैं, ऐसी स्थिति में नहीं डालना

चाहिए कि वह उस उपचार को जारी रखें जिसे वे रोगी के सर्वोत्तम हित के विपरीत समझते हैं, सिवाय जब जब न्यायालय को प्रश्नगत चिकित्सीय राय की विश्वसनीयता, सद्भाव और सही होने के बारे में कोई वास्तविक संदेह हो । एअरडेल लागू किया गया ।

यह निर्णय भी दिया गया कि जहां अस्पताल किसी स्थाई रूप से जड़ दशा वाले (पी. वी. एस) रोगी के उपचार को बंद करना चाहता है, वहां सामान्य नियम यह है कि अस्पताल को आवेदन करना चाहिए और यह घोषणा करनी चाहिऐ, उचित है, और ऐसे आवेदन से पूर्व पूरी जांच पड़ताल तथा रोगी के प्रतिनिधि के रूप में शासकीय सालीसीटर को स्थिति का पूरा जायजा लेने का अवसर तथा अपने उपयोग के लिये स्वतंत्र चिकित्सीय राय प्राप्त करने और यह सुनिश्चित करने का अवसर रहना चहिए कि न्यायालय के समक्ष उचित जानकारी रखी जाती है । ऐसा होने पर भी, आपात स्थितियां उत्पन्न होंगी जिनमें न्यायालय में आवेदन करना संभव नहीं हो, या जहॉं, यद्यपि न्यायालय में आवेदन करना संभव हो किन्तु आवेदन को भरपूर समय देकर प्रस्तुत करना संभव नहीं हो जैसाकि उन मामलों में होता है जहां समय का दबाव नहीं होता है । सी निर्देश

(12) वाई (मेन्टल केपेसिटी : बोनमेरो ट्रांसप्लांट) निर्देश (1997 (2) डबलयू. एल. आर 556) (14.6.1996) (न्यायाधीश कोनेल)

एक पच्चीस वर्षीय वादी और उसकी बड़ी बहन (प्रतिवादी) का संबंध एक अत्यन्त नजदीकी समर्थक परिवार से था । वादी बोन मेरो की विकृति से पीड़ित

थी। वादी 1984 से व्यापक कीमोथेरेपी लेती रही थी (अर्थात 12 वर्ष तक) । वादी की दशा में हाल ही में गिरावट आई थी आर इस बात की पुरी संभावना थी की उसकी स्थिति के परिणाम-स्वरूप अगले तीन माह में उसे भयंकर माइलोयेड ल्यूकेमिया हो जायेगा । एक मात्र परिणाम योग्य संभावना यह थी की उसे उसकी बहन (प्रतिवादी) का बोन मेरो प्रत्यारोपित किया जाये । प्रतिवादी मानसिक और शारीरिक रूप से अत्यंत विकलांग थी और बोन मेरो प्रत्यारोपण के विषय में सहमति देने योग्य नहीं थी । वादी ने, इस तथ्य के होते हुए भी कि प्रतिवादी सहमति देने योग्य नहीं थी, ऐसी घोषणा के लिये वांछा की प्रतिवादी से कि दो प्रारंभिक रक्त परीक्षण तथा संपूर्ण बेहोशी के अंतर्गत बोन मेरो हारवेस्टिंग ऑपरेशन परम्परागत रूप से लेना या करना विधिपूर्ण था ।

विद्वान न्यायाधीश् ने आवेदन स्वीकार करते हुए यह कथन किया :

(1) ऐसे मामले में कसौटी यह थी कि क्या उपरोक्त प्रक्रियाऐं करना प्रतिवादी के सर्वोत्तम हित में था । यह तथ्य कि ऐसी प्रक्रिया से वादी को लाभ प्राप्त होगा सुसंगत नहीं था, सिवाय, उस दशा के जहां प्रतिवादी द्वारा वादी को सहायता देने के परिणामस्वरूप प्रतिवादी का सर्वोत्तम हित पूरा होता हो ।

(2) प्रत्यारोपण न करने की दशा में वादी के जीवित रहने की संभावना अत्यंत कम थी और उसकी दशा तेजी से बिगड़ रही थी । यदि वादी मर गई तो इसका पक्षकारों की माता पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा जिसके साथ प्रतिवादी का, अन्य नातेदारों की अपेक्षा, गहरा संबंध था । विशेष रूप से, प्रतिवादी को देखने की माता की

सामर्थ्य विशिष्ट रूप से प्रभावित हो जायेगी । प्रतिवादी को भी अपनी माँ के साथ संपर्क कम होने से या समाप्त हो जाने से हानि पहुंचेगी ।

(3) अपनी बहन के लिये दाता के रूप में कार्य करने से प्रतिवादी को "भावुक मनोवैज्ञानिक और सामाजिक फायदा" था क्योंकि इस प्रकार से उसकी माँ के साथ उसका सकारात्मक संबंध दीर्घ समय तक चलने की अत्यधिक संभावना थी । हारवेस्टिंग प्रक्रिया से प्रतिवादी को बहुत कम नुकसान थे । प्रतिवादी द्वारा बोन मेरो दान करने से उसे कोई हानि नहीं थी और न आगे चलकर उसे कोई वास्तविक कष्ट होना था ।

"एअरडेल तथा यू. के. की न्यायालयों के अन्य निर्णयों को उदधृत करने के अतिरिक्त न्यायाधीश कोनेल ने अमेरीका के एक मामले कुरन बनाम बोजे : (1990) 566 एन. ई द्वितीय 1391 की चर्चा भी की जिसमें अपने भाई के हित में दो जुड़वां बच्चों से बोन मेरो निकालकर प्रत्यारोपित करने की अनुमति के लिये आवेदन पर विचार किया गया था । इलिनोयिस की सुप्रीम कोर्ट इस परिणाम पर पहुंची कि 'प्रतिस्थापित निर्णय' का सिद्धांत (जिसे एअरडेल में खारिज कर दिया गया था) लागू होने योग्य नहीं था किन्तु सर्वोत्तम हित की कसौटी लागू होती थी । न्यायाधीश कालबो ने उस मामले में यह कथन किया कि उस मामले में दाता को जो लाभ प्राप्त होगा और अधिकांशतः यह लाभ दाता या दानग्रहीता या उनकी माता के बीच गहन संबंध में वृद्धि के रूप में होगा । न्यायाधीश ने आगे कथन किया है कि :

"उपरोक्त मामलों में से प्रत्येक में जहां किडनी प्रत्यारोपण की अनुमति प्रदान की गई थी, इस बात को विचार में नहीं लिया गया था कि सहमति देने के अधिकार का प्रयोग न्यायालय ने किया था या माता ने या संरक्षक ने;

मुख्य अन्वेषण यह था कि दाता को फायदा था या नहीं था । इस बात के होते हुये भी कि प्रत्यारोपण किया जा सकता था या नहीं किया जा सकता था इस निर्णय पर पहुँचने के लिये न्यायालयों द्वारा प्रयुक्त भाषा, वह मानक जिसके आधार पर निर्णय दिया गया यह था कि क्या प्रत्यारोपण बालक या अक्षम व्यक्ति के सर्वोत्तम हित में होगा ।

इन मामलों में दाता को होने वाला बुनियादी लाभ उस संबंध से उदभूत होता है जो दाता और ग्रहीता के बीच विद्यमान है । स्ट्रंक में, दाता एक राज्य संस्था में रहता था। ग्रहीता भाई था जो बाहरी दुनिया के साथ दाता का एक मात्र संबंध था । हार्ट तथा लिटिल, दोनों में, यह साक्ष्य आया था कि दाता और ग्रहीता के बीच नजदीकी संबंध था ।

न्यायाधीश कोनेल ने कुर्रस बनाम ब्रोजे में न्यायाधीश कालबो की निम्नलिखित आशय की टिप्पणी भी उद्धृत की है :

> "..........दाता और ग्रहीता के बीच नजदीकी रिश्ता होना चाहिए । साक्ष्य से स्पष्ट रुप से प्रकट होता है कि दाता बालक को कोई शारीरिक लाभ नहीं है । यदि उस बालक को जो मज्जा अपने संबंधी को दान करता है कोई लाभ है तो वह एक मनोवैज्ञानिक लाभ होगा। साक्ष्य के अनुसार, ऐसा मनोवैज्ञानिक लाभ मात्र व्यक्तिगत, वैयक्तिक दान, सैद्धान्तिक अर्थ में, नहीं है यद्यपि यह भी एक कारण हो सकता है ।

मनोवैज्ञानिक लाभ की दृढ़ बुनियाद इस तथ्य में है कि दाता और ग्रहीता दोनों एक दूसरे से परिवार के रूप में परिचित हैं । केवल वहां जहां एक स्वस्थ्य बालक तथा उसकी बीमार बहन या भाई के बीच संबंध विधमान है, मज्जा का अपने नातेदार को दान करने से मनोवैज्ञानिक लाभ ऐसे संबंध के कारण वस्तुतः हो सकता है । साक्ष्य से साबित होता है कि विधमान घनिष्ठ नातेदारी की निरन्तरता की संभावना, जो कि इस तथ्य की पृष्ठभूमि निर्मित करती है जिसमें यह यह निश्चित करना है कि एक घनिष्ठ संबंधी से मज्जा ग्रहण की प्रक्रिया बालक के सर्वोत्तम हित में है" ।

और अन्ततः न्यायाधीश कालबो ने यह कथन किया है कि :

"जुड़वां बालकों के संरक्षक ने सिफारिश की है कि ग्रहीता (अर्धरक्त भाई) के साथ घनिष्ठ संबंध की विद्यमानता के अभाव में और उनके मुख्य संरक्षक (माता) द्वारा की गई आपत्ति के संदर्भ में, मज्जा निकालने की प्रस्तावित प्रक्रिया को अपनाना अलीसू या जेम्स दोनों में से किसी के भी सर्वोत्तम हित में नहीं है । क्योंकि प्रस्तुत किया गया साक्ष्य इस सिफारिश का समर्थन करता है । अतः हम सिफारिश को स्वीकार करते हैं । "

न्यायाधीश कोनेल ने आवेदन को स्वीकर करने के दौरान इस बात पर विचार किया कि, इन सिद्धांतों के कारण, दाता को होने वाला लाभ यदि अधिक नहीं तो समान महत्व का है ।

(13) गिलिक बनाम वेस्ट नारफोक विसवेक एरिया हैल्थ ओथोरिटी: 1986 ए. सी 112 : 1985 (3) ऑल इंग्लैण्ड रिपोर्ट 402 (एच. एल) : ('गिलिक कोम्पीटेंस')

इस मामले का संबंध कुछ भिन्न समस्या से था किन्तु उसमें 'सहमति' के बारे में अधिकथित सिद्धांत जीवन समर्थक उपायों को हटाने से संबंधित मामलों में लागू होते है । इस मामले में जिस कसौटी को अपनाया गया वह 'गिलिक कोम्पीटेंस' के नाम से ज्ञात है ।

इस मामले में, वादी ने जिसकी सोलह वर्ष से कम आयु की पाँच पुत्रियाँ थी, लोकल एरिया हैल्थ ओथोरिटी से यह आश्वासन चाहा था कि जब तक उसकी पुत्रियों की आयु 16 वर्ष से कम रहे, उसकी पूर्व जानकारी और सहमति के बिना उसकी पुत्रियों को गर्भनिरोध के संबंध में कोई परामर्श और उपचार नहीं दिया जायेगा । वादी ने ऐसा उस सरक्यूलर को ध्यान में रखते हुए किया था जो स्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा विभाग ने जारी किया था और जिसमें कहा गया था कि यद्यपि कोई भी डाक्टर 16 वर्ष से कम आयु की लड़कियों को उनके माता-पिता की सहमति के बिना गर्भनिरोधक के उपायों के प्रयोग की सलाह नहीं देगा किन्तु यदि किन्हीं असाधारण परिस्थितियों में माता-पिता की सहमति के बिना इस विषय में परामर्श दिया जाता है तो वह अवैध नहीं होगा और डाक्टर्स तथा उनके क्लाइंट के बीच गोपनीयता के सिद्धांत के अनुरूप होगा । प्रारंभ में, वादी ने स्थानीय स्वास्थ्य प्राधिकारी से संपर्क किया किन्तु उन्होंने उसकी बात सुनने से इन्कार कर दिया । तब वादी ने वर्तमान आवेदन दाखिल किया । उसके अनुसार, सरक्यूलर का परिणाम यह था कि डॉक्टरों को 16 वर्ष से कम आयु के युवक और युवतियों के बीच

अवैध लैंगिक संबंध करने या उन्हें प्रोत्साहित करने का अपराध करने की सलाह दी गई थी जो सेक्सुयल ओफेन्सेज एक्ट, 1965 की धारा 28 (ए) के विपरीत था या उस अपराध का दुष्प्रेरण करता था ।

विद्वान न्यायाधीश ने (न्या. वुल्फ) निर्णय दिया कि सरक्यूलर के अनुसार कार्य करने वाला डाक्टर अवैध लैंगिक संबंध कारित करने के अपराध या उसका दुष्प्रेरण करने का अपराधी नहीं था । तथापि, अपीली न्यायालय ने इस निर्णय को उलट दिया (1985 (1) आल. ई. आर) 533 ।

स्वास्थ्य विभाग ने हाउस ऑफ लार्डस में अपील की जो मंजूर की गई । यह निर्णय दिया गया कि, इस सत्य को ध्यान में रखते हुए कि बालक की उम्र ज्यों - ज्यों बढ़ती जाती है वह और अधिक स्वतंत्र होता जाता है, अतः माता-पिता के अधिकार को केवल तब तक मान्यता दी जा सकती है जब तक बालक को उनकी सुरक्षा की आवश्यकता हो और माता-पिता के अधिकारों को बालक के अपने निर्णय स्वयं लेने के अधिकार समक्ष तब झांकना पड़ेगा जब वह पर्याप्त रूप से अपना निर्णय लेने योग्य पर्याप्त समझदारी और बुद्धिमानी प्राप्त कर ले । 16 वर्ष से कम आयु की बालिका, केवल इस आधार पर कि उसकी आयु कम है, डॉक्टर द्वारा गर्भनिरोध के संबंध में निर्देश और उपचार के लिये सहमति देने की विधिक सामर्थ्य के अयोग्य नहीं है । (लार्ड टेम्पलमैन ने असहमति प्रकट की) ।

बहुमत से यह निर्णय दिया गया कि वह डॉक्टर, जो अपने नैदानिक निर्णय का प्रयोग करते हुए 16 वर्ष से कम आयु की बालिका को उसके माता-पिता की सहमति के बिना गर्भनिरोधक का परामर्श देता है और उपचार करता है, 1956 के

अधिनियम के अंतर्गत कोई अपराध नहीं करता क्योंकि डॉक्टर द्वारा नैदानिक निर्णय का सद्भाविक प्रयोग आपराधिक मनःस्थिति को नकार देता है जोकि इस विषय में उक्त अपराधों का एक अनिवार्य अंग है । (लार्ड ब्रान्डन ने असहमति प्रकट की) ।

अतः डॉक्टर को ऐसा विवेधिकार है परन्तु तब जब बालिका ने ऐसी आयु प्राप्त कर ली हो जब उसे प्रस्तावित कार्य को पूर्ण रूप से समझने की सामर्थ्य के लिये पर्याप्त समझ और बुद्धिमानी हो गई हो और यह प्रत्येक मामले में तथ्य का प्रश्न है । डाक्टर विभागीय सरक्यूलर का अनुपालन कर सकता था और ऐसा करने से माता-पिता के किन्हीं अधिकारों का उल्लंघन अथवा दाण्डिक विधि को तोड़ने का अपराध नहीं बनता है। (लार्ड ब्रान्डन तथा लार्ड टेम्पलमैन ने असहमति प्रकट की) ।

(14) <u>(ए माइनर))(वार्डशिपः मेडिकल ट्रीटमेन्ट) निर्देश</u> : 1991 (4) आल. ई. आर 177 (सी. ए)(न्या. लिमिंगटन के लार्ड डोनलडसन तथा लार्डस्ट्रांगटोरी तथा फरक्युहरसन)

15 वर्षीय आर को, जो मनोविकार की समस्या से पीड़ित थी, एक बालग्रह में रखा गया था। उसे दृश्य और श्रव्य दुःस्वप्नों का अनुभव होता था । वह आक्रामक और पारानोइड थी । उसकी मानसिक स्थिति कभी सामान्य व्यवहार की और कभी मानसिक विकारों की होती रहती थी । स्थानीय प्राधिकारी ने उसे कुमार मनोविकार चिकित्सा यूनिट में रख दिया जहां उसे उसकी सहमति से समय-समय पर बेहोशी की दवा दी जाती थी । प्राधिकारी ने ऐसा इसलिए किया क्योंकि रोगी पारानोइड, बहस और हिंसात्मक व्यवहार कर रही थी । यद्यपि तब जब उसकी मानसिक बीमारी घट जाती थी, सामान्य स्थिति हो जाती थी किन्तु निदान यह था कि यदि उसे दवाई नहीं दी गई तो वह अपनी मनोविकार की स्थिति में लौट

जाएगी । तथापि सही मनः स्थिति और विकार न रहने की अवधियों में, जब उसे निर्णय लेने की पर्याप्त समझ रहती थी, वह औषधि लेने में आपत्ति करती थी । उन परिस्थितियों में, स्थानीय प्राधिकारी ने उसे उसकी इच्छा के अनुरूप औषधि देने की अनुमति देने से इन्कार कर दिया जबकि यूनिट तब तक देखभाल जारी रखने के लिये तैयार नहीं था जब तक कि उसे नियंत्रण में रखने के कि प्राधिकारी को उसको औषधि देने का अधिकार नहीं दिया जाए । क्षेत्रीय स्थानीय प्राधिकारी ने प्रतिपाल्य कार्यवाहियां आरम्भ कीं और यूनिट द्वारा, प्रतिपाल्य की सहमति से या उसके बिना, औषधियां देने की अनुमति के लिये , जिनके अंतर्गत मनोविकार निवारण औषधियां भी थी, अनुमति मांगी । प्रश्न था (प) क्या न्यायाधीश को प्रतिपाल्य के निर्णय पर अभिभावी होने की शक्ति थी और वह भी उस स्थिति में जब प्रतिपाल्य अवयस्क थी और दवा तथा उपचार से इन्कार नहीं कर सकती थी भले ही वह सहमति देने में सक्षम थी, और (ii) क्या प्रतिपाल्य को ऐसी दवा या उपचार लेने की स्वीकृति देने या उससे इन्कार करने की अपेक्षित सामर्थ्य थी ।

न्या. वालटर ने आवेदन मंजूर कर दिया और निर्णय दिया कि यद्यपि प्रतिपाल्य न्यायाधीश का निर्णय - ऐसे प्रतिपाल्य के निर्णय पर, जिसे अपेक्षित सामर्थ्य थी, अभिभावी नहीं हो सकता था किन्तु वर्तमान तथ्यों के अनुसार प्रतिपाल्य में ऐसी सामर्थ्य नहीं थी । शासकीय सालिसीटर ने प्रतिपाल्य के वाद संरक्षक होने की हैसियत से अपील की और तर्क दिया कि यदि बालक को चिकित्सीय उपचार के लिये सहमति देने का अधिकार था तो माता-पिता, (और तदनरूप) प्रतिपाल्य न्यायालय को सहमति देने या उससे इन्कार करने का अधिकार समाप्त हो जाता था। अपील में, अपीली न्यायालय ने निर्णय की पुष्टि कर दी और यह निर्धारित किया कि प्रतिपाल्य सहमति देता है या नहीं देता है तब भी न्यायालय में यूनिट

को औषधियां देने के लिये आवेदन करने की को सही मंजूरी दी थी । निर्णय के दौरान, लार्ड एम. आर डोनल्डसन ने गिलिक के मामले को (1985) (3) आल. ई. आर 402 उदघृत किया । न्यायाधीश ने निम्नलिखित कथन किया :

" 'गिलिक सक्षमता' का परीक्षण यद्यपि इस मामले में निर्णनायक नहीं है, फिर भी सामान्य महत्व का है .... । उस मामले में, हाउस ऑफ लार्डर्स, एक सामान्य बालक के समय-समय पर विकास पर स्पष्ट रूप से विचार कर रहा था । उदाहरण के लिये, किसी एक समय रोगी यह निर्णय लेने के अयोग्य हो सकता था कि वह दन्त परीक्षा के लिये, उपचार तो दूर सहमति दे सकेगा या नहीं । आगे किसी समय, रोगी दोनों के लिये सहमति देने में समर्थ हो सकता था किन्तु वह निर्णय करने में असमर्थ होगा कि वह किसी और गंभीर उपचार के लिये सहमति दे या नहीं । ऐसा कोई सुझाव नहीं आया है कि ऐसी सक्षमता दिन प्रतिदिन या प्रति सप्ताह के आधार पर बदलती रह सकती है । जिस बात पर वास्तव में ध्यान जा रहा है वह बढ़ती हुई आयु के साथ-साथ मानसिक और भावनात्मक आयु का निर्धारण है किन्तु उस दुर्भाग्य की स्थिति को समझने की मानसिक असामर्थ्य में बदलाव होते रहने की दशा में इस परीक्षण या कसौटी में उपान्तरण करने की आवश्यकता है । यह बात जोड़ना आवश्यक है कि, किसी भी दशा में, विचारणीय मात्र यह बात नहीं है कि प्रस्तावित उपचार की प्रकृति को समझने की सामर्थ्य है या नहीं - वर्तमान मामले में अनिवार्य रूप से औषधि देना - अपितु ध्यान देने की बात यह है कि उन परिणामों को, अर्थात उपचार के कारण आशयित और संभावित

दुष्प्रभावों तथा उतने ही महत्वपूर्ण उन प्रत्याशित परिणामों की, जो उपचार न देने से हो सकते हैं, पूरी तरह से समझ और उनका विश्लेषण ....।

किन्तु मान लीजिए कि किसी ठीक-ठाक दिन, जब रोगी गिलिक परीक्षण के अनुरूप पर्याप्त रूप से समझदार थी, प्रस्तावित उपचार से रोग दूर हो जाने या बढ़ जाने के बारे में उसकी मानसिक असमर्थता ऐसी थी कि किसी अन्य अवधि में वह 'गिलिक असक्षम' ही नहीं अपितु वास्तव में उस श्रेणी में रखने योग्य थी । उस स्थिति में कोई भी बालक 'गिलिक सक्षम' नहीं माना जा सकता है और 'आर' के संबंध में न्यायाधीश ने जो निष्कर्ष निकाला वह पूर्णरूप से ठीक था ।"

निर्णय में यह निष्कर्ष भी निकाला गया था कि यदि कोई 'गिलिक सक्षम' व्यक्ति सहमति देता है तो कोई समस्या सामने नहीं आती है किन्तु जहां ऐसा व्यक्ति सहमति देने से इन्कार करता है वहां कोई भी ऐसा अन्य व्यक्ति, जिसे पैतृक अधिकार या उत्तरदायित्व प्राप्त है, 'सहमति' प्रदान कर सकता है । 'गिलिक सक्षम' बालक की असफलता या इन्कार डॉक्टर द्वारा निर्णय लेने में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है कि वह उपचार करे या न करें, किन्तु इसके कारण वह किसी अन्य सक्षम व्यक्ति की आवश्यक सहमति लेने से निवारित नहीं हो जाता ।"

तत्पश्चात् लार्ड डोनाल्डसन ने निम्नलिखित छह सिद्धांत अवधारित किए :

(1) न तो प्रतिपाल्य अधिकारिता का प्रयोग करने वाला न्यायालय, न माता-पिता, न बालक या न कोई अन्य व्यक्ति, डाक्टर से किसी बालक का उपचार करने की मांग कर सकता है । यह निर्णय कि किसी रोगी का उपचार किया जाये या नहीं डाक्टर के वृतिक निर्णय पर आधारित है किन्तु शर्त यह है कि, किसी आपातकालीन असाधारण स्थिति के सिवाय, डाक्टर को किसी ऐसे व्यक्ति की सहमति प्राप्त करनी होगी जिस व्यक्ति को ऐसी सहमति देने का अधिकार है । ऐसा निर्णय लेते समय, बालक का मत और इच्छा ऐसे कारण हैं जिनका महत्व बालक की बुद्धिमत्ता और समझ में वृद्धि के साथ-साथ बढ़ता जाता है ।

(2) सहमति की शक्तियाँ समवर्ती हो सकती हैं । यदि सहमति देने की शक्ति एक से अधिक निकाय या व्यक्तियों को है तो उन सभी की सहमति देने में असफलता या उससे इन्कार वीटो की स्थिति पैदा कर देगा ।

(3) 'गिलिक सक्षम' बालक को अथवा 16 वर्ष से अधिक आयु के बालक को सहमति देने की शक्ति होगी किन्तु यह शक्ति माता-पिता या संरक्षक की समवर्ती होगी ।

(4) 'गिलिक सक्षमता' विकास पर आधारित सिद्धांत है और यह दिन प्रतिदिन या सप्ताह प्रति सप्ताह के आधार पर नष्ट या अर्जित नहीं होगी । मानसिक असमर्थता के मामले में, ऐसी असमर्थता पर ध्यान दिया जाना चाहिए विशेष रूप से तब जब उसके प्रभाव में फेर बदल होता रहता हो ।

(5) अपनी प्रतिपाल्य या कानूनी अधिकारिता का प्रयोग करते समय न्यायालय को 'गिलिक सक्षम' बालक तथा माता-पिता या संरक्षकों के निर्णय पर अभिभावी होने की शक्ति है ।

(6) न्या. वेट ने यह ठीक निर्णय दिया था कि 'आर' 'गिलिक सक्षम' नहीं थी और 'आर' में ऐसी सक्षमता होने की स्थिति में भी न्यायाधीश द्वारा उसके चल रहे उपचार की बावत् सहमति देने का अधिकार था और उसके परिणामस्वरूप अनिवार्य रूप से बदलाव भी करने पड़ सकते थे ।"

(15) एम. बी (मेडीकल ट्रीटमेन्ट) निर्देश: 1997 (2) एफ. एल. आर 426:

यह मामला काफी महत्वपूर्ण है और उसका संबंध एक गर्भधारी महिला द्वारा सीजेरियन आपरेशन से इन्कार करने से है । इस मामले में यह प्रश्न पैदा होता है कि, यदि इन्कार को किसी 'सक्षम व्यक्ति' द्वारा इन्कार माना जाता है तो क्या डाक्टरों को जीवन बचाने के उद्देश्य से अथवा गर्भ के बालक के मस्तिष्क को क्षति के निवारण के उद्देश्य से सीजेरियन आपरेशन करने की अनुमति प्रदान की जा सकती थी । प्रश्न यह है कि माता के जीवन या बालक (पैदा होने वाला) के जीवन में से किसको प्राथमिकता प्रदान की जाये ? विचारण न्यायाधीश ने अनुमति प्रदान कर दी किन्तु अपीली न्यायालय ने अनुमति देने से इन्कार कर दिया ।

इस मामले में अपीलार्थी तब क्लीनिक पहुँची थी जब उसका गर्भ 33 सप्ताह का था । उसने अपने 'सुईयों के भय' के कारण रक्त के सेम्पल लिये जाने से इन्कार कर दिया । जब उसके गर्भ की अवधि 40 सप्ताह हो गई तब

यह ज्ञात हुआ कि फोइटस बीच की स्थिति में था । रोगी को यह समझाया गया कि सामान्य रूप से जन्म होने में बालक की मृत्यु या मस्तिष्क क्षति का गंभीर खतरा था । उसने पहले लिखित में सहमति प्रदान कर दी और उसके जीवन साथी ने भी ऐसा किया किन्तु तत्पश्चात् वह 'सुईयों के भय' के कारण भयभीत हो गई और उसने अपनी सहमति वापस ले ली । अन्ततः वह राजी हो गई किन्तु उसने बेहोश किये जाने से इन्कार कर दिया । स्वास्थ्य प्राधिकारी ने न्यायालय में आवेदन किया और न्यायालय ने गर्भ चिकित्सक को शल्य चिकित्सा करने की किन्तु आवश्यकता के अनुसार केवल उचित बल के साथ शल्य चिकित्सा करने की अनुमति प्रदान कर दी ।

18.2.97 को, जब उसने 9 बजे शाम अन्तिम रूप से इन्कार कर दिया, तब अस्पताल ने 9:25 बजे शाम को न्यायालय को आदेश देने का निवेदन किया और न्या. होलिस ने शाम 9:55 पर आपरेशन की अनुमति प्रदान करने की घोषणा की । इससे पहले दिन में, महिला के लिये अपने वकील करने दिए गए थे । न्या. होलिस के निर्णय के पश्चात् श्री फ्रान्सीस क्वीन्स काउंसिल ने महिला से पुनः बातचीत की और उसने अपील दायर करने का निवेदन किया । अगले दिन सुबह उसने एक और सहमति पत्र पर हस्ताक्षर किये तथा बेहोश किये जाने और शल्य चिकित्सा में भी पूर्णरूप से सहयोग दिया । सीजेरियन आपरेशन के बाद एक बालक का जन्म हुआ । संभवतः मामले में उठने वाले प्रश्नों के निर्णयों के लिये एक अपील दाखिल की गई ।

(क) न्या. लार्ड बटलर-स्लोस ने अपीली न्यायालय की ओर से निर्णय देते हुए विचारण न्यायालय के साथ सहमति व्यक्त की तथा निम्नलिखित निर्णय दिया -

"(1) आक्रामक चिकित्सीय उपचार के लिये रोगी की सहमति आवश्यक है और मानसिक रूप से सक्षम व्यक्ति को चिकित्सीय उपचार से इन्कार करने का हक है चाहे ऐसा किसी सही या उचित कारण से किया जाये अथवा अनुचित कारणों से किया जाये अथवा किसी भी कारण के बिना किया जाये तथा भले ही ऐसे निर्णय के कारण रोगी की मृत्यु हो सकती हो । केवल एक ही ऐसी स्थिति है जिसमें डाक्टरों द्वारा हस्तक्षेप करना विधिपूर्ण है और वह यह है कि 'ऐसा विश्वास है कि वयस्क रोगी को निर्णय लेने की सामर्थ्य नहीं है तथा उपचार रोगी के सर्वोत्तम हित में है ।' न्यायालय को ऐसी अधिकारिता नहीं है कि वह किसी सक्षम माता द्वारा चिकित्सीय हस्तक्षेप के लिये सहमति देने से इन्कार करने के कारण अजन्मे बालक को जोखिम के हितों पर ध्यान दे।

(टी (ऐडल्ट: रिफ्यूजल ऑफ मेडिकल ट्रीटमेन्ट) निर्देश तथा टी (एन ऐडल्ट: कन्सेन्ट टू मेडिकल ट्रीटमेन्ट) निर्देश में लार्ड डोनल्डसन द्वारा दिये गये निर्णय तथा एस (ऐडल्ट: रिफ्यूजल ऑफ ट्रीटमेन्ट) निर्देश में सर स्टीफेन ब्राउन (अध्यक्ष) द्वारा दिये गये निर्णय से, जहां उन्हें रोगी से परामर्श किये बिना अत्यावश्यक निर्णय लेना पड़ा था, असहमति व्यक्त की गई ।

(2) किसी आपातकालीन स्थिति में चिकित्सीय उपचार दिया जा सकता है भले ही सामर्थ्य के अभाव में कोई सहमति न दी गई हो,परन्तु यह तब जब उपचार आवश्यक होऔर उससे अधिक नहीं किया जाये जो रोगी के सर्वोत्तम हित में उचित रूप से अपेक्षित है । एफ (मेन्टल पेशेन्ट : स्टेरीलाइजेशन) निर्देश : 1990 (2)ए. सी - 1 ।

(3) तथ्यों क अनुसार, गर्भ चिकित्सा तथा मनोचिकित्सा सलाहकार के साक्ष्य से यह स्थापित हो गया था कि रोगी सीजेरियन आपरेशन कराने के लिये, जैसी उसकी इच्छा थी, तैयार नहीं थी क्योंकि उस पर 'सुईयों का भय' व्याप्त था तथा, गंभीर स्थिति के समय उसमें कोई भी निर्णय लेने की सामर्थ्य नहीं थी। उस आधार पर, यह स्पष्ट था कि वह तत्समय ऐसी स्थिति में थी जब उसका मस्तिष्क काम नहीं कर रहा था और उसके परिणामस्वरूप वह असमर्थ थी तथा स्थाई रूप से अक्षम थी ।

(4)सी (रिफयुजल ऑफ मेडीकल ट्रीटमेन्ट) निर्देश : 1994 (1) आल. इ. आर 819 में दिया गया परीक्षण लागू किया गया ।
इसके अतिरिक्त, चूंकि माता (गर्भधारी महिला) तथा पिता चाहते थे कि बालक जीवित पैदा हो और माता आपरेशन कराने के पक्ष में थी सिवाय इसके कि उसको 'सुईयों का भय' था और इस बात की संभावना थी कि यदि बालक विकलांग या मृत पैदा होता तो माता को एक लम्बी अवधि तक क्षति सहन करनी पड़ती, यह निष्कर्ष निकलता है कि चिकित्सीय हस्तक्षेप रोगी के सर्वोत्तम हित में था और आवश्यक होने पर उसके लिये बल का प्रयोग भी किया जा सकता था । इन परिस्थितियों में न्यायाधीश ने घोषणा सही मंजूर की थी ।

(ख)निर्णय देने की क्षमता के प्रश्नों के बारे में अपीली न्यायालय ने लार्ड डोनल्डसन को निम्नलिखित रूप में उद्धृत किया । (टी. (एन एडल्ट) (रिफयुजल ऑफ मेडीकल ट्रीटमेन्ट) निर्देश) (1993 फेम 95 (102)= 1992 (4) आल. ई. रिपोर्टस 649 - टी एन एडल्ट : कन्सल्ट टू मेडीकल ट्रीटमेन्ट निर्देश) 1992 (2) एफ. सी. आर 458 (460)) : (पृष्ठ 112) (पृष्ठ 470 पर) : यह मामला एक

गर्भधारी महिला का था जो एक कार दुर्घटना में ग्रस्त थी और जिसको खून चढ़ाने की आवश्यकता थी ।

"<u>निर्णय करने की क्षमता</u> : अपने भाग्य के बारे में निर्णय करने के अधिकार के अन्तर्गत यह निहित है कि ऐसा करने की सामर्थ्य है । यह परिकल्पना की जाती है कि प्रत्येक वयस्क को ऐसी क्षमता है, किन्तु यह ऐसी परिकल्पना है जिसका खंडन किया जा सकता है । इसका संबंध वयस्क की बुद्धिमत्ता या शिक्षा की मात्रा के प्रश्न से नहीं है । तथापि, मानसिक रूग्णता या अपर्याप्त विकास के कारण आवश्यक मानसिक क्षमता की कमी समाज के एक छोटे से वर्ग में है (देखिये, उदाहरण के लिये, <u>एफ् (मेन्टल पेशेन्ट : स्टेरीलाइजेशन) निर्देश</u> : *1990* (2) ए. सी. *1*) यह एक स्थायी अथवा दीर्घकालीन स्थिति है । अन्य व्यक्तियों में, जिनमें सामान्यतः ऐसी सामर्थ्य है वे उससे वंचित हो सकते हैं या अस्थायी कारणों से उस सामर्थ्य में कमी आ सकती है, जैसे, बेहोशी या भ्रम या झटका लगने के अन्य प्रभाव घोर थकावट, दर्द या उपचार के दौरान प्रयोग की गई औषधियां।

जिन डाक्टरों को सहमति से इन्कार का सामना करना पड़ता है उन्हें रोगी की निर्णय लेने की क्षमता पर बहुत ध्यानपूर्वक और गहराई से विचार करना चाहिए। यह कोई ऐसा साधारण मामला नहीं हो सकता है जिसमें रोगी में सामर्थ्य नहीं हो क्योंकि, उदाहरण के लिये, हो सकता है उस समय वह दुस्वप्नों का

शिकार हो । जिस समय रोगी के बारे में निर्णय लिया जा रहा हो उस समय अस्थायी रूप से सामर्थ में कमी की दशा में यह और भी कठिन मामला हो सकता है । महत्वपूर्ण यह है कि डाक्टरों को इस पर विचार करना चाहिए कि क्या रोगी में उस समय ऐसी सामर्थ्य थी जो उस निर्णय के अनुरूप गंभीरता, के समतुल्य थी जो निर्णय रोगी को लेना था । निर्णय जितना गंभीर होगा उतनी ही अधिक सामर्थ्य अपेक्षित होगी । यदि रोगी में अपेक्षित सामर्थ्य है तो डाक्टरों को उसके निर्णय को मानना होगा । यदि सामर्थ्य नहीं है तो डाक्टर रोगी का ऐसा उपचार करने के लिये स्वतंत्र है जिसके बारे में उसे विश्वास है कि वह रोगी के 'सर्वोत्तम हित' में है।"

(ग) अपीली न्यायालय ने सी (रिफ्युजल ऑफ मेडिकल ट्रीटमेन्ट) निर्देश : 1994 (1) एफ. सी. आर. 1994 (1) आल. ई. रिपोर्ट्स 819 में न्या. थोरपे के निर्णय को उद्धृत किया जो निम्नलिखित आशय का है (इस मामले में रोगी एक 68 वर्ष का व्यक्ति का था जो पेरानोइड सीजोफ्रेनिया से पीड़ित था और जिसने अपनीं टांग को कटवाने से इन्कार कर दिया था):

"डाक्टर ई ने निर्णय लेने की प्रक्रिया के जिन तीन आयामों का विश्लेषण किया है मैं उसे सहायक मानता हूं : प्रथम आयाम, उपचार संबंधी जानकारी से अवगत होना और उसे दिमाग में रखना, द्वितीय आयाम, उसमें विश्वास रखना, और, तृतीय आयाम, निर्णय लेते समय उसे तौलना ।"

इसका नाम 'सी टेस्ट' या 'सी परीक्षा' है ।

(घ) (i) यू. के. के विधि आयोग ने अपने परामर्श पत्र 129 "मानसिक रूप से असमर्थ वयस्क और निर्णय प्रक्रिया" के पैरा 2.20 में इसी प्रकार की प्रक्रिया प्रस्तावित की है ।

(ii) 1995 में, यू.के. के विधि आयोग ने 'मानसिक सामर्थ्य' विषय पर विधि रिपोर्ट संख्यांक 231 में (पैरा 3.2 से 3.23 तक में) सिफारिश की है कि वांछित समय पर किसी व्यक्ति को सामर्थ विहीन माना जायेगा यदि वह मानसिक असमर्थता के कारण प्रश्नगत विषयों पर अपना निर्णय लेने में इसलिये असमर्थ है क्योंकि :

(क) वह निर्णय से सुसंगत जानकारी को समझने और अपने दिमाग में रखने में असमर्थ है, जिसके अंतर्गत यह निर्णय लिया जाये या वह निर्णय लिया जाये अथवा कोई निर्णय न लिया जाये उसके परिणामों की युक्ति-युक्त परिकल्पना संबंधी जानकारी भी है, अथवा

(ख) वह उस जानकारी के आधार पर निर्णय लेने में असमर्थ है ।

"मानसिक असमर्थता की यह परिभाषा दी गई थी कि वह स्थायी या अस्थायी ऐसी असमर्थता या मानसिक रुग्णता है जिसके परिणामस्वरूप मस्तिष्क के कार्यकरण में विघ्न या बाधा पैदा हो जाती है ।"

(अ) <u>सीजेरियन सैक्शन के मामले</u>

न्या. लार्ड बटलर-स्लोस ने तत्पश्चात् <u>सीजेरियन सैक्शन संबंधी अन्य निर्णयों</u> को उद्धृत किया :

(क) टामेसाइड एण्ड ग्लोसप ऐक्युट सर्विसेज ट्रस्ट बनाम सी. एच. : 1996 (1) 7 एफ. एल. आर 762 में रोगी पेरानोइड सीजोफ्रेनिया से पीड़ित थी और मेन्टल हैल्थ ऐक्ट 1853 की धारा 3 के अंतर्गत उसे प्रवेश दिया गया था । यह पता लगा कि वह गर्भधारण किये हुऐ थी और यदि गर्भ रहा आता तो गर्भस्थ शिशु को खतरा था । ऐसा अतिव्यापी साक्ष्य था कि वह प्रस्तावित उपचार के लिये सहमति देने या उससे इन्कार करने की सामर्थ्य से रहित थी । न्या. वाल ने, उक्त अधिनियम की धारा 63 के अंतर्गत वांछित घोषणा देते समय, ऐसे सामान्य सिद्धांत निर्धारित किये जो सहमति रहित उपचार को शासित करते हैं । न्या. महोदय ने तीन आयामी परीक्षण लागू किया (सी निर्देश का मामला जिसका निर्णय न्या. थोरपे ने किया था और जो 'सी परीक्षण' कहलाता है ।

(ख) सीजेरियन सैक्शन का दूसरा मामला नोर फोक एण्ड नोरविच हैल्थ केयर (एन. एच. एस) ट्रस्ट बनाम डबल्यू : (1996 (2) एफ. एल. आर 613) का है । यह एक अनोखा मामला था जहां वह महिला जो मनोविकार का उपचार ले रही थी, जन्म देने की स्थिति में अस्पताल में आयी और उसने यह इन्कार किया कि गर्भवती थी । उसकी जन्म देने की प्रक्रिया बाधित थी । डॉक्टर ने निर्णय लिया कि फोरसेप का प्रयोग करके या सीजेरियन आपरेशन करके जन्म कराया जाये । एक मनोचिकित्सक ने उसकी जांच की और पाया कि वह किसी मानसिक बाधा से ग्रस्त नहीं थी । डॉक्टर इस बारे में निश्चित नहीं था कि रोगी प्रस्तावित उपचार के बारे में जानकारी को समझने

और उसे दिमाग में रखने के योग्य थी किन्तु महिला निरंतर यह कह रही थी कि उसे गर्भ नहीं था । डॉक्टर निश्चित नहीं था कि महिला को उपचार के बारे में जानकारी को समझने की सामर्थ्य थी या नहीं। तथापि डाक्टर की यह राय थी कि महिला को दी गई जानकारी को तौलने की सामर्थ्य नहीं थी । यह सी परीक्षण था । न्या. जानसन ने पृष्ठ 616 पर निर्णय दिया कि :

> "......... यद्यपि वह महिला, कानून के अर्थ में, किसी मानसिक रुग्णता से ग्रस्त नहीं थी किन्तु उसमें प्रस्तावित उपचार के बारे में निर्णय लेने की मानसिक क्षमता में कमी थी क्योंकि उसमें प्रस्तावित उपचार के पहलुओं को तौलने की सामर्थ्य नहीं थी । जिस समय निर्णय लेने के लिये कहा गया वह गंभीर भावात्मक आवेग में थी, और जन्म देने की सामान्य प्रक्रिया के दौरान होने वाले शारीरिक कष्ट ने उसके लिए निर्णय लेना और कठिन कर दिया क्योंकि उसका अपना मानसिक इतिहास ऐसा ही था ।"

न्यायाधीश महोदय इस बारे में संतुष्ट थे कि आपरेशन उसके सर्वोत्तम हित में था और उन परिस्थितियों में न्यायालयों को कॉमन विधि के अंतर्गत, उचित बल का प्रयोग करने का अधिकार देने की शक्ति थी।

(सी) रोकडेल हैल्थ केयर (एन. एच. एस) ट्रस्ट बनाम सी (3.7.1996 जो रिपोर्ट नहीं किया गया है) भी सीजेरियन आपरेशन से संबंधित था । ऊपर उल्लिखित, नोरफोक की सुनवाई के दौरान न्या. जानसन से

एक अत्यावश्यक घोषणा मंजूर करने का निवेदन किया गया था क्योंकि गर्भ चिकित्सक का यह मत था कि यदि गर्भस्थ बालक को बचाना था और रोगी के स्वास्थ्य को क्षति की जोखिम से बचाना था तो एक घंटे के भीतर सीजेरियन आपरेशन करना आवश्यक था । महिला का ऐसा आपरेशन पहले भी हो चुका था और उसका कहना था कि वह ऐसा आपरेशन पुनः करवाने की अपेक्षा मर जाना चाहेगी। उपलब्ध समय में मनोचिकित्सक का साक्ष्य प्राप्त करना संभव नहीं था । गर्भचिकित्सक मानता था कि रोगी पूर्णतया सक्षम थी । न्यायाधीश के पास बहुत कम समय था और ऐसी 'बहुत कम जानकारी' थी जिसके आधार पर ऐसे रोगी के बारे में निर्णय लेना था । न्या. जानसन ने सी टेस्ट लागू किया (जैसा कि न्या थोरपे ने अधिनिर्णीत किया था) और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि रोगी उसे दी गई जानकारी को तौलने में, अर्थात् सी टेस्ट के तीसरे आयाम के बारे में, समर्थ नहीं थी ।

न्या. जानसन ने निर्णय दिया :

> "महिला रोगी जन्म संबंधी प्रक्रिया में थी और कष्ट में तथा भावनात्मक परेशानी में थी । मैंने यह निष्कर्ष निकाला कि कोई भी रोगी जो, उन परिस्थितियों में क्या कुछ ऐसा कह सकती थी जिससे यह लगता कि वह स्वीकार कर रही है कि मृत्यु निश्चित है, वह ऐसी रोगी नहीं थी जो उन कारणों को ठीक से तौल सकती थी जिनके आधार पर कोई सही निर्णय छोटी से छोटी बात के बारे में लिया जा सकता था और विशेष रूप से ऐसा निर्णय जो उसके जीवन की बाबत् हो ।"

इस मामले का उल्लेख करते हुए, न्या. बटलर-स्लोस ने टिप्पणी की कि कोई भी यह प्रश्न उठा सकता है कि क्या न्यायालय के समक्ष ऐसा साक्ष्य था जिसके आधार पर न्यायाधीश गर्भ चिकित्सक की उस राय के विरुद्ध कि महिला रोगी सक्षम थी, किसी निर्णय पर पहुंच सकता था । तथापि, न्यायाधीश ने वांछित घोषणा की । वास्तव में, रोगी ने तत्पश्चात् अपनी राय बदल दी और आपरेशन के लिये सहमति प्रदान कर दी थी ।

(घ) एल निर्देश : (८ दिसम्बर 1996 जिसे रिपोर्ट नहीं किया गया है) सीजेरियन आपरेशन का एक दूसरा मामला है । न्या. किंक्वुड के समक्ष एक आवेदन वैसे ही तथ्यों पर था जो एम. बी निर्देश में थे । यह मामला भी सुईयों से भय का था । एल नाम के रोगी के संबंध में, जो बीस वर्ष से कम उम्र की थी, और जिसके गर्भ में व्यवधान हो रहा था, एक अत्यावश्यक आवेदन किया गया । हस्तक्षेप के अभाव में, गर्भस्थ शिशु को जोखिम थी और दशा खराब होना अवश्य संभावी था और मृत्यु हो सकती थी । मृत बालक का गर्भस्थ रहना, रोगी के स्वास्थ्य के लिये हानिकारक था और शल्य चिकित्सा द्वारा उसका निकालना आवश्यक हो गया था । आपातकालीन सीजेरियन आपरेशन की अत्यन्त आवश्यकता बताई गई थी । एल चाहती थी कि उसका बालक जीवित पैदा हो लेकिन उसे सुई से भय लगता था और वह सुई के प्रयोग की सहमति देने में असमर्थ थी अतः प्रस्तावित उपचार

से भी उसे आपत्ति थी । न्या. किर्कवुड ने न्या. थोरपे के सी टेस्ट को लागू किया और कहा कि -

"........महिला का सुई से भय इतना अधिक था कि वह ऐसी अनचाही अनिवार्यता में थी जिसके कारण वह निर्णय लेने के लिये उपचार संबंधी जानकारी को तौल नहीं सकती थी । वास्तव में यह मनोवैज्ञानिक प्रकृति का प्रभाव था जिसके कारण एल पूरी ताकत से उस चिकित्सीय राय का विरोध कर रही थी जिसके कारण उसके अपने जीवन को गंभीर जोखिम हो सकती थी ।"

विद्वान न्यायाधीश ने निर्णय दिया कि महिला उपचार से सुसंगत जानकारी को विवेक की तुला पर तौलने के अयोग्य थी । अतः उसमें उपचार संबंधी निर्णय लेने की सुसंगत मानसिक क्षमता नहीं थी । उन्होंने आगे निर्णय दिया कि आपरेशन महिला के सर्वोत्तम हित में था और अस्पताल द्वारा वांछित घोषणा मंजूर की ।

(ड़) न्या. लार्ड बटलर-स्लोस ने एस निर्देश (एडल्टः रिफ्यूजल ऑफ मेडिकल ट्रीटमेन्ट) 1993 फेम 123 सी = 1993 (1) एफ. एल. आर 26) का भी उल्लेख किया जिसमें सर स्टीफेन ब्राउन को, अध्यक्ष के रूप में यह निर्णय 'अत्यन्त आपात' की स्थिति में लेना पड़ा था । सुनवाई संक्षिप्त थी और उसमें महिला का प्रतिनिधित्व नहीं हो सका था । स्वास्थ्य प्राधिकारी तथा अस्पताल ने आपातकालीन सीजेरियन आपरेशन के लिये आवेदन किया था । शासकीय सालिसीटर वाद मित्र के रूप में खड़े हुए । रोगी की आपत्ति धार्मिक कारणों पर आधारित

थी । न्यायालय ने कथन किया कि 1:30 बजे दोपहर को आवेदन किया गया था, 2:00 बजे सुनवाई की गई थी और 2:18 बजे आदेश दिया गया था । यह कथन करते हुए कि उस समय कोई भी इंगलिश केस सामने नहीं था, न्यायाधीश ने अमेरिका के एक मामले <u>ग्री निर्देश</u> (1990) 573 ए द्वितीय 1235 (1240, 1246 - 1248, 1252) का आश्रय लिया । न्यायाधीश ने कहा :

> "मैं इस समय और अधिक नहीं कहना चाहता सिवाय इसके कि मैं वर्तमान स्थिति की निराशा पूर्ण प्रकृति के बारे में श्री पी. के साक्ष्य को पूरी तरह स्वीकार करता हूं और वांछित घोषणा मंजूर करता हूं ।"

(च) <u>"निर्णय लेने के बारे में महिला की क्षमता" : रोगी की चिकित्सा में हस्तक्षेप विषय पर न्या. लार्ड बटलर-स्लोस के निष्कर्ष</u>
(सीजेरियन मामले)

"(1) प्रत्येक व्यक्ति के बारे में यह परिकल्पना की जाती है कि उसे चिकित्सीय उपचार की बावत् सहमति देने की या उससे इन्कार करने की क्षमता है । किन्तु यह परिकल्पना खण्डन योग्य है ।

(2) एक सक्षम महिला, जिसमें निर्णय लेने की क्षमता है, धार्मिक कारणों से, (अथवा) अन्य कारणों से (अथवा) तर्कपूर्ण या <u>तर्करहित</u> करणों से या बिना किसी कारण के भी, यह निर्णय ले सकती है कि

वह कोई चिकित्सीय हस्तक्षेप नहीं चाहती भले ही उसके परिणामस्वरूप गर्भस्थ बालक की मृत्यु हो जाये, गंभीर विकलांगता हो जाये या महिला की अपनी मृत्यु हो जाये । ऐसी दशा में, न्यायालयों को चिकित्सीय हस्तक्षेप को विधिपूर्ण घोषित करने की अधिकारिता नहीं है और, यदि उद्देश्यपरक दृष्टिकोण अपनाया जाये, तो ऐसी दशा में रोगी के सर्वोत्तम हित का प्रश्न नहीं उठता है ।

(3) यहां अतर्कपूर्णता शब्द का प्रयोग ऐसे निर्णय के अर्थ में किया गया है कि वह तर्क या स्वीकृत नैतिक मानकों का ऐसा खुला उल्लंघन है कि कोई भी विचारशील व्यक्ति, जिसने निर्णय योग्य प्रश्न पर विचार किया है, ऐसा निर्णय नहीं ले सकता था । जैसा केनेडी और ग्रब मेडिकल ला (बटर वर्थ, द्वितीय प्रकाशन 1994) में संकेत दिया गया है, यदि कोई निर्णय वास्तविकता के प्रति भ्रामक धारणा पर आधारित है (उदाहरण के लिये, रक्त में जहर है क्योंकि रक्त लाल है) तो निर्णय अन्यथा भी हो सकता है । ऐसी भ्रामक धारणा को मानसिक विकार कहकर शीघ्र स्वीकार किया जा सकता है। यद्यपि इस बात पर भी ध्यान दिया जा सकता है कि निर्णय लेने की क्षमता और अतर्कपूर्णता दोनो साथ-साथ नहीं चल सकती । अतः बौखलाहट अनिर्णय और अतर्कपूर्णता अक्षमता नहीं हैं । निर्णय के परिणाम गंभीर होंगे । निर्णय लेने के लिये अपेक्षित सक्षमता का स्तर भी उसी के अनुकूल गंभीर होगाः (टी निर्देश (उपरोक्त), साइडवे (क) 1985 ए.सी. 871 पृष्ठ 904, गिलिक बनाम वेस्ट नोरफोक एण्ड विसवेच एरीया हैल्थ ओथोरीटी एण्ड एनअदरः (1986) ए. सी. 112 169 (186) ।

(4) ऐसे व्यक्ति में क्षमता का अभाव है यदि वह व्यक्ति मानसिक कार्यकलाप में बाधा या विघ्न के कारण यह निर्णय लेने के अयोग्य है कि वह उपचार के लिये सहमति दे या उससे इन्कार कर दे । निर्णय लेने में ऐसी असमर्थता तब होगी जब -

(क) रोगी उस जानकारी को जो निर्णय लेने के लिये, विशेष रूप से प्रश्नगत उपचार लेने या न लेने के संभावित परिणामों की बाबत, तात्विक है, समाहित करने और धारण किये रहने के अयोग्य है :

(ख) रोगी निर्णय तक पहुंचने की प्रक्रिया के भाग के रूप में, जानकारी का उपयोग करने और उसे विवेक की तुला पर तौलने के अयोग्य है । यदि, जैसा सी निर्देश (उपरोक्त) में न्या. थोरपे ने स्पष्ट किया है, कोई ऐसी अनिवार्य अस्वस्थता या भय जिससे रोगी पीड़ित है, उसे प्रदान की गई जानकारी पर विश्वास पर नहीं कर सकता तो उसका निर्णय सही निर्णय नहीं हो सकता है । जैसा कि मुख्य न्या. लार्ड कोकबर्न ने बैंक्स बनाम गुडफेलो (1870) एल. आर. क्यू. बी 549 (569) में कथन किया है 'असमर्थ रोगी के ध्यान में कोई एक बात इतनी बलपूर्वक प्रवेश कर सकती है कि वह अन्य सभी बातों पर विचार करने से रूक जाये जिन पर ध्यान देना आवश्यक है ' :

(5) लार्ड एम. आर डोनल्डसन ने टी निर्देश में जिन 'अस्थायी कारणों का उल्लेख किया है (अर्थात्, भ्रम, धक्का, थकान, पीड़ा या औषधियां) वे सामर्थ्य को पूरी तरह नष्ट कर सकते हैं किन्तु उन व्यक्तियों का, जो संबंधित है यह समाधान हो जाना चाहिए कि ऐसे कारण इतने व्यापक हैं कि निर्णय लेने की योग्यता गुम हो गई है' :

(ङ) भय के कारण उत्पन्न बौखलाहट भी एक अन्य प्रभावकारी कारण हो सकती है । इस स्थिति में साक्ष्य का ध्यानपूर्वक विश्लेषण करना आवश्यक है क्योंकि आपरेशन कराने का भय उससे इन्कार करने का एक उचित कारण हो सकता है । तथापि, भय के कारण इच्छा शक्ति नष्ट हो सकती है और परिणामस्वरुप निर्णय लेने की सामर्थ्य समाप्त हो सकती है।

(छ) सिद्धांतो के पूर्णरूपेण विश्लेषण करने के पश्चात, न्या. बटलर-स्लोस ने " ए कन्सीडरेशन ऑफ द लॉ एण्ड ईथिक्स इन रिलेशन टू कोर्ट-आथोराइजड् आबस्टेट्रिक इन्टरवेन्शन" शीर्षक के अंतर्गत रायल कालेज ऑफ आबस्टेट्रियंस एण्ड गाइनेकोलोजिस्ट के मार्ग निर्देशों" का उल्लेख किया है । यह मत व्यक्त किया गया कि उक्त मार्ग निर्देश अब तक न्यायालयों के द्वारा दिये गये निर्णयों का एक मनोरंजक लेखा है और उठने वाली समस्याओं का संक्षिप्त विवरण है, तथा चिकित्सा व्यवसायियों को, जिन्हें उनका सामना करना पड़ता है, परामर्श प्रदान करते हैं । कमेटी इस निष्कर्ष पर पहुंची :

> "..........प्रस्तावित चिकित्सीय उपचार से इन्कार करने वाली जानकार और सक्षम महिला के निर्णय को रद्द कराने के लिये न्यायालयों से हस्तक्षेप की प्रार्थना करना अनुपयुक्त है और न उससे कोई सहायता मिल सकती है और न वह आवश्यक है

भले ही ऐसे इन्कार के परिणामस्वरूप महिला के जीवन और गर्भस्थ बालक के जीवन को जोखिम ही क्यों न हो ।"

विद्वान न्यायाधीश ने यह मत व्यक्त किया कि मार्ग निर्देश विधि की वर्तमान स्थिति को सही रूप में प्रस्तुत करते हैं । "केवल एक ही स्थिति है जिसमें डाक्टर का हस्तक्षेप विधिपूर्ण है और वह तब है जब ऐसा विश्वास हो जाये कि वयस्क रोगी में निर्णय लेने की सामर्थ्य नहीं है ।" "यदि कोई संक्षम माता चिकित्सीय हस्तक्षेप से इन्कार करती है तो डाक्टर उसे समझाने, बुझाने का प्रयास करने से अधिक और कुछ भी ऐसा नहीं कर सकते जो विधिपूर्ण है । यदि समझाने से भी सफलता नहीं मिलती है तो चिकित्सीय हस्तक्षेप संबंधी और कोई कदम आगे नहीं उठाये जा सकते हैं । हम मानते हैं कि इन निष्कर्षो का प्रभाव यह है कि ऐसी स्थितियां उत्पन्न हो सकती हैं जिनमें बालक की मृत्यु हो जाये या माता के इन्कार के कारण बालक को गंभीर रूप से विकलांगता हो जाये और गर्भ चिकित्सक ऐसी मृत्यु या विकलांगता से बचाने के लिये कोई आवश्यक कदम न उठा सके । वास्तव में माता तदनन्तर ऐसे परिणाम को अस्वीकार कर सकती है किन्तु उसका विकल्प महिला के निर्णय लेने के अधिकार का अवांछित उल्लंघन होगा ।

(16) डी (मेडीकल ट्रीटमेन्ट निर्देश) :1998 (2) एफ. एल. आर 10 (न्या. सर स्टीफेन ब्राउन)(26 सितम्बर 1997)

प्रतिवादी, आयु 59 वर्ष, लम्बे समय से मानसिक रोगों से पीड़ित था और उसके जीवन का एक लम्बा समय मनोविकार अस्पतालों में अन्दर या बाहर बीता था । वह गंभीर रीनल फेल्योर से पीड़ित था और सप्ताह में तीन या चार बार उसे डाइलाइसिस पर रखने की आवश्यकता पड़ती थी किन्तु उसकी मानसिक स्थिति ऐसी थी जिसके कारण उसके लिये उक्त उपचार में आवश्यक सहयोग देना असंभव था। अस्पताल के अधिकारियों ने न्यायालय के समक्ष इस घोषणा के लिये आवेदन किया कि न्यास के लिये उन परिस्थितियों में उसे हेमोडाइलाइसिस पर न रखना विधिपूर्ण होगा क्योंकि चिकित्सकों की राय के अनुसार, ऐसा करना युक्ति-युक्त रूप से व्यवहार्य नहीं था क्योंकि रोगी सहयोग नहीं दे रहा था । शासकीय सालीसीटर रोगी की ओर से खड़े हुए और उन्होंने डाक्टर की ऐसी राय प्राप्त कर ली कि रोगी के असमर्थ होने और सहयोग न देने की परिस्थिति में, यदि डाइलाइसिस का उपचार करना असंभव था तो डाक्टरों को रक्षा प्रदान की जानी चाहिए ।

न्यायालय ने आवेदन स्वीकार कर लिया और घोषणा की कि 'चिकित्सीय उपचार के लिये प्रतिवादी द्वारा सहमति देने या उससे इन्कार करने की असमर्थता के होते हुए भी, रोगी के सर्वोत्तम हित में होने के कारण यह विधिपूर्ण था कि वादी अस्पताल, उन परिस्थितियों में जिनमें रोगी का उपचार करने के लिये उत्तरदायी चिकित्सकों की राय में ऐसा करना युक्ति-युक्त रूप से व्यवहार्य नहीं है, रोगी को हेमोडाइलाइसिस पर न रखे ।'

(17) <u>एल (मेडीकल ट्रीटमेन्टः गिलिक कोम्पीटेन्सी) निर्देशः</u> 1998 (2) एफ. एल. आर 810 (न्या. सर स्टीफेन ब्राउन) (10 जून, 1998)

एक चौदह वर्षीय बालिका के जीवन को खतरा पैदा हो गया था। उसने चिकित्सीय उपचार को अस्वीकार कर दिया जिस उपचार में उसको रक्त चढ़ाये जाने की संभावना थी क्योंकि रोगी जीहोवा विटनेस थी और वह सहमति नहीं देगी। उसके अपने विश्वास थे और वह उसकी आयु को देखते हुए परिपक्व थी। शल्य चिकित्सक ने उसे यह स्पष्ट कर दिया था कि उसके जीवन को बचाने के लिये उसे रक्त चढ़ाना आवश्यक था। शल्य चिकित्सक को इसमें कोई संदेह नहीं था बालिका को उसकी मृत्यु की वास्तविक प्रकृति के बारे में जानकारी नहीं दी गई थी तथापि शल्य चिकित्सक ने न्यायालय को सूचित किया कि उसकी मृत्यु भयावह होगी। अस्पताल के अधिकारियों ने न्यायालय में आवेदन किया कि रोगी की सहमति के बिना उसे रक्त चढ़ाने की अनुमति दी जाये। प्रश्न यह था कि क्या बालिका गिलिक सक्षम थी?

न्या. स्टीफेन ब्राउन ने रोगी की सहमति के बिना रक्त चढ़ाने की अनुमति प्रदान करते हुए निर्णय दिया कि यद्यपि न्यायालय रोगी के धार्मिक मत पर चर्चा नहीं कर सकता था किन्तु इस प्रकार के 'मत' तथा - "रचनात्मक राय बनाने" में अन्तर था और ऐसी राय वयस्क के साथ अनुभव के आधार पर ही बन सकती थी किन्तु रोगी के मामले में ऐसा नहीं हुआ था। इस बात को नकारा नहीं जा सकता था कि

सेनी अभी भी एक बालिका थी । उसका जीवन एक घेरे में बंद था और वह जिहोवा विटनेस समुदाय से प्रभावित थी। इसके कारण अनिवार्यतः मामले की गंभीरता के बारे में उसकी समझ सीमित हो गई थी । यह निर्णय लेने के लिये कि वह अपनी सहमति प्रदान कर सकती थी या नहीं कर सकती थी उसे वह जब जानकारी नहीं दी गई थी जिन पर उसके द्वारा विचार किया जाना सही तथा उपयुक्त था । वह 'गिलिक काम्पीटेन्स' नहीं थी : आर (ए माइनर) (वार्डशिप मेडीकल ट्रीटमेन्ट) निर्देश : 1991 (4) आल. ई. रिपोर्ट 177 (सी. ए) । अतः कोर्ट को यह निश्चय करना था कि उन तथ्यों के आधार पर उसके सर्वोत्तम हित में क्या था और न वह केवल उसके सर्वोत्तम हित में था अपितु पूर्णतया आवश्यक था कि सहमति के बिना भी उसे उपचार प्रदान किया जाये ।

निर्णय : यदि बालिका 'गिलिक काम्पीटेन्ट' भी होती तब भी उसकी सहमति के बिना उसके उपचार की अनुमति देना उचित होगा क्योंकि यह एक अत्यन्त गंभीर मामला था और उसकी दशा गंभीर थी ।

(18)स्यामिज ट्विंस केस : ए (चिल्डरन) निर्देश :2000 इ. डबल्यू सी. ए 254 (न्या. लार्ड वार्ड, ब्रुक, रौबर्ट वाकर)(22.9.2000)

यह एक लम्बा (लगभग 88 पृष्ठों का) निर्णय है । इसमें अत्यन्त महत्वपूर्ण चिकित्सीय - कानूनी प्रश्न उठाये गये हैं ।

दो जुड़वां बच्चों के मामले में समस्या यह थी कि क्या उनकी आक्रामक शल्य चिकित्सा करके उनको अलग-अलग करना आवश्यक था और वह भी उस स्थिति में जिसमें उनमें से एक (जोडिक) को लम्बा जीवन प्राप्त हो सकता था जबकि यह निश्चित था कि उसी शल्य चिकित्सा के कारण उनमें से दूसरी मैरी की मृत्यु हो सकती थी । जोडिक मजबूत थी और वास्तव में वह मैरी को आक्सीजन प्रदान कर रही थी । माता-पिता उन के अलग-अलग किये जाने के पक्ष में नहीं थे। किन्तु यदि छः मास तक आपरेशन नहीं किया गया तो दोनों की मृत्य हो जायेगी । स्पष्ट था कि जुड़वां बच्चे कोई निर्णय नहीं ले सकते थे । न्या. जानसन ने अस्पताल को जुड़वां बच्चों को अलग-अलग करने की घोषणा प्रदान कर दी । जुड़वा बच्चों का जन्म 8.8.2000 को हुआ था । न्या. जानसन ने उक्त घोषणा 25.8.2000 को की । न्या. जानसन ने समय बचाने के लिये डाक्टर का वीडियो-साक्ष्य लिया । मैरी का पोषण ट्यूब से किया जा रहा था । यदि छह मास में उन्हें अलग-अलग कर दिया जाता तो मैरी की मृत्यु हो सकती थी किन्तु जोडिक एक अच्छे जीवन के साथ जीवित रह सकती थी पर उसे कुछ ऐसे दोष रह सकते थे जिन्हें ठीक किया जा सकता था । इन प्रश्नों पर अनेक चिकित्सीय रिपोर्टें न्यायालय के समक्ष रखी गई । (पृष्ठ 1 से 18 तक)

माता-पिता ने अपील की । विद्वान न्यायाधीशों ने अलग-अलग निर्णय दिये (22.9.2000)

न्या. लार्ड वार्ड : विद्वान न्यायाधीश ने इस मूल सिद्धांत का उल्लेख किया कि किसी भी व्यक्ति का शरीर अव्यतक्रमणीय है । (एफ मेन्टल पेशेन्टः स्टेरीलाइजेशन) निर्देश : 1990 (2) ए. सी. 1 (लार्ड गॉफ के मतानुसार तथा एस बनाम मैक, डबल्यू बनाम डबल्यू : 1972 (ए. सी 24) (43) । इसके अतिरिक्त स्वनिर्धारण के अधिकार का सिद्धांत भी था (एफ निर्देश), लार्ड गॉफ ने न्या. कार्डोजो का उल्लेख करते हुए कहा था और इनके अतिरिक्त माता-पिता का वीटो का अधिकार भी था।) यह बात एअरडेल : 1993 ए. सी. 789 में मान ली गई थी ।

सक्षम वयस्क के उपचार के लिये उसकी सहमति अपेक्षित है किन्तु जहां उसकी सक्षमता में कमी है वहां कॉमन विधि आवश्यकता के सिद्धांत को लागू करने की अनुमति देती है (एफ निर्देश में लार्ड गॉफ) । बालकों के माता-पिता की दशा में, यदि वे विवाहित हैं, उन्हें सहमति देने की शक्ति है (गिलिक बनाम वेस्ट नॉरफोक ए. एच. ए: 1986 (1) ए.सी. 112 (184) में लार्ड स्कारमैन) । यदि वे विवाहित नहीं है तो माता को सहमति देने का विशेषाधिकार है । माता-पिता द्वारा इन्कार करने की स्थिति में उनके निर्णय का आदर किया जाना चाहिए । उन्हें अनदेखा करके ऑपरेशन करना आघात होगा (आर निर्देश (ए माइनर) वार्डशिप कनसेन्ट टू ट्रीट) 1992 (फेम 1 - लार्ड एम. आर डोनल्डसन का मत)। किन्तु माता-पिता का अधिकार सर्वोपरि नहीं है या पुनरीक्षण से न्यायालय के नियंत्रण से या परे नहीं है (गिलिक में लार्ड स्कारमैन, पृष्ठ 184) बालक के सर्वोत्तम हित के बारे

में, सर्वोपरि नियंत्रण न्यायालय में निहित है । प्रभुतासंपन्न का बालकों की रक्षा का अधिकार, समय के साथ-साथ, लार्ड चांसलर को और तत्पश्चात न्यायाधीशों को चला गया है और उच्च न्यायालय की अंतर-निहित अधिकारिता का भाग बन गया है । देखिये बी निर्देश (ए माइनर) (वार्डशिप ; मेडीकल ट्रीटमेन्ट) ; 1981 (1) डबल्यू. एल. आर 1424 । (न्या. लार्ड टेम्पलमैन तथा डन के अनुसार) । कुटुम्ब विधि के अंतर्गत, माता-पिता के इन्कार पर अभिभावी होने के लिए बालक का सर्वोपरि कल्याण और हित कसौटी है । (बी निर्देश)(ए माइनर वार्डशिप : स्टेरीलाइजेशन: 1988 ए. सी 199 सेन्ट मैरी लेबोर्न एल. सी के लार्ड हेलशाम के मतानुसार) । यहां कल्याण का अर्थ 'सर्वोत्तम चिकित्सीय हित' तक सीमित नहीं है (एम. बी निर्देश (मेडीकल ट्रीटमेन्ट) 1997 (2) एफ. एल. आर 426 (439 में न्या. लार्ड बटलर-स्लोस) । ए निर्देश (मेल स्टेरीलाइजेशन) 2000 (1) एफ. एल. आर 55 में न्यायाधीश ने कहा :

> "मेरे विवेक के अनुसार, सर्वोत्तम हित के अंतर्गत चिकित्सीय, भावनात्मक और अन्य सभी कल्याणकारी हित आ जाते हैं ।"

मैरी का सर्वोत्तम कल्याण और सर्वोत्तम हित : क्योंकि मैरी तुरन्त मरने वाली थी, अतः इस मामले में यह प्रश्न अत्यन्त महत्वपूर्ण होगा । पहला प्रश्न यह था कि हस्तक्षेप से मैरी को क्या लाभ और क्या हानियां होंगी । एफ निर्देश में, ओकब्रुक के लार्ड ब्रांडसन ने यह बात कही थी कि "आपरेशन या अन्य उपचार तब, और केवल तब उसके सर्वोत्तम हित में होगा यदि उसका उद्देश्य उसके जीवन को बचाना है

या उसके शारीरिक या मानसिक स्वास्थ्य में सुधार सुनिश्चित करना या अवक्षय निर्वारित करना है।"

यह कसौटी मैरी को सहायता नहीं पहुंचाती क्योंकि मैरी आपरेशन के पश्चात् तुरन्त मर जायेगी ।

तब न्यायाधीश एअरडेल में अधिकथित सिद्धांतों का आश्रय लिया । वह एक ऐसा मामला था जिसमें एक पी. वी. एस रोगी की दशा में उपचार समाप्त कर देने की मंजूरी प्रदान की गई थी । एअरडेल का शास्त्रीय विश्लेषण किया गया । देखिए :-

(i) केनेडी एण्ड ग्रब : विदड्रोअल ऑफ आरटीफिशियल हाईड्रेशन एण्ड न्यूट्रीशन: इनकॉम्पीटेन्ट ऐडल्ट ; 1993 2. मेडिकल लॉ रिव्यू 359;

(ii) केनेडी एण्ड ग्रब, मेडीकल लॉ, (द्वितीय प्रकाशन) 16;

(iii) जे. फिनिस - 'ब्लड, क्रासिंग दा रुबीकोन' : (1993) 109 एल. क्यू. आर 329;

(iv) जे. कीओन : रैस्टोरिंग मोरल एण्ड इनटलेक्चुअल शेप टू दा लॉ ऑफ्टर ब्लांड: (1997) 113 एल. क्यू. आर 481 ।

आपराधिकता विषय पर एअरडेल के सिद्धान्तों को छः भागों में संक्षेप में प्रस्तुत किया गया था जो निम्नलिखित हैं :

"(i) कुछ सीमा तक ऐसा माना गया कि मृत्यु कारित करने का उद्देश्य था ।

(ii) रोगी के जीवन को सकारात्मक रुप से समाप्त कर देना रुबीकोन को लांघना जैसा है जो एक ओर जीवित रोगी की देखभाल

और दूसरी ओर, यूथानासीया रोगी के कष्ट को समाप्त करने के लिए या उससे बचाने के लिये सकारात्मक रूप से उसकी मृत्यु कारित करना, के बीच से गुजरती है । यूथानासीया कामन विधि में विधिपूर्ण नहीं है "- लार्ड गॉफ का मत, पृष्ठ 865 एफ ।

(iii) तथापि, उपचार के हटाए जाने को, एक लोप के रूप में माना जाना उचित था ।

(iv) यदि कार्य करना कर्तव्य था तो कार्य करने से लोप हर प्रकार से आपराधिक था ।

(v) यदि उपचार रोगी के सर्वोत्तम हित में नहीं था तो उपचार करना कर्तव्य नहीं था ।

(vi) क्योंकि उपचार से रोगी की दशा में कोई सुधार होने की संभावना नहीं थी तथा उपचार निरर्थक था और टोनी ब्लांड के लिए (एअरडेल में) कृत्रिम रूप से उसे भोजन देने की प्रक्रिया को जारी रखना, जिसपर उसके जीवन का खींचना निर्भर था, सर्वोत्तम हित में नहीं था।"

जीवन की क्वालिटी : मैरी के संदर्भ में, न्या. लार्ड वार्ड ने प्रस्तुती (iv) और (v) को लिया था । क्या मैरी का जीवन, यदि उसे जुड़वा से अलग नहीं किया जाता है तो, "उसके लिए बेमानी हो जाएगा ?" शल्य चिकित्सा के पश्चात् जीवन की क्वालिटी को बी. निर्देश में 1981 में सुसंगत माना गया था 1981 (1) डबल्यू. एल. आर 1424 जिसमें न्या. लार्ड टैम्पलमैन तथा डन ने इसका उल्लेख किया था ।

लार्ड टैम्पलमैन का कथन था कि जिस कसौटी को अपनाया जाना चाहिए वह यह थी कि:

> "........क्या बालक का जीवन प्रत्यक्ष रुप से इतना दुखःपूर्ण हो जायेगा कि उससे बेहतर था कि बालक को मरने के लिये छोड़ दिया जाये ।"

उपरोक्त का उल्लेख करने के पश्चात् न्या. लार्ड वार्ड ने सी निर्देश (ए माइनर) (वार्डशिप : मेडीकल ट्रीटमेन्ट) (14.4.89) 1990 फेम 26 (देखिए अपील में सी निर्देश; 1989 (2) आल इंग्लैण्ड रिपोर्ट 782, ता. 20.4.89) में स्वयं के निर्णय को उद्घृत किया था । जहां उन्होंने उस प्रश्न का निम्नलिखित रुप में समाधान किया था, प्रथमतः कोई भी उपचार बालक की निराशाजनक स्थिति में परिवर्तन नहीं लाएगा, द्वितीयतः, जहाँ तक वह जीवन की क्वालिटी के बारे में अनुमान लगा सकते "जो कि एक कसौटी के रुप में स्वयं इतने प्रश्न पैदा कर देता है जितनों का वह उत्तर नहीं देता है ।" उनके निर्णय के अनुसार बालक के जीवन की क्वालिटी प्रत्यक्ष रुप से "भयावह और असहनीय हो जायेगी", बी निर्देश का अनुगमन किया गया ।

इसी प्रकार से जे. (ए माइनर) (वार्डशिप : मेडीकल ट्रीटमेन्ट) निर्देशः 1990 (3) आल इंग्लैण्ड रिपोर्ट 930 (सी.ए) में, अपीली न्यायालय ने शासकीय सालीसीटर के तर्क को खारिज कर दिया और कहा कि 'बालक के भविष्य को ध्यान में रखकर निर्णय लें तो उसका जीवन असहनीय होगा' ।

शिक्षाविदों तथा अन्य के विचारों का और 'जीवन का अधिकार' का उल्लेख करने के पश्चात् न्या. लार्ड वार्ड ने कहा कि वह इससे सहमत नहीं होंगे कि 'मैरी का जीवन उसके लिये बेमानी हो जाऐगा'। उसके जीवन का स्वयं अपना 'असीमित मूल्य था और गौरव था' ।

दूसरा प्रश्न यह है कि "क्या मेरी के जीवन को दीर्घता प्रदान करने से उसे गंभीर रूप से हानियाँ होंगी"? किन्तु प्रस्तावित उपचार से उसका जीवन दीर्घ नहीं हो जायेगा अतः ऐसा प्रश्न नहीं उठता है । <u>एअरडेल</u> में लार्ड गॉफ के अनुसार, जीवन को बनाए रखने वाले उपचार को रोक देने का निर्णय रोगी के सर्वोत्तम हित के सिद्धान्त से शासित होता है ।

वर्तमान मामले में, उपचार एक आक्रमण के समान है और मैरी की अनुमति आवश्यक है । मैरी कोई उपचार नहीं ले रही है और उपचार को रोकने का प्रश्न भी सामने नहीं है ।

अतः, न्या. लार्ड वार्ड के अनुसार प्रस्तावित शल्य चिकित्सा मैरी के हित में नहीं है । किन्तु यह निष्कर्ष न्या. लार्ड वार्ड के निर्णय का अंत नहीं था । उन्होंने कई और प्रश्न उठा दिये ।

दो बालक-माता-पिता की इच्छा कल्याण के सिद्धांत के अधीन रहते हुए सुसंगत है :

अब न्यायालय क्या करे? यदि ऑपरेशन जोडी के हित में है और मैरी के हित में नहीं है तो क्या उसकी अनुमति दी जा सकती है? न्या. लार्ड वार्ड ने इस संदर्भ में चिल्ड्रनस ऐक्ट, 1984 के उपबन्धों का तथा बिरमिंगम सिटी काउंसिल बनाम एच (ए माइनर) (1994) (2) ए. सी 212, का उल्लेख किया जहां वह माँ जिसने एक बालक को जन्म दिया स्वयं एक 'बालक' थी । यह निर्णय दिया गया कि न्यायालय को इस प्रश्न पर किसी एक बालक की अपेक्षा दूसरे बालक को अग्रता प्रदान करते हुए विचार नहीं करना चाहिये । तौल कर निर्णय लेना होगा और रोगी के माता-पिता की इच्छा इस स्थिति में सुसंगत हो जाती है । माता-पिता की इच्छा बालक के कल्याण के अधीन है । के. डी निर्देश (ए माइनर) (वाड : टर्मीनेशन ऑफ ऐक्सेस) । जे बनाम सी 1970 ए. सी 668, रेग बनाम गिनगौल 1893 (2) क्यू बी 232 का उल्लेख करने के पश्चात् जेड निर्देश (ए माइनर) (आइडेन्टीफिकेशन :रेस्ट्रीकशनस् ऑन पब्लिकेशन 1997 फैम 1 का उल्लेख किया जहाँ सर थोमस बिंघम एम. आर ने कहा था कि इस मामले में न्यायालय माता-पिता की इच्छा पर विचार कर सकती है किन्तु बालक का कल्याण किसमें है यह निर्णय न्यायालय को स्वयं लेना होगा ।

निर्णायक के निर्णय का (पुनरीक्षण) करने की न्यायलय की शक्ति :

न्या. लार्ड वार्ड के अनुसार दूसरा प्रश्न यह है कि न्यायालय की भूमिका निर्णायक की है या पुनरीक्षण-कर्त्ता की ? टी निर्देशः (वार्डशिपः मेडीकल ट्रीटमेन्ट) 1997 (1) आल. ई. आर 906 (सी. ए) में अपीली न्यायालय ने रोगी के यकृत के प्रत्यारोपण से माता-पिता के इंकार को स्वीकार किया : (न्या. लार्ड बटलर-स्लोस, वेट, रौक)। न्या. लार्ड वेट ने इस मामले में कथन किया कि "इस तुला के एक पलड़े में ऐसा स्पष्टमामला है जहां चिकित्सीय हस्तक्षेप पर माता-पिता की आपत्ती ऐसे विश्वास या सिद्धांत पर आधारित है जो विशेष रूप से मानवता के सर्वमान्य बाल स्वस्थ्य और कल्याण के सिद्धांत से मेल नहीं खाती और दूसरे पलड़े में ऐसे अति समस्यापूर्ण मामले हैं जहां माता-पिता और न्यायाधीश के मतों में अन्तर होने का वास्तविक स्कोप है। दोनों ही स्थितियों में, न्यायाधीश का यह कर्तव्य है कि वह संबंधित बालक के सर्वोच्च हित में न्यायालय की राय को अभिभावी होने दे किन्तु दूसरे पलड़े में आने वाले मामलों में, यह संभावना होनी चाहिए (यद्यपि निश्चितता नहीं) कि एक मत और दूसरे मत के बीच वास्तविक बहस के लिये जितना अधिक स्कोप होगा, न्यायालय उतनी ही अधिक तीव्रता से इस भावना से प्रभावित होगी कि, अन्ततः, बालक के सर्वोत्तम हित के अंतर्गत उसके जीवन की गुणवत्ता और दीर्घता को प्रभावित करने वाले कठिन निर्णयों की प्रत्याशा भी होगी और ऐसे निर्णय माता-पिता द्वारा लिए जाएंगे जिनके हाथों में बालक का मामला प्रकृति ने सौंपा है।"

इस प्रकार न्या. लार्ड वेट के मंतव्यों का उल्लेख करने के पश्चात् न्या. लार्ड वार्ड ने अंतिमरूप से दो प्रश्नों पर विचार किया - (1) माता-पिता की इच्छा को किस सीमा तक स्वीकार किया जाना चाहिए, (2) सामंजस्य कैसे किया जाए : न्या. लार्ड वार्ड अंत में निम्नलिखित निष्कर्ष पर पंहुचे :- (पृष्ठ 41)

"मुझे कोई संदेह नहीं है कि जोडी का पड़ला भरी है। जुड़वां बच्चों के सर्वोत्तम हित में उस बालक को जीवन का अवसर देना होगा जिसकी वास्तविक शारीरिक दशा उसके लिए लाभप्रद रूप से ऐसे अवसर को स्वीकार करने में समर्थ हे भले ही ऐसा उस जीवन का बलिदान देकर करना पड़े जिसे इतने अप्राकृतिक रूप से समर्थन मिल रहा है । मैं पूर्णरूप से संतुष्ट हूं कि मैरी और जोडी के बीच और जोडी तथा मैरी के बीच हितों की तुलना करने पर, सबसे कम दुविधाजनक निर्णय यह है कि आपरेशन करने की अनुमति प्रदान की जाए ।"

न्या. लार्ड वार्ड का कथन था कि उपरोक्त घोषणा स्वाकार की जा सकती थी परन्तु यह तब जब वह दाण्डिक विधि के अनुसार विधिपूर्ण हो ।

इसके बाद न्या. लार्ड वार्ड ने दाण्डिक विधि की चर्चा की और इसी मामले में न्या. लार्ड ब्रुक की इस पृथक् राय से सहमति प्रकट

की कि यदि जुड़वां बालकों को अलग-अलग कर दिया जाता है तो आपराधिक दृष्टि से डॉक्टर को दोषी नहीं ठहराया जा सकता । न्यायाधीश ने हत्या की परिभाषा, 'आशय' के अर्थ, 'दुगने प्रभाव के सिद्धान्त' (वह कार्य जिसका बुरा प्रभाव पड़ता है, किन्तु जो नैतिक रूप से अनुमत है यदि कार्य अपने आप में सही है), जीवन की समाप्ति, अवैधता, आवश्यकता का सिद्धान्त, विधि-नीति, कानूनी कर्त्तव्य; जीवन सिद्धान्त की पवित्रता को नष्ट करने संबंधी सिद्धांत, पर विचार किया और निर्णय दिया कि (पृष्ठ 41-46)

> "इन कारणों से, जिनकी मैंने संक्षेप में चर्चा की है, मैं इस निष्कर्ष पर पहूंचा हूँ कि वह ऑपरेशन जिसकी मैं अनुमति देना चाहूँगा, विधिपूर्ण रूप से किया जा सकता है ।"

तत्पश्चात् न्या. लार्ड वार्ड ने ह्यूमन राईट्स एक्ट, 1998 पर विचार किया (जो तब तक प्रभावी नहीं हुआ था) और पेटन बनाम यूनाइटेड किंगडम (1980) 3 इ. एच. आर. आर. 408 में दिये गये यूरोपीय आयोग के निर्णय पर भी विचार किया जिसमें अनुच्छेद-2 का अर्थ निकाला गया था और यह कथन किया कि प्रस्तावित कार्यवाही उक्त अधिनियम के भी अनुकूल थी ।

न्या. लार्ड वार्ड ने अंत में निम्नलिखित निष्कर्ष निकाला (पृष्ठ 47):

"मेरे निष्कर्ष के अनुसार अपील खारिज की जानी चाहिए। कहीं यह न समझ लिया जाये कि यह निर्णय किसी ऐसे वृहत् सिद्धांत के समर्थन के लिये नजीर बन जाये, उदाहरण के लिये, इस बात की नजीर कि यदि कोई डॉक्टर यदि अवधारित कर दे कि रोगी बच नहीं सकता है तो वह ऐसे रोगी की जान ले सकता है, उन असाधारण परिस्थितियों की पुनः चर्चा करना अत्यन्त महत्व का है जिनमें इन मामलों को नजीर माना जा सकता है । यह परिस्थितियां ऐसी हैं जिनमें वाई की मृत्यु कारित किये बिना एक्स के जीवन की रक्षा करना असंभव होगा; यह कि वाई के जीवन को बचा लेने का अनिवार्य परिणामस्वरूप थोड़े ही समय के भीतर एक्स की मृत्यु हो जाएगी; तथा एक्स में एक स्वतंत्र जीवन जीने की क्षमता है किन्तु वाई में स्वतंत्र रूप से जीवित रहने की क्षमता किन्हीं भी परिस्थितियों में नहीं है (जिनके अंतर्गत सभी प्रकार के चिकित्सीय हस्तक्षेप आते हैं) । जैसे कि मैंने निर्णय के आरंभ में कहा है, यह एक अत्यंत असाधारण मामला है । "

<u>न्या. लार्ड ब्रुक तथा वॉकर:</u>

न्या. लार्ड ब्रुक ने दाण्डिक विधि में आवश्यकता के सिद्धांत पर व्यापक निर्णय लिखा और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि न्याय के हित में शल्य चिकित्सा आवश्यक थी भले ही उसके परिणाम स्वरूप एन की मृत्यु हो जाये । रोबर्ट वॉकर ने इससे सहमति प्रकट की (पृष्ठ 74-88 तक) ।

(19) टी. निर्देश (वार्डशिप: मेडीकल ट्रीटमेन्ट) (सी ए.) 1997 (1) डबल्यू. एल. आर 906 (न्या. लार्ड बटलर-स्लोस, वेट तथा रौक) (24.10.96) (इस मामले का उल्लेख उपरोक्त जुड़वां बालकों के मामलों में किया गया है)

एक बालक की, जो जीवन को समाप्त करने वाले लीवर रोग से पीड़ित था, जन्म के तुरन्त पश्चात् शल्य चिकित्सा की गई । उस समय उसकी आयु साढ़े तीन सप्ताह थी । आपरेशन असफल रहा और बालक को अत्यन्त पीड़ा और कष्ट हुआ । चिकित्सकों की राय थी की यदि लीवर का प्रत्यारोपण नहीं किया गया तो बालक ढाई वर्ष से अधिक जीवित नहीं रहेगा । डॉक्टरों ने यह राय भी दी कि बालक लीवर प्रत्यारोपण के योग्य था यद्यपि यह प्रक्रिया कठिन थी पर उसके सफल होने की संभावना थी और यदि लीवर को प्रत्यारोपण किया जायेगा तो बालक कई वर्ष तक जीवित रह सकता था और उसका जीवन सामान्य रह सकता था । माता ने शल्य चिकित्सा के लिये सहमति से इन्कार कर दिया क्योंकि उसे लगा कि शल्य चिकित्सा कष्टपूर्ण होगी । स्थानीय प्राधिकारी ने शल्य चिकित्सा के लिये न्यायालय के समक्ष आवेदन किया और शल्य चिकित्सा के लिए अनुमति मांगी । न्यायाधीश ने निर्णय दिया कि माता-पिता की आपत्ति अनुचित थी और शल्य चिकित्सा करने का निर्देश दिया ।

माता द्वारा अपील करने पर, निर्णय पलट दिया गया कि जहां जीवन पर आघात पहुंचाने वाली शल्य चिकित्सा खराबी के साथ पैदा हुए बालक को दीर्घायु प्रदान कर सकती थी किन्तु माता-पिता द्वारा शल्य चिकित्सा के विरोध का औचित्य और बालक के कल्याण की बात इस स्थिति में सबसे महत्वपूर्ण आधार थे । क्योंकि बालक का कल्याण माता पर निर्भर है जिसे बालक की देखभाल करनी होगी । अतः माता का मत सुसंगत था और विचारण न्यायाधीश ने यह निर्णय लेने में भूल की थी कि माता की राय अनुचित थी । शल्य चिकित्सा के कारण और आपरेशन के बाद के उपचार के संबंध में अपने बालक के फायदों के बारे में माता की चिन्ता की सुसंगतता और उसके महत्व का आकलन करने में न्यायाधीश असफल रहा था और उसने लम्बे तथा अल्प अवधि के उपचार में असफलता के खतरे, अतिरिक्त प्रत्यारोपण की संभावना, जीवन की दीर्घता की संभावना और इन सब बातों का बालक पर प्रभाव जैसे तथ्यों पर ध्यान नहीं दिया था और डॉक्टरों में से एक डॉक्टर द्वारा व्यक्त की गई इस मजबूत धारणा पर विचार नहीं किया था कि आपरेशन के बाद की परेशानियों में और तत्पश्चात् माता को एक अहम भूमिका निभाने के मामले में माता के साथ जबरदस्ती नहीं की जानी चाहिए ।

(20) ए निर्देश (मेल स्टेरीलाइजेशन) : 2000 (1) एफ. एल. आर 549; (न्या. लार्ड बटलर-स्लोस तथा थोरपे)

न्या. लार्ड बटलर-स्लोस ने कथन किया कि 'सर्वोत्तम हित' के अंतर्गत 'चिकित्सीय, भावनात्मक और सभी अन्य कल्याण संबंधी प्रश्न' समाहित है ।

न्या. लार्ड थोरपे ने वह सिद्धांत अधिकथित किया जिसके आधार पर न्यायाधीश को रोगी के "सर्वोत्तम हित" के बारे में निर्णय लेना चाहिये। उनका कथन था कि -

"मेरे मस्तिष्क में इस बारे में कोई संदेह नहीं है कि सर्वोत्तम हित का मूल्यांकन कल्याण के विश्लेषण के समतुल्य है..........। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि किसी चैक लिस्ट या अन्य कानूनी निर्देश के अभाव में, प्रथम विचारण न्यायाधीश को, जिस पर सामर्थ्य विहीन रोगी के सर्वोत्तम हित के आकलन का उत्तरदायित्व है, एक तुलन पत्र तैयार करना चाहिये । इन तुलन पत्र में पहली प्रविष्टि वास्तविक लाभ के कारण या कारणों की होनी चाहिऐ । वर्तमान मामले में, एक उदाहरण त्रुटि रहित निरोध का अर्जन होगा । तुलन पत्र में दूसरी ओर न्या. को आवेदक को होने वाले प्रभावी नुकसानों को लिखना चाहिए । वर्तमान मामले में एक स्पष्ट उदाहरण जोखिम की आशंका और ऑपरेशन में अंतरनिहित कष्ट है । तत्पश्चात् न्यायाधीश को प्रत्येक मामले में संभावित लाभों और हानियों को दर्ज करना चाहिये और कितना लाभ या कितनी हानि हो सकती है उसके विस्तार के बारे में कुछ हिसाब लगाना चाहिए । यह सब करने के पश्चात् संभावित लाभों और उसके विपरीत संभावित हानियों के बीच संतुलन करने की बेहतर स्थिति में पहुंच सकता है । स्पष्ट है कि

तुलन पत्र में लाभ अपेक्षाकृत अधिक है तो न्यायाधीश यह निष्कर्ष निकालेगा कि आवेदन से दावा करने वाले का सर्वोत्तम हित सिद्ध होने की संभावना है ।

(21) <u>श्रीमती बी</u> बनाम <u>एन. एच. एस हास्पीटल ट्रस्टः</u> 2002 इ. डबल्यू. एच. सी 429 (डेम ऐलिजाबेथ बटलर-स्लोस (अध्यक्ष फेमिली कोर्ट) (दि. 22.3.2002)

श्रीमती बी जिनका जन्म 1965 में हुआ था, एक प्राक-स्नातक थी और सामाजिक कार्य में शिक्षक थीं और उन्होने मैनेजमेन्ट डिप्लोमा प्राप्त किया हुआ था । 26.8.99 को उन्हें गर्दन में रीढ़ के कोलम में रक्त स्राव हुआ । इसे रीढ़ की हड्डी में रक्त कणों में खराबी के कारण कैवेरनोमा घोषित किया गया । उन्होनें 4.9.1999 को जीवन्त वसीयत की जिसमें यह निर्देश किया कि यदि उनके जीवन को खतरा पैदा डालने वाली कोई स्थिति पैदा होती है या मानसिक विकार होता है तो उनका उपचार रोक दिया जाए । उपचार से उन्हें लाभ हुआ, उन्होने अपना कार्य करना आरंभ किया किन्तु 2001 में उन्हें दुर्बलता होने लगी । उन्हें रीढ़ की हड्डी में कैवेरनोमा हो गया जिसके परिणामस्वरूप वह टेटराप्लेजिक हो गई और गर्दन से लेकर नीचे तक पूरी तरह से लकवा मार गया । 16.2.2001 को उन्हें गहन चिकित्सा यूनिट में रखा गया और वेन्टीलेटर लगाया गया । वह स्वस्थ्य हुई और पुनः उनका स्वास्थ्य खराब हुआ तथा 28.3.2001 को गहन चिकित्सा यूनिट में रखा गया । किन्तु इस बार उन्होनें मांग की कि वेन्टीलेटर

को हटा दिया जाये । मनोचिकित्सकों में उनकी क्षमता के बारे में मतभेद था । उन्हें पुनः स्वास्थ्य लाभ हुआ और 15.8.2001 को उन्होंने एक और जीवंत वसीयत की और नवम्बर तक उपचार से इन्कार कर दिया । उन्होंने न्यायालय में इस घोषणा के लिये आवेदन किया कि उपचार उनके जीवन में व्यवधान था और अक्रामक था ।

न्या. बटलर-स्लोस ने '<u>स्वायत्तता</u>' के सिद्धांत का उल्लेख किया । इस सिद्धांत में किसी पूर्ण आयु के व्यक्ति के उपचार के लिये सहमति देने या न देने की सामर्थ्य को स्वीकार किया गया है । लार्ड रीड ने <u>एसु</u> बनाम <u>एम. सी. सी:</u> <u>डबल्यू</u> बनाम <u>डबल्यू</u> 1972 (ए. सी.) 25 (43) तथा लार्ड गॉफ द्वारा <u>एफ निर्देश (मेन्टल पेशेन्ट: स्टेरीलाइजेशन)</u> 1990 (2) ए. सी. 1 तथा लार्ड डोनल्डसन द्वारा <u>टी निर्देश</u> 1992 (4) आल. इ. आर 649 में इस सिद्धांत का कथन किया था । न्यायाधीश ने जे. ए रोबिन्स द्वारा <u>मैलेट</u> बनाम <u>शुलमैन</u> 67 डी. एल. आर (चतुर्थ) 321 (336), <u>एम. बी निर्देश</u> (मेडीकल ट्रीटमेन्ट) 1997 (2) एफ. एल. आर 426 में जे. ए रोबिन्स की गई टिप्पणियों का उल्लेख किया और यह कथन किया कि उक्त सिद्धांत संसार के अन्य भागों में विधिशास्त्र के समतुल्य है । <u>क्रूजन</u> बनाम <u>डायरेक्टर</u> (1990) 497 यू. एस 261 में अमेरीका की सुप्रीम कोर्ट ने कथन किया है कि "प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन पर सभी बंधनों या अन्य व्यक्तियों द्वारा हस्तक्षेप से मुक्त रखकर जीवन जीने और उसे नियंत्रित करने का जो अधिकार है उससे कोई अन्य अधिकार अधिक पवित्र और सावधानीपूर्वक सुरक्षित रखने

योग्य नहीं है । सिवाय तब जब विधि में कोई स्पष्ट तथा प्रश्नरहित अन्य उपबंध हो ।"

यह भी स्वीकार किया जा चुका है कि जीवन की पवित्रता का सिद्धांत (अर्थात् जीवन की सुरक्षा और दीर्घता) भी असंपूर्ण है तथा इस सिद्धांत की रक्षा करना राज्य की, जिसके अंतर्गत न्यायालिका भी है, चिंता का विषय है । इसके साथ ही किसी भी चिकित्सा अधिकारी को किसी रोगी की इच्छा के विरुद्ध उपचार करने के लिये विवश नहीं किया जा सकता भले ही मृत्यु आसन्न हो । जीवन की पवित्रता के इस सिद्धांत की लार्ड कीथ ने एअरडेल 1993 ए. सी 789 (859 में तथा लार्ड गॉफ ने (पृष्ठ 864) पर स्पष्ट किया था । बी. नानसी बनाम होटल ड्यू डे क्यूबेक: (1992) 86 डी. एल. आर (चतुर्थ) 385 भी देखिये जहां क्यूबेक की सुप्रीम कोर्ट के समक्ष एक मामले में एक 25 वर्षीय महिला ने, जिसने लाइलाज मानसिक विकार की स्थिति में वेन्टीलेशन से इन्कार कर दिया था और न्यायालय ने वेन्टीलेशन रोकने की उसकी प्रार्थना स्वीकार की थी ।

जहां तक मानसिक सामर्थ्य का प्रश्न है, यह परिकल्पना की जाती है कि प्रत्येक व्यक्ति में चिकित्सीय उपचार के बारे में निर्णय लेने की मानसिक सामर्थ्य होती है किन्तु इस परिकल्पना को गलत प्रमाणित किया जा सकता है (एम. बी निर्देश: 1997 (2) एफ. एल. आर 426 (436) । सामर्थ्य का आकलन एक कठिन बात है । न्या. स्टीफेन ने मैके बनाम बगटेट (1990) 801 617 (नेव सप. सीटी) 2 (पृष्ठ 5 पर)

31 वर्षीय कैनेथ के बारे में, जो 10 वर्ष की आयु से टेट्राप्लेजिक था, निम्नलिखित कथन किया है :-

> "मानवीय अनुभव का एक स्वरूप यह है कि हर जीवन का अंत मृत्यु में होगा । जैसे-जैसे जीवन वसंत, ग्रीष्म और शीत के मौसमों के साथ-साथ विकसित होता है वैसे-वैसे युवावस्था में यह अज्ञात भावना और इच्छा प्रकट और स्पष्ट होने लग जाती है कि एक न एक दिन व्यक्ति शांतीपूर्वक सोते-सोते चल देगा । तथापि, ऐसा प्रतीत होता है कि वैज्ञानिक जैसे-जैसे मानवीय जीवन की दीर्घता को बढ़ाने में तथा अमेरीका में वृद्धता के विकास में लगे हुए हैं वैसे-वैसे शांतीपूर्वक निद्रा में जीवन के समाप्त होने की संभावना घटती जा रही है । तथा अनेकानेक नागरिकों का, कैनेथ की तरह, शीतकाल प्रारंभ होने से पहले ही जीवन की गुणवत्ता से हाथ धोने का दुर्भाग्य विद्यमान्य है ।"

इस मामले में कैनेथ ने लकवा युक्त जीवन से, जिसे रैसपीरेटर से जीवन प्रदायी द्रव्यों के सहारे चलाया जा रहा था, मुक्ति के लिये प्रार्थना की थी ।

न्या. डेम बटलर-स्लोस ने तत्पश्चात् <u>बार्टलिंग</u> बनाम <u>सुपीरीयर कोर्ट ऑफ लॉस एंजिलिस कन्ट्री</u> (1984) 163 केल एप (तृतीय) 186 को उद्धृत किया जिसमें निर्णय दिया गया था कि उपचार को हटा देने के

बारे में रोगी की पूर्व सहमति उसकी सामर्थ्य के निर्धारण के लिये सुसंगत नहीं थी ।

> "यह तथ्य कि (रोगी) समय-समय पर अपना मत बदलता रहा है (अर्थात् वेन्टीलेटर पर असहनीय जीवन की अपेक्षा मृत्यु की चाह) क्योंकि इसका कारण तीव्र अधो मनःदशा है या कोई अन्य कारण है, (अस्पताल) और रोगी का उपचार करने वाले चिकित्सकों द्वारा इस परिणाम पर पहुंचने के लिये उचित नहीं है कि रोगी की निर्णय लेने की सामर्थ्य विधिक असामर्थ्य के बिन्दु तक नष्ट हो चुकी थी । (लेन बनाम कनड्रा; (1997) एन. ई (द्वितीय) 1232 1234)" ।

न्यायाधीश ने अपने समक्ष एक मामले में इसी प्रकार की सहमति, अनेक डॉक्टरों के चिकित्साय साक्ष्य की चर्चा करते हुए यह निष्कर्ष निकाला था कि श्रीमती 'बी' अपने उपचार के बारे में, जिनके अंतर्गत कृत्रिम श्वास प्रणाली को हटाना भी था, हर सुसंगत निर्णय लेने के लिये सक्षम थीं और इस मामले को सेन्ट ज्योर्ज हैल्थ केयर एन. एच. एस ट्रस्ट बनाम जे (1999)फेम 20 (63) से भिन्न बताने के पश्चात् रोगी द्वारा उपचार हटाने की प्रार्थना को मंजूर किया था । न्यायाधीश ने मानसिक सामर्थ्य के विषय में दस मार्ग निर्देश सिद्धांत बताये थे:

> " अपीली न्यायालय ने सेन्ट ज्योर्ज हैल्थ केयर एन. एच. एस ट्रस्ट बनाम जे (1999) फेम 26 में पृष्ठ 63 पर पहले ही मार्गनिर्देश पृष्ठ 758 आदि पर मार्गनिर्देशों में प्रदान कर दिया

है। तथापि वर्तमान मामले की परिस्थितियां उस मामले के तथ्यों से सर्वथा भिन्न हैं । अतः यदि मैं कुछ आधार भूत सिद्धांतों का पुनः वर्णन करूँ और वर्तमान मामले जैसी स्थिति यदि पुनः पैदा होती है तो उस दशा में कतिपय अतिरिक्त मार्गनिर्देश सिद्धांत प्रस्तुत करूँ तो यह सहायक होगा ।

(i) यह एक उपधारणा है कि प्रत्येक रोगी में इस बात का निर्णय लेने की मानसिक सामर्थ्य है कि वह उसे प्रदान किये जाने वाले चिकित्सीय या शल्य चिकित्सा उपचार के लिये सहमति दे या उससे इन्कार कर दे।

(ii) यदि प्रश्न मानसिक सामर्थ्य का नहीं है और यदि रोगी को सुसंगत जानकारी तथा उपलब्ध उपचारों का चुनाव करने के बारे में बता दिया गया है और रोगी उपचार लेने से इन्कार करने का निश्चय करता है तो डॉक्टरों को उस निर्णय का सम्मान करना होगा । ऐसे कोई भी कारण कि रोगी के सर्वोत्तम हित में उपचार के लिये सहमति देने का निर्णय लिया जाना चाहिये, असंगत हैं ।

(iii) यदि रोगी की मानसिक सामर्थ्य के बारे में चिन्ता या संदेह है तो अस्पताल या एन. एच. एस ट्रस्ट के अर्न्तगत डॉक्टर्स द्वारा अथवा अन्य सामान्य चिकित्सीय प्रक्रियाओं द्वारा शीघ्र से शीघ्र ऐसे संदेह का निवारण किया जाना चाहिये ।

(iv) मध्यावधि में, जब सामर्थ्य के प्रश्न को सुलझाया जा रहा हो, रोगी की देखभाल उसके सर्वोत्तम हित में करने की बावत् डॉक्टरों के निर्णय के अनुसार की जानी चाहिए ।

(v) यदि यह निर्णय लेने में कठिनाइयां हैं कि रोगी में पर्याप्त मानसिक सामर्थ्य है या नहीं, विशेष रूप से तब जब इन्कार के कारण रोगी को गंभीर परिणाम भुगतने पड़ सकते हैं, यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि जो लोग उक्त प्रश्न पर विचार कर रहे हैं उन्हें मानसिक सामर्थ्य के प्रश्न और रोगी द्वारा लिये गये निर्णय की प्रकृति के बारे में विभ्रम में नहीं रहना चाहिए भले ही परिणाम कितने ही गंभीर क्यों न हों । रोगी के मत में मूल्यों के बारे में अन्तर परिलक्षित हो सकता है किन्तु सक्षमता के अभाव के बारे में नहीं, तथा, सामर्थ्य का निर्धारण इस बात को पूर्ण रूप से ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए । डॉक्टर को रोगी के निर्णय की बाबत् ऐसी भावनात्मक प्रतिक्रिया या तीव्र असहमति को नहीं आने देना चाहिए जिसके कारण उन्हें इस बुनियादी प्रश्न का उत्तर देने में कि रोगी को निर्णय लेने की मानसिक सामर्थ्य है या नहीं, व्यवधान नहीं हो ।

(vi) ऐसे किसी विशेष मामले में जहां सक्षमता के बारे में मतैक्य नहीं है, यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि रोगी को अपनाई जाने वाली कार्यवाही के बारे में पूरी जानकारी दी जाती है और उसे इस प्रक्रिया का भाग बनाया जाता है । यदि किन्हीं बाहरी स्वतंत्र विशेषज्ञों की राय लेने के बारे में विचार किया जा रहा है तो डॉक्टर को इस बात की चर्चा रोगी से करनी चाहिए जिससे कि अस्पताल के बाहर के किसी डॉक्टर

की राय लेना, यदि संभव हो तो, मत भिन्नता को सुलझाने के लिये दोनों पक्षों की सहायता के उद्देश्य से संयुक्त आधार पर हो । अच्छे परिणाम की संभावना के लिये यह महत्वपूर्ण है कि बाहर की राय लेने की प्रक्रिया में रोगी को सम्मिलित किया जाये और उसे यह लगे कि उस प्रक्रिया में उसकी भी समान भागीदारी है ।

(vii) यदि अस्पताल किसी ऐसी उलझन में है जिसके बारे में डॉक्टर नहीं जानते कि उसे कैसे सुलझाया जाये तो उसे स्वीकार करना चाहिए और उसे प्राथमिकता देते हुए आगे कदम उठाऐ जाने चाहिए । जिन लोगों पर भार है उन्हें अनिश्चिय या संदेह की स्थिति से बचना चाहिए ।

(viii) यदि सक्षमता के बारे में मतैक्य नहीं है किन्तु डॉक्टर किन्हीं भी कारणों से रोगी की इच्छा को पूरा करने में असमर्थ हैं तो उनका कर्त्तव्य है कि वे अन्य डॉक्टरों की तलाश करें जो वैसा करे सकेगें ।

(ix) यदि अस्पताल से बाहर के चिकित्सा विशेषज्ञों से स्वतंत्र रूप से सहायता प्राप्त करने के लिये उठाये गये सभी कदम असफल हो जाते हैं तो एन. एच. एस हॉस्पीटल ट्रस्ट को हाई कोर्ट में आवेदन करने से या शासकीय सालीसीटर की राय लेने में परहेज नहीं करना चाहिए।

(x) उपचार करने वाले चिकित्सकों तथा अस्पताल को इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए कि गंभीर रूप से शारीरिक असमर्थता वाले रोगी को, जो मानसिक रूप से सक्षम है, वयैक्तिक स्वायतता का वही

अधिकार है और निर्णय लेने का भी वही अधिकार है जो मानसिक सामर्थ्य वाले किसी अन्य व्यक्ति को है ।

इस निर्णय को पढ़ने वाले सभी व्यक्तियों को इस निर्णय के प्रारंभ में प्रकाशन संबंधी निषेधाज्ञा के अनुपालन के महत्व को समझने की सावधानी रखनी चाहिए ।

(22) <u>सिमस</u> बनाम <u>एन. एच. एस ट्रस्ट 2002 ई. डब्लू. एच. सी 2734</u> (सभापति डेम ऐलिजाबेथ बटलर-स्लोस) (11.12.2002)

यह मामला दो भिन्न परिवारों के दो रोगियों से संबंधित था जिनमें से एक 18 वर्षीय बालक और एक 16 वर्षीय बालिका थी और वे क्रूज फेल्ट-जेकब नामक बीमारी के किसी प्रकार के रोग से पीड़ित थे । दोनों के माता-पिता किसी एक विशेष प्रकार का उपचार चाहते थे जिसका कभी कोई परीक्षण तब तक मानव प्राणियों पर नहीं हुआ था और रोगियों में से किसी में उसे समझने की मानसिक सामर्थ्य नहीं थी । दोनों रोगी पूर्ण रूप से असमर्थ दशा में पड़े हुए थे ।

न्यायाधीश महोदया ने अपने ही एक निर्णय में से <u>ए (मेल स्टेरीलाइजेशन) निर्देश</u> : 2001 (1) एफ. एल. आर 549 (555) में से निम्नलिखित उद्धृत किया :

"डॉक्टर का, जिसे अपेक्षित मानक के अनुरूप कार्य करना होता है, मेरी दृष्टि में, यह भी कर्त्तव्य है कि उसे मानसिक रूप से असमर्थ रोगी के सर्वोत्तम हित में कार्य करना चाहिए : एस (एडल्ट पेशेन्ट स्टेरीलाइजेशन) निर्देश : 2001 फेम 12 भी देखिए ।"

न्यायाधीश ने एफ (मेन्टल पेशेन्ट : स्टेरीलाइजेशन) निर्देश : 1990 (2) ए. सी 1 (77) में लार्ड गॉफ के मत को उद्धृत करते हुए कहा कि डॉक्टर को, तथा अन्य को भी

> " ठीक उसी प्रकार का निर्णय लेना चाहिये जो कोई न्यायालय या युक्ति-युक्त माता-पिता अपने बालक के संबंध में लेंगे तथापि उन्हें इस तथ्य का पूरा ध्यान रखना होगा कि रोगी कोई बालक नहीं है, और मैं इस बारे में भी संतुष्ट हूँ कि कानून भी वास्तव में यही अपेक्षा करता है । "

सर्वोत्तम हित का अर्थ यह नहीं है कि वह आवश्यक रूप से चिकित्सा के बारे में हो अपितु उसके अंदर भावनात्मक और अन्य सभी कल्याणकारी प्रश्न भी सम्मिलित है: (एम. बी निर्देश - 1997 (2) एफ. एल. आर 426) ।

इसके पश्चात विद्वान न्यायाधीश ने यह प्रश्न प्रस्तुत किया कि क्या यू. के. में चिकित्सकों की राय में पी. पी. एस की उच्च मात्रा के बारे में किसी उत्तरदायी निकाय का समर्थन प्राप्त है । बोलम परीक्षण, तथा सीडावे (1985) ए. सी 871 (893) को उद्धृत करने के पश्चात्

जिसके अनुसार उक्त उपचार के, यदि कोई हो, पक्ष में चिकित्सा व्यवसायियों के एक उत्तरदायित्व पूर्ण निकाय का मत था । न्यायाधीश महोदया ने जोखिमों और लाभों तथा सर्वोत्तम हितों का विश्लेषण किया । इस निष्कर्ष पर पहुंचने के पश्चात्, यह रोगियों के सर्वोत्तम हित में था तथा कोई अन्य वैकल्पिक उपचार उपलब्ध नहीं था और माता-पिता इस उपचार को चाहते थे तथा शल्य चिकित्सा से होने वाला कष्ट कुछ समय के लिये ही था, न्यायाधीश ने पी. पी. एस उपचार दिये जाने की सहमति प्रदान की और निर्णय दिया कि ऐसा करना विधिपूर्ण था ।

(23) <u>एस. जी (एडल्ट मेन्टल पेशेन्ट: एबोर्शन) निर्देश : 1991</u> (2) एफ. एल. आर 329 (सर स्टीफेन ब्राउन)

यह मामला एक 26 वर्षीय गर्भवती महिला का था जो कि मानसिक रूप से अत्यन्त असमर्थ थी । उसके चिकित्सक तथा परामर्शी गर्भरोग विज्ञानी ने गर्भपात की सिफारिश की थी । <u>एफ निर्देश</u> में हाउस ऑफ लार्डस के निर्णय के प्रकाश में रोगी के पिता ने इस निर्णय की मांग की क्या गर्भपात करने से पूर्व न्यायालय की औपचारिक घोषणा अपेक्षित थी । एबोर्शन एक्ट 1967 गर्भपात की अनुमति देता था यदि दो चिकित्सा व्यवसायी इस आशय का प्रमाण-पत्र दें कि - (क) गर्भ बने रहने से महिला के जीवन को जोखिम हो सकती थी या उसके शारीरिक या मानसिक स्वास्थ्य को क्षति हो सकती थी या उसके किसी विद्यमान बालक को जोखिम हो सकती थी जो कि गर्भपात की

जोखिम से कहीं बड़ी थी, या (ख) इस बात की बहुत बड़ी जोखिम थी कि यदि बालक पैदा होता है तो वह या तो शारीरिक या मानसिक रूप से असामान्यता से ग्रस्त होगा जैसे कि वह गंभीर रूप से विकलांग हो सकता था ।

प्रश्न यह है कि क्या किसी मानसिक रूप से असमर्थ महिला की दशा में न्यायालय की घोषणा आवश्यक है ।

स्टीफेन ब्राउन पी. ने निर्णय दिया कि गर्भपात अधिनियम से पूर्णतया विनियमित था । क्योंकि अधिनियम में 'ऐसा उपचार करने वाले डॉक्टर के लिये पूर्ण तथा पर्याप्त रक्षोपायों' का उपबंध था (पृष्ठ 331)। न्यायाधीश ने निर्णय दिया कि गर्भपात से पूर्व उच्च न्यायालय का विशेष अनुमोदन प्राप्त करना आवश्यक नहीं था। परन्तु यह तब जब एबोंशन एक्ट की धारा (1) में दी गई तीनों शर्तो का अनुपालन किया गया हो । (न्या. स्टीफेन ब्राउन ने यही बात जी. एफ (मेडीकल ट्रीटमेन्ट) निर्देश 1992 (1) एफ. एल. आर 293) में कही थी । तथापि उन्होंने यह भी कहा था कि यह विधि की एक विकासशील शाखा थी और विधि आयोग अथवा ब्रिटिश मेडीकल एसोसियेशन की मेडीकल इथिक्स कमेटी इस विषय पर विचार कर सकती थी ।

(24) एस (एडल्ट पेशेन्ट: स्टेरीलाइजेशन) निर्देश : 2001 फेम-15 (सी. ए)

इस मामले में डेम ऐलिजाबेथ बटलर-स्लोस ने कहा था कि जी. एफ. निर्देश (1992) (1) एफ. एल. आर 293 में स्टीफेन ब्राउन ने जो कसौटी स्वीकार की थी उसका सावधानीपूर्वक निर्वचन किया जाना चाहिए और तब उसे लागू किया जाना चाहिए । लार्ड जस्टिस थोरपे ने अपने पृथक् निर्णय में कहा था कि यदि सीमा रेखा के निकट का कोई मामला हो तो पक्षकार न्यायालय के समक्ष जा सकते थे ।

(25) एस. एस (एन ऐडल्ट: मेडीकल ट्रीटमेन्ट) निर्देश: 2002 (1) एफ. एल. एल 73: (न्या. वाल)

यह मामला भी गर्भपात से संबंधित था । रोगी का उपचार मानसिक रोगों के अस्पताल में चल रहा था ।

न्या. वाल ने निर्णय दिया कि मानसिक रोगों के अस्पतालों मेंगर्भवती महिलाओं की समस्यायें नई नहीं है । ऐसी परिस्थितियों में गर्भपात का प्रश्न प्रायः उठेगा । न्यायाधीश का कथन था कि ऐसे गर्भों के संभावित पात की समस्या को हल करने के लिए प्रत्येक अस्पताल में नियम (प्रोटोकॉल) होना चाहिए और वे नियम वैसे होने चाहिए कि समय रहते ऐसे प्रश्न पर विचार किया जा सके जिससे जहां भी व्यवहार्य हो, और रोगी के हित में, वहां शीघ्र से शीघ्र गर्भपात किया जा सके । इसके अतिरिक्त, ऐसे नियमों में सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि रोगी को, प्रारंभिक अवस्था में ही, शासकीय सालीसीटर की या सालीसीटर की जैसा कि इस मामले में है, जो

रोगी का प्रतिनिधित्व मेन्टल हेल्थ रिव्यू ट्रिबुनल के समक्ष कर चुका है, स्वतंत्र कानूनी राय प्राप्त करने के लिये निर्दिष्ट किया जाये ।

(26) एस (हॉसपीटल पेशेन्ट: कोर्ट ज्यूरिसडिक्शन) निर्देश : (1.1.1986)

इस मामले में सर थोमस बिंघम एम. आर ने (पृष्ठ 18 पर) निम्नलिखित कथन किया था :

"मतों में भिन्नता के मामलों में और महत्वपूर्ण तथा उलटे ना जा सकने वाले मामलों में, न्यायालयों ने ऐसे तात्विक प्रश्न को न्यायालय द्वारा विचार योग्य माना है जो इस बात से संबंधित हो कि रोगी के सर्वोत्तम हित में क्या अपेक्षित है या न्यायोचित है । ऐसे निर्णय लेते समय न्यायालयों ने इस बात की वांछनीयता को स्वीकार किया है कि प्रस्तावित कार्यवाही के कारण जिन लोगों पर आपराधिक अथवा सिविल दायित्व आ सकता है उन्हें पूरी जानकारी दी जाये ; न्यायालयों ने इस कर्तव्य को भी स्वीकार किया है कि उन्हें कदाचार, दुरुपयोग और अनुचित कार्यवाही के संबंध में रक्षोपाय करने चाहिए और यह भी स्वीकार किया है कि किसी निष्पक्ष, स्वतंत्र ट्रिब्यूनल द्वारा निर्णय लेना भी अंतिमतः वांछनीय है ।"

(27) एन. एच. एस ट्रस्ट बनाम डी: 2003 इ. डबल्यू. एच. सी 2793 (न्या. कॉलरिज)(गर्भ संबंधी मामला)

प्रतिवादी एक युवा वयस्क महिला थी जो गंभीर सीजोफ्रेनिया से पीड़ित थी । उसकी आयु 18 वर्ष थी और वह गर्भवती थी । वह निर्णय लेने के समर्थ थी । उसके डॉक्टरों ने गर्भपात की सलाह दी । वादी अस्पताल द्वारा किये गये आवेदन को स्वीकार करते हुए गर्भपात की अनुमति प्रदान की गई । जैसा कि एबोर्शन एक्ट 1968 के अंतर्गत प्रक्रिया थी, अर्थात, दो डाक्टरों के प्रमाण पत्र चाहिए थे और अधिनियम की धारा 1 में दी गई शर्तों को भी पूरा करना था । घोषणा की मंजूरी दी गई । (2002 इ. डबलयू. एच. सी) (फ्रेम 31-84 का हवाला दिया गया) ।

तथापि यह कथन किया गया कि ह्यूमेन राइट्स एक्ट, 1998 के लागू हो जाने के पश्चात् ऐसे प्रश्न उठे थे कि मानसिक रूप से अक्षम रोगियों को एबोर्शन, एक्ट 1967 की धारा-1 लागू की जा सकती थी या नहीं और क्या अन्य प्रक्रियायें भी आवश्यक थीं ।

न्या. कॉलरिज ने <u>एस. जी निर्देश</u> <u>(ऐडल्ट मेन्टल पेशेन्टः एबोर्शन)</u>; 1991 (2) एफ. एल. आर 329 में सर स्टीफेन ब्राउन के निर्णय का उल्लेख किया (जिसका उल्लेख पहले भी किया जा चुका है) और यह कथन किया है कि एबोर्शन एक्ट 1968 के अंतर्गत दो डॉक्टरों की राय लेने की प्रक्रिया किसी गर्भवती महिला की दशा में भी जिसमें मानसिक समर्थता न हो, पर्याप्त थी । न्यायाधीशें ने डॉक्टर के निर्णयों को स्वीकार करते समय ध्यान में रखे जानी वाली चेतावनी का भी उल्लेख किया जिसका कथन अपीली न्यायालय ने एस (एडल्ट पेशेन्ट;

स्टेरीलाइजेशन) निर्देश: 2001 फेम-15) सी. ए में किया है और उक्त अधिनियम के अंतर्गत उठने वाले सामान्य मामलों, जहां महिला को निर्णय लेने की सामर्थ्य है तथा ऐसे अन्य मामलों के बीच की स्थिति को स्पष्ट किया जहां महिला सक्षम न हो । न्या. कालरिज ने निम्नलिखित कथन किया :

> "एबोर्शन एक्ट, 1968 में जिन सुरक्षा उपायों की व्यवस्था की गई है वे उन सक्षम वयस्कों के लिये जो गर्भपात के बारे में स्वयं अपना निर्णय लेते हैं, विस्तृत तथा पर्याप्त सुरक्षा का उपबंध करते हैं । तथापि मानसिक असमर्थता से ग्रस्त महिला को सभी बिन्दुओं को तौलकर स्वयं अपना निर्णय लेने का अवसर नहीं होता है । यदि एस निर्देश में दिये गये मार्ग निर्देशों को पूरी तरह से लागू किया जाये तो मानसिक रूप से असमर्थ महिलाओं के लिये, परिस्थितियां कैसी भी क्यों न हो, उनके चिकित्सा व्यवसायियों के लिये ऐसे सभी निर्णय लेने का उत्तरदायित्व प्राप्त हो जायेगा । यह सभी परिस्थितियों में सही नहीं हो सकता ।
>
> ह्यूमेन राइट्स एक्ट, 1998 (मानवाधिकार अधिनियम, 1998) के आने से, ऐसे रोगियों के कल्याण की सकारात्मक सुरक्षा करने का न्यायालय का उतरदायित्व बढ़ गया है, और विशेष रूप से यूरोपीयन कन्वेन्शन ऑन ह्यूमेन राइटस के अनुच्छेद-8(1) के अंतर्गत रोगी की प्राइवेट और पारिवारिक

जीवन के लिये आदर के रोगी के अधिकार की रक्षा की बावत् ।"

फिर भी, गर्भ के मामलों में, "जहां सामर्थ्य और सर्वोत्तम हित की बातें स्पष्ट हैं और संदेह से परे हैं वहां कोर्ट को आवेदन करना आवश्यक नहीं है ।"

किन्तु, "जहां सक्षमता या सर्वोत्तम हित के बारे में कोई संदेह है वहां न्यायालय के समक्ष आवेदन किया जाना चाहिये । विशेष रूप से और उक्त सिद्धांत की व्यापकता को सीमित किये बिना, <u>निम्नलिखित परिस्थितियों में सामान्यतया आवेदन किया जा सकेगा:-</u>

(i) "जहां सामर्थ्य के बारे में विवाद है या जहां इस बात की वास्तव में संभावना है कि रोगी उपचार का पालन करते हुए गर्भावस्था की अवधि के भीतर या उसके कुछ समय पश्चात् पुनः सामर्थ्य प्राप्त कर लेगा;

(ii) जहां रोगी के सर्वोत्तम हित के बारे में चिकित्सा व्यवसायियों में मतैक्य का अभाव है ;

(iii) जहां एबोर्शन एक्ट, 1968 की धारा 1 के अंतर्गत प्रक्रियाओं का अनुपालन नहीं किया गया है,(अर्थात् जहां दो चिकित्सक व्यवसायियों ने प्रमाण पत्र नहीं दिया है);

(iv) जहां रोगी, उसके निकट परिवार के सदस्यों या गर्भस्थ के पिता ने गर्भपात पर आपत्ति की है या उसके विपरीत मत व्यक्त किये हैं ; अथवा

(v) जहां कोई अन्य असाधारण परिस्थितियां हैं (जिनके अंतर्गत यह परिस्थिति भी है कि गर्भपात से रोगी को पुनः बालक होने का अंतिम अवसर होगा) ।"

यदि उपरोक्त स्थितियों में से किसी भी एक के आस पास किसी स्थिति में कोई मामला फाइल किया जाता है तो वह संदेहों के निवारण के लिये न्यायालय को निर्दिष्ट किया जाना चाहिए जैसा कि न्या. लार्ड थोरपे ने एस (एडल्ट पेशेन्ट स्टेरीलाइजेशन) निर्देश : 2001 फेम -15 में उल्लेख किया है । इसके अतिरिक्त जैसा कि न्या. वाल ने एस. एस निर्देश : 2002 (1) एफ. एल. आर 73 में कथन किया है, समय रहते आवश्यक आवेदन करने के महत्व को दोहराने की आवश्यकता नहीं है । यह बाध्यकारी है कि चिकित्सा व्यवसाय यह सुनिश्चित करे कि इन प्रश्नों का समय के अनुकूल समाधान करने के लिये पर्याप्त नियम (प्रोटोकाल) अपनाये जायें ।

(28) एन. एच. एस हॉसपीटल ट्रस्ट बनाम एस तथा अन्य : (2003) इ. डबलयू. एच. सी 365 (फेम) (सभापति डेम ऐलिजाबेथ बटलर-स्लोस)(6 मार्च, 2003) :

18 वर्षीय एस, का जन्म जैनेटिक दशा में, हृदय रोग फेशियल सिन्ड्रोम सहित हुआ था, और वह 'ग्लोबल डेवलपमेन्ट डिले' और 'बाइलेटरल रेनल डिस्प्लाजिया' से ग्रस्त था । वह मई 2000 से हेमो डाइलाइसिस पर था । उसे गंभीर शिक्षण अयोग्यता थी और उसे जो चिकित्सीय उपचार दिया जा रहा था उसके बारे में उसकी सीमित समझ के कारण समस्यायें उत्पन्न हो गई थीं । उसे ऑस्टिरिक रोग बताया गया। वह मिर्गी से पीड़ित था और रक्त जमाव होता रहता था तथा उसमें रोग निरोध की भी सामान्य कमी थी । उसकी मानसिक सामर्थ्य 5 या 6 वर्ष के बालक जैसी आंकी गई थी । उसे अपनी चिकित्सा उपचार के बारे में निर्णय लेने की सामर्थ्य नहीं थी।

अस्पताल ने न्यायालय के समक्ष इस घोषणा के लिये आवेदन किया कि अस्पताल को किडनी ट्रांसप्लांट करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि ऐसा करना एस के सर्वोत्तम हित में नहीं होगा और एस को पेरीटोनियल डाइलाइसिस पर भी नहीं रखा जाना चाहिए । केवल कुछ समय तक हेमोडाइलाइसिस चालू रखी जाये और यदि उसे आगे चालू न रखा जाये तो किसी और प्रकार की डाइलाइसिस का, सिवाय पेलियेटिव उपचार के, उपयोग नहीं किया जाना चाहिऐ । माता-पिता ने अस्पताल के तर्क का विरोध किया और चाहा की किडनी ट्रांसप्लांटेशन किया जाये । उसकी माता ने अपनी किडनी दान करने का प्रस्ताव रखा । शासकीय सालीसीटर ने, जो एस का प्रतिनिधित्व कर रहा था, यह मत व्यक्त किया कि सभी प्रकार की डाइलाइसिस पर विचार

किया जाना चाहिए और किडनी ट्रांसप्लांट करने की उपयुक्तता के बारे में उसने अपना मत सुरक्षित रखा ।

तथापि तदनन्तर, सभी इस बात पर सहमत हुए कि हेमोडाइलाइसिस का प्रयोग किया जाये और यदि आगे उसे न चलाया जा सके तो पेरीटोनियल डाइलाइसिस का प्रयोग किया जाये और किडनी ट्रांसप्लांट करना रोगी के सर्वोत्तम हित में नहीं था । फिर भी दो बिन्दुओं पर विवाद बना रहा :

(1) इस बारे में विभिन्न राय थीं कि एस के लिये किडनी ट्रांसप्लांट करना क्या कभी अथवा किन परिस्थितियों में उपयुक्त होगा ।

(2) एस को ए वी फिस्टूला द्वारा विभिन्न प्रकार की हेमोडाइलाइसिस देने की संभावना के संबंध में गहरी मत विभिन्नता थी ।

चिकित्सीय साक्ष्य का, तथा निम्नलिखित विधिक सिद्धांतों का विश्लेषण करने के पश्चात् न्यायालय ने प्रश्नों पर निर्णय लिया :

(1) 'सर्वोत्तम हित : जीवन का महत्व: जिसका उल्लेख बी निर्देश (ए माइनर : वार्डशिप : मेडीकल ट्रीटमेन्ट) 1981 (1) डबल्यू. एल. आर 1421 (सी. ए) में किया गया है तथा लार्ड गॉफ ने एअरडेल : 1993 ए.सी 789 में किया है,

(2) चिकित्सा व्यवसायियों का कर्त्तव्य, जिसका उल्लेख लार्ड गॉफ ने एफ निर्देश (मेन्टल पेशेन्ट : स्टेरीलाइजेशन) : 1990 (2) ए.सी 1 में; सिमस बनाम सिमस तथा पी.ए बनाम जे. ए : 2002 (इ. डबल्यू. एच. सी 2734) में किया है,

(3) 'सर्वोत्तम हित : न्यायालय का कर्त्तव्य' जैसा कि ए (मेल स्टेरीलाइजेशन) निर्देश : (2000) एफ.एल.आर 549 में स्पष्ट किया गया है ।

न्यायालय इन प्रश्नों पर निर्णय लेने के लिये अग्रसर हुई ।

न्यायाधीश बटलर-स्लोस ने निम्नलिखित का उल्लेख किया जो न्या. लार्ड थोरपे ने ए (मेल स्टेरीलाइजेशन) निर्देश 2000 (1)एफ.एल.आर 549 में (पृष्ठ 560 पर) कहा है ;

"मेरे मस्तिष्क में तनिक भी संदेह नहीं है कि सर्वोत्तम हित का मूल्यांकन कल्याण संबंधी विश्लेषण के समतुल्य है ....।
जब तक कोई मार्ग निर्देश या अन्य कानूनी निर्देश अधिनियमित नहीं कर दिये जाते मुझे यह प्रतीत होता है कि प्रथम न्यायालय पर सामर्थ्य विहीन दावेदार के सर्वोत्तम हित का मूल्यांकन करने का उत्तरदायित्व है और उसे एक तुलन पत्र तैयार करना चाहिये उसमें पहली प्रविष्टि वास्तविक लाभ के किसी कारण या कारणों की होनी चाहिये । वर्तमान मामले में, उदाहरण के लिये, त्रुटिविहीन निरोधक का अर्जन होगा ।

तब दूसरे पृष्ठ पर न्यायाधीश को आवेदक को जो कोई प्रतिरोधी नुकसान हो सकते हैं उन्हें लिखना चाहिए । इस मामले में इसका एक स्पष्ट उदाहरण शल्य चिकित्सा से जोखिम की आशंका और उसमें अंतरनिहित कष्ट आयेंगे । तब न्यायाधीश प्रत्येक पृष्ठ पर प्रत्येक स्थिति में संभावित लाभों और हानियां को दर्ज करना चाहिये और जिस विस्तार तक लाभ और हानि होने की संभावना है उसका कुछ अनुमान लगाना चाहिए । इस कवायद के अंत में न्यायाधीश निश्चित और संभावित लाभों और निश्चित और संभावित हानियों के बीच तुलना करने में भली भांति समर्थ हो सकेगा । स्पष्ट है कि यदि तुलना में लाभों का पलड़ा भारी है तो न्यायाधीश यह निष्कर्ष निकालेगा कि उसके समक्ष प्रस्तुत आवेदन से दावेदार के सर्वोत्तम हित में वृद्धि होने की संभावाना है ।"

सभापति बटलर-स्लोस ने कहा कि वह यह जोड़ना चाहेंगी कि 'जीवन का आनंद लेना' एक ऐसा अतिरिक्त तथ्य है जिसे ध्यान में लिया जाना चाहिये । उपचार को सहन करने की एस की योग्यता पर विचार करने के पश्चात्, उपचार के चार विकल्पों पर, अर्थात्, केन्द्रीय कैथिटर के माध्यम से हेमोडाइलाइसिस, पेरिटोरियल डाइलाइसिस, भुजा में ए.वी फिस्टयूला और भविष्य में संभावित किडनी ट्रांसप्लांटेशन -(पृथक शीर्षकों के अंतर्गत)- विद्वान न्यायाधीश निम्नलिखित मत व्यक्त किया :

"(1) एस अपनी भविष्यत चिकित्सीय देख-रेख के बारे में अपना निर्णय नहीं ले सकता क्योंकि उसमें ऐसा करने की सामर्थ्य नहीं है;

(2) मेरा यह समाधान हो गया है कि यह उसके सर्वोत्तम हित में है कि वर्तमान हेमोडाइलाइसिस को जारी रखा जाये ;

(3) मैं समझता हूं कि ए.वी. फिस्टयूला की संभावना को विचार में रखा जाना चहिये किन्तु यह तब जब रोगी वयस्क जीवन प्रणाली अपना चुका हो ;

(4) रोगी की देखभाल करने वाले चिकित्सा दल को जब यह लगे कि हेमोडाइलाइसिस प्रभावकारी नहीं रही है तब पेरिटोनियल डाइलाइसिस का उपचार प्रारंभ करना चाहिए और मैं ऐसे चिकित्सीय साक्ष्य से सहमत हूं ;

(5) चिकित्सा से परे आधारों पर किडनी ट्रांसप्लांट करने की संभावना को छोड़ना नहीं चाहिऐ ।"

(29) <u>एच. इ</u> बनाम <u>हास्पीटल एन. एच एस ट्रस्ट तथा अन्य :</u> (2003) इ. डबलयू. एच. सी 1017 (न्या. मुन्बई) (7 मई 2003)

यह मामला महत्वपूर्ण है और "अग्रिम निर्देश" की वैधता के बारे में है। जब न्या. मुन्बई अत्यावश्यक आवेदनों की सुनवाई कर रहे थे, रोगी के पिता ने शुक्रवार (2 मई, 2003) के दिन अपनी पुत्री के जीवन को बचाने के लिये दोपहर के समय एक आवेदन किया । यह स्पष्ट था कि मामले में शीघ्रता आवश्यक थी । शासकीय सालीसीटर ने तेजी से कार्यवाही की और संक्षिप्त नोटिस पर ही न्यायालय पहुंच गये ।

न्यायालय ने अग्रिम निर्देशों के होते हुए भी रक्त चढ़ाने की अनुमति का आदेश दिया और न्या. मुम्बई ने पांच दिन बाद कारण दिये ।

इस मामले में, दावेदार, पिता (एच. ई) और उसका परिवार मुसलमान थे तथा दूसरा प्रतिवादी (ए.ई) उसकी 24 वर्षीय पुत्री थी जिसकी परवरिश मुसलमान के रूप में की गई थी । किन्तु जब उसके माता-पिता पृथक् हुए वह और उसका भाई अपनी माँ के पास चले गए । माँ जीहोवा विटनेस बन गई और उसकी संतान ने भी यही किया । ए. ई का पालन तब जीहोवा विटनेस की तरह हुआ । ए. ई कन्जेनीटल हृदय की समस्या से पीड़ित थी जिसमें शल्य चिकित्सा अपेक्षित थी और वह भी तब जब वह बालक थी और वह जानती थी कि जब वह युवा हो जायेगी तब पुनः शल्य चिकित्सा आवश्यक होगी । 13 फरवरी 2001 को उसने एक छपे हुऐ अग्रिम चिकित्सा निर्देश / रिलीज पर हस्ताक्षर किये और उसके चर्च के दो मिनिस्टरों ने उस पर हस्ताक्षर किए गवाह के रूप में किन्तु निर्देश में अन्य के साथ-साथ रक्त चढ़ाना अपवर्जित कर दिया गया । नवम्बर 2002 में डाक्टरों को लगा कि उसे रक्त के उत्पादन को गतिशील करने के लिये ऐरीथ्रोप्रोटीन का प्रयोग करते हुए शल्य चिकित्सा करनी पड़ेगी। क्योंकि वह जीहोवा विटनेस थी किन्तु 20 नवम्बर 2003 को ए. ई. अकस्मात बीमार हो गई और डाक्टरों को लगा कि शल्य चिकित्सा आवश्यक थी और उसके हाथों को अंशतः काटना आवश्यक था और यह बिन रक्त चढ़ाये संभव नहीं था । उसकी माँ और भाई ने, यह

बताये जाने के बाद भी कि ए. ई. की मृत्यु की जोखिम थी, आपत्ति की ।

ए. ई. को 20 अप्रैल 2003 से 2 मई तक बेहोशी में रखा गया और उस समय पिता ने वर्तमान आवेदन प्रस्तुत किया क्योंकि ए. ई. की हालत अत्यन्त नाज़ुक हो गई थी । पिता ने ऐसे सात कारण लिखित में गिनाये जिनके आधार पर ए. ई. के अग्रिम निर्देशों का पालन नहीं किया जाना चाहिये था ।

न्या. मुम्बई ने मामले की सुनवाई 2 मई 2003 को दोपहर 2:20 बजे की और उन्होंने पिता का वक्तव्य और डाक्टर द्वारा फैक्स किया गया वक्तव्य पढ़ा । शासकीय सॉलीसीटर ए. ई. के बाद मित्र के रूप में कार्य करने के लिये सहमत हो गये क्योंकि ए. ई. होश में नहीं थी । न्यायाधीश महोदय ने केनेडी तथा ग्रब की सलाह ली ; प्रिन्सीपिल्स ऑफ मेडिकल लॉ (1998 प्रकाशन) (पैरा 3009 तथा 4.105 - 4.114) तथा टी (एडल्ट : रिफ्यूजल ऑफ ट्रीटमेन्ट) निर्देश 1993 फेम 95 तथा ए के (मेडिकल ट्रीटमेन्ट : कंसेन्ट) निर्देश 2001 (1) एफ. एल. आर 129 का संदर्भ ग्रहण किया और उसके तुरंत पश्चात् यह घोषणा मंजूर की कि अग्रिम निर्देशों के होते हुए भी रक्त चढ़ाना विधिपूर्ण होगा ।

7 मई 2003 को न्यायाधीश ने कारण दर्शाये । ये अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

न्या. मुन्बई ने यह कहते हुए आरंभ किया कि तीन सिद्धांत अब पूर्णतः सुनिश्चित हो चुके हैं और उनसे संबंधित मुकदमों के हवाला देने की आवश्यकता नहीं है ।

(1) हर संक्षम वयस्क रोगी को किसी भी चिकित्सीय उपचार या प्रक्रिया के लिये सहमति देने से इन्कार करने का पूर्ण अधिकार है चाहे उसके जो कारण हों, चाहे वे तर्कपूर्ण या तर्करहित हो या, ज्ञात या अविद्यमान ही क्यों न हो, और भले ही इन्कार का परिणाम निश्चित रूप से मृत्यु ही क्यों न हो । उन्होंने प्रो. एनड्रियु ग्रब की इस टिप्पणी से सहमति व्यक्त की कि 'इंग्लिश विधि इससे और अधिक स्पष्ट नहीं हो सकती थी । हर सक्षम वयस्क रोगी को, उचित रूप से जानकारी मिलने के पश्चात, किसी भी या सभी चिकित्सीय उपचारों या देखरेख से इन्कार करने का पुख्ता अधिकार है' ।
(2) इसी से मेल खाती दूसरी बात यह है कि किसी सक्षम वयस्क रोगी द्वारा सहमति देने से पूर्व इन्कार (जिसे अग्रिम निर्देश या जीवंत वसीयत कहा जाता है) बाध्यकर और प्रभावी होता है भले ही रोगी तत्पश्चात् अक्षम हो जाये और अक्षम बना रहे ।
(3) इस बात की परिकल्पना की जाती है कि वयस्क में सामर्थ्य है अतः जो लोग परिकल्पना का खण्डन करना चाहते हैं और कहते हैं कि सामर्थ्य की कमी है और सबूत का भार उन पर आ जाता है।"

विद्वान न्यायाधीश ने सबूत के भार का उल्लेख निम्नलिखित रूप में किया ;

सबूत के भार और मानक संबंधी विधि के बारे में न्यायाधीश ने निम्नलिखित निर्णय दिया ;

(i) परिकल्पना सामर्थ्य के पक्ष में है तथा असमर्थता को सिद्ध करने का भार उन पर है जो सामर्थ्य के बारे में विवाद करते हैं; जहां अग्रिम निर्देश हो वहां एक और भार है । यह भार उन पर है जो अग्रिम निर्देश का आशय उसकी विद्यमानता, उसकी निरन्तर वैधता और लागू किये जाने को सिद्ध करने के लिये लेते हैं । यदि कोई संदेह हो तो संदेह को जीवन की सुरक्षा के पक्ष में सुलझाना होगा ।

(ii) जहां तक अग्रिम निर्देश के सबूत के मानक का प्रश्न है, वह स्पष्ट और संतोषप्रद होना चाहिये और उसका आधार संभावनाओं की तुला पर होना चाहिये जैसाकिं सिविल मामलों में होता है । प्रश्नगत विषय जितना अधिक गंभीर हो, साक्ष्य उतना ही मजबूत और अधिक सुसंगत होना चाहिए । जब जीवन दांव पर हो तब साक्ष्य का विश्लेषण विशेष परवाह से किया जाना चाहिए । (एच निर्देश : माइनरस) (सैक्सुयल ऐबयुज : स्टेन्डर्ड ऑफ प्रूफ) 1996 ए. सी. 563 तथा न्या. थोमस का री-डेलो-विल ट्रस्ट में उल्लिखित अनगोड का सिद्धांत; 1964 (1) डबलयू. एल. आर 451 (455) । अग्रिम निर्देश की

निरन्तर वैधता तथा प्रभाव को स्पष्ट, संतोषप्रद और पूर्णरूपेण विश्वसनीय साक्ष्य द्वारा स्थापित किया जाना चाहिऐ ।

(iii) तत्समय रोगी की परिस्थितियों में ज्ञात परिवर्तनों और व्यतीत समय के आधार पर, अग्रिम निर्देश की वैधता की जांच की जानी चाहिए । देखिये टी निर्देश ; (एडल्ट : रिफयूजल ऑफ ट्रीटमेन्ट) 1993 फेम 95, लार्ड डोनाल्डसन एम. आर (पृष्ठ 103) जहां इन्होंने अग्रिम निर्देश अथवा पूर्व विकल्प की वैधता के बारे में दो 'चाईज' का उल्लेख किया है । उनका कहना है कि ;

"..........रोगी और जिस समाज में वह रहता है, उन दोनों के हितों के बीच संघर्ष । रोगी के हित में उसका स्वनिर्धारण का अधिकार - उसे अपना जीवन अपनी तरह जीने का अधिकार, वह क्या चाहता है, यह सब सम्मिलित है भले ही इसके कारण उसके स्वास्थ्य को नुकसान होता हो या उसकी मृत्यु समय से पूर्व हो जाये । समाज का हित इस सिद्धांत को पोषित करने में है कि मानवीय जीवन अमूल्य है और जहां तक संभव हो उसकी रक्षा की जानी चाहिये । यह सुनिश्चित है कि अन्ततोगत्वा, व्यक्ति का अधिकार सर्वोपरि है । किन्तु जहां संघर्ष प्रतीत हो वहां समस्या केवल बदल जाती है और इस बात की अत्यंत सावधानीपूर्वक जांच अपेक्षित हो जाती है और ऐसी स्थिति में देखना होता है कि व्यक्ति अपने अधिकार का प्रयोग किस रीति से कर रहा है । संदेह की स्थिति में, संदेह का समाधान जीवन की रक्षा

के पक्ष में करना होगा क्योंकि यदि व्यक्ति का हित लोक हित के ऊपर रखना है तो यह स्पष्ट शब्दों में किया जाना चाहिये ।"

न्या. मुम्बई ने लार्ड डोनाल्डसन के इस वक्तव्य का उल्लेख किया (पृष्ठ 114) कि 'अग्रिम निर्देश' परिकल्पना पर आधारित हो सकता है और ऐसी दशा में परिकल्पना की जांच करना आवश्यक है । लार्ड डोनाल्डसन ने कहा है;

> "यदि वह परिकल्पना, जिसे आधार बनाया गया है, गलत हो जाती है तो इन्कार प्रभावशील नहीं रहता । ऐसी दशा में डाक्टरों के सामने ऐसी स्थिति आ जाती है जहां रोगी का कोई निर्णय नहीं होता है और वह स्वयं निर्णय लेने में असमर्थ होता है । तब डाक्टरों को अपने उस निदानात्मक निर्णय का प्रयोग करते हुए जो वे रोगी के सर्वोत्तम हित में मानते हैं, अपने अधिकार और कर्त्तव्य का प्रयोग करना चाहिये ।"

न्या. मुम्बई ने फ्रांसिस तथा जोनसन की पुस्तक 'मेडिकल ट्रीटमेन्टः डिशिजन्स एण्ड द लॉ' (2001 प्रकाशन) (पेरा 1.29) में आये इस वक्तव्य का उल्लेख किया है कि यदि परिस्थितियों में अत्यधिक परिवर्तन हो जाता है तो उपचार के लिये रोगी की सहमति प्रभावी नहीं रहेगी । न्या. मुम्बई का कहना है कि इसी प्रकार से, रोगी द्वारा उपचार के लिये पूर्व इन्कार भी परिस्थितियों में तात्विक परिवर्तन की

दशा में प्रभावशील नहीं रहेगा । उन्होंने <u>एअरडेल</u> में लार्ड गॉफ को (पृष्ठ 864 पर) उदधृत किया है जहां कहा गया है कि अग्रिम निर्देश पर 'विशेष सावधानी' के साथ विचार किया जाना चाहिये । "..... यह सुनिश्चित करने के लिये विशेष सावधानी आवश्यक हो सकती है कि सहमति से पूर्व इन्कार, उन परिस्थितियों में जो तदनन्तर घटी हैं, उचित रूप से प्रभावशील माना जा सकता है या नहीं ।"

न्या. मुन्बई ने <u>ए के निर्देश</u> -2001 (1) एफ. एल. आर 129 (पृष्ठ 134) में न्या. हम्स ने जो कहा है उसका उल्लेख निम्नलिखित शब्दों में किया है:

> "पूर्णसामर्थ्य वाले वयस्क रोगी की दशा में, उपचार या देखरेख के लिये सहमति से रोगी के इन्कार को विधिवत स्वीकार किया जाना चाहिये । यह स्पष्ट है कि आपात स्थिति में डाक्टर को विधि में यह हक है कि वह ऐसे रोगी का उपचार, जो आपात स्थिति के कारण सहमति देने में समर्थ नहीं हैं, इस आधार पर कि उन परिस्थितियों में सहमति की परिकल्पना की जा सकती है, आक्रामक साधनों से उपचार करे । तथापि, विधि इस बारे में भी स्पष्ट है कि डाक्टरों को इस प्रकार से कार्य करने का हक नहीं है यदि वे जानते हैं कि रोगी ने तब जब उसका मस्तिष्क ठीक था और उसमें पूर्ण सामर्थ्य थी, उन्हें यह जता दिया था कि

उसने सहमति नहीं दी थी और ऐसा उपचार रोगी की इच्छा के विरुद्ध है। पूर्ण सामर्थ्य तथा सही मस्तिष्क के रोगी की इच्छा का अग्रिम संकेत इस विस्तार तक प्रभावी है । फिर भी यह सुनिश्चित करने की सावधानी बरतनी होगी कि रोगी की इच्छा के बारे में की गई ऐसी पूर्व घोषणा इस समय भी रोगी की इच्छा को प्रकट करती है । यह जांच करने भी सावधानी बरतनी होगी की इच्छा का संकेत कितने समय पूर्व दिया गया था । यह जांच करने के लिये भी सावधानी बर्तनी चाहिऐ कि इच्छा का संकेत किस जानकारी के बाद किया गया था । यह निश्चित है कि उन सभी परिस्थितियों की जांच करनी होगी जिनमें इच्छा का संकेत किया गया था।"

यह सारी बातें अग्रिम निर्देश के सबूत के भार और सबूत के मानक तथा उसकी निरन्तर विद्यमानता और प्रभावशीलता के बारे में है ।

अग्रिम निर्देश की विद्यमानता के बारे में न्या. मुम्बई का कहना है कि उसके स्वरूप के बारे में कोई कानूनी अपेक्षायें नहीं है, वास्तव में, उसका लिखित होना भी आवश्यक नहीं है । (टी निर्देश) ऐसा निर्देश मौखिक अथवा लिखित हो सकता है । निर्देश रोगी का सुनिश्चित और सुनिर्धारित मत होना चाहिये नाकि कोई आकस्मिक उल्लेख अथवा आकस्मिक अभिव्यक्ति । यही सिद्धांत 'अग्रिम निर्देश' के प्रतिसंहरण के बारे में लागू होता है । 'जीवंत वसीयत' नामक

प्रचलित अभिव्यक्ति भ्रमपूर्ण है। यह (यू. के.) विल्स एक्ट, 1837 से शासित नहीं है। लिखित अग्रिम निर्देश को मौखिक रूप से भी वापिस लिया जा सकता है। अप्रतिसंहरणीय अग्रिम निर्देश 'विरोधी शब्द' है। यह एक कानूनी असंभावना है।

न्या. मुन्बई का कथन है :

> "कोई भी स्वतंत्र व्यक्ति जीवन रक्षक उपचार से इन्कार के अप्रतिसंहरणीय अग्रिम निर्देश का निष्पादन करके अपने जीवन को तिलांजलि नहीं दे सकता जिस प्रकार से वह स्वयं को गुलामी के अंतर्गत रखने का निष्पादन करके अपनी स्वतंत्रता को तिलांजलि नहीं दे सकता है। अग्रिम निर्देश में ऐसी कोई शर्त, जो उसे अप्रतिसंहरणीय बनाती हो, लोकनीति के विरुद्ध और अवैध है।

न्या. मुन्बई द्वारा अधिकथित एक और सिद्धांत यह था कि यदि कोई अग्रिम निर्देश दिया गया है तो वह निर्देश प्रभावी रहा आयेगा यदि वह व्यक्ति आगे चलकर अपनी अस्वस्थता के कारण अक्षम हो जाता है किन्तु वह निर्देश के प्रतिसंहरण के बारे में कोई औपचारिक या अन्य शर्त नहीं लगा सकता और ऐसी शर्त लोकनीति के कारण अवैध होगी। अतः अग्रिम निर्देश का पैरा (2 डी) जो निम्नलिखित शब्दों में है, लोकनिति के विरुद्ध होने के कारण अवैध है।

"यह अग्रिम निर्देश तब तक प्रभावी रहेगा और मेरा उपचार करने वालों पर बाध्यकर रहेगा जब तक कि मैं स्पष्ट लिखित शब्दों में इसका प्रतिसंहरण नहीं करता ।"

निर्देश का लिखित में प्रतिसंहरण आवश्यक नहीं है यह मौखिक हो सकता है । रोगी मौखिक रूप से कह सकता है कि उसने जीहोवा विटनेस के मत का त्याग कर दिया है । यह उस स्थिति में भी अविधिमान्य होगा जब यह कहा गया हो कि प्रतिसंहरण दो साक्षियों की उपस्थिति में किया जायेगा ।

वर्तमान मामले में, यह प्रतीत होता है कि ए. ई किसी मुसलमान से विवाह करने के लिये अपने मूल धर्म (मुस्लिम धर्म) को स्वीकार करने की इच्छा से प्रभावित थी । व्यक्ति की स्वतंत्रता पर आधारित कोई भी धर्मनिरपेक्ष विधि ऐसे किसी रोगी के पूर्व लिखित वक्तव्य से नहीं बन सकती जिसका साहस तब जवाब दे जाये जब उसे आपरेशन थियेटर को ले जाया जा रहा हो और जिसने पूर्व में लिखित में कुछ भी क्यों न कहा हो ।" ऐसे दस्तावेज के प्रतिसंहरण के बारे में रोगी की सामर्थ्य पर उसके द्वारा स्वयं लगाई गई कोई भी बंदिश लोकनीति के विरुद्ध तथा अवैध होगी । प्रश्न यह है कि:

"क्या अग्रिम निर्देश का प्रतिसंहरण किया गया है अथवा यह किसी अन्य कारण से प्रभावशील नहीं रहा है....... ।"

यह तथ्य का प्रश्न है । इस प्रश्न पर सबूत का भार उस पर है जो अग्रिम निर्देश की निरंतर विधिमान्यता और प्रभावशीलता स्थापित करते हैं।

रोगी के मस्तिष्क का परिवर्तन लिखित या मौखिक शब्दों से प्रकट हो सकता है अथवा रोगी के कार्यों से स्पष्ट हो सकता है - क्योंकि अनेक बार कार्य शब्दों से अधिक कहते हैं । परिस्थितियों में भी कुछ परिवर्तन हो सकता है । यह अधिकथित किया जा सकता है कि रोगी उस धर्म में विश्वास खो चुका है जो अग्रिम निर्देश का आधार था अथवा रोगी ठीक हो गया है ; यह कहा जा सकता है कि चिकित्सा विज्ञान में उन्नति हुई है । यह भी कहा जा सकता है कि रोगी ने विवाह कर लिया है, उसके संतान है ; और अब उसके पास ऐसे जोरदार कारण हैं जिससे वह अत्यधिक अलाभप्रद जीवन भी जीने की कामना कर रहा है । यह सुझाव दिया जा सकता है कि अग्रिम निर्देश स्पष्टतया अथवा आचरण से वापिस लिया जा चुका है । जब भी संदेह का कोई वास्तविक कारण हो तब सबूत का भार उन पर आ सकता है जो निर्देश की विधिमानता की निरन्तरता और प्रभावशीलता पर जोर देते हैं । यदि संदेह का निवारण नहीं होता है तो वह जीवन की सुरक्षा के पक्ष में निर्धारित किया जायेगा । यदि संदेह है तो अग्रिम निर्देश डॉक्टर के इस निर्णय के आड़े नहीं आ सकता तो उसे वह करना चाहिये जो रोगी के सर्वोत्तम हित में है । ऐसा संदेह पैदा हुआ है या नहीं ऐसा परिस्थितियों पर निर्भर करता है । ऐसे सुस्थापित सुझावों पर कोई

प्रतिक्रिया कि परिस्थितियों में बदलाव आ गया है, अग्रिम निर्देश को मृत्यु के वारंट का रूप दे सकते हैं क्योंकि रोगी वास्तव में उपचार कराना चाहता है । न्या. मुम्बई ने इसके पश्चात् यह कथन किया है कि :

" अग्रिम निर्देश के पश्चात् यदि लम्बा समय व्यतीत हो गया है और रोगी की परिस्थितियों में प्रत्यक्ष रूप से अनेक परिवर्तन हो गये हैं, जैसा कि मुझे दिखाई दिया है, तो और भी सावधानीपूर्वक <u>कठोर और चिन्तापूर्ण विश्लेषण</u> की आवश्यकता होगी।"

न्या. मुम्बई ने अन्त में 'अग्रिम निर्देश' से संबंधित विधि के संक्षिप्त में सात सिद्धांत प्रस्तुत किये हैं :

" (i) विधमान्य अग्रिम निर्देश के लिये कोई औपचारिक अपेक्षायें नहीं है । अग्रिम निर्देश लिखित में हो यह आवश्यक नहीं है । वह मौखिक या लिखित हो सकता है ।

(ii) अग्रिम निर्देश के प्रतिसंहरण / वापिस लेने के लिये भी कोई औपचारिक अपेक्षायें नहीं हैं । अग्रिम निर्देश चाहे वह मौखिक हो या लिखित, मौखिक रूप से या लिखित रूप से वापिस लिया जा सकता है । लिखित अग्रिम निर्देश अथवा मुद्रांकित निष्पादित अग्रिम निर्देश

मौखिक रूप से वापिस लिया जा सकता है ।

(iii) अग्रिम निर्देश वस्तुतः प्रतिसंहरणीय / अग्रिम निर्देश में दी गई कोई ऐसी शर्त जो उसे अप्रतिसंहरणीय बनाती है यहां तक कि

अग्रिम निर्देश के प्रतिसंहरण के बारे में रोगी की सामर्थ्य पर कोई भी स्वयं-निर्धारित शर्त, तथा अग्रिम निर्देश में कोई ऐसी व्यवस्था जो उसके प्रतिसंहरण पर औपचारिक या अन्य शर्त लगाती है, लोकनीति के विरूद्ध है और अवैध है । अतः अग्रिम निर्देश की कोई शर्त, भले ही वह लिखित में हो जो इस रूप में हो कि निर्देश तब तक बाध्यकर होगा जब तक उसे लिखित में वापिस नहीं ले लिया जाता लोकनीति के विपरीत होने के कारण अवैध है ।

(iv) अग्रिम निर्देश की विद्यमान्यता और उसकी विधिमान्यता की निरन्तरता तथा प्रभावशीलता तथ्य का प्रश्न है । अग्रिम निर्देश वापिस लिया गया है या नहीं ; किन्हीं कारणों से वह प्रभावशील रहा है या नहीं ; एक तथ्य का प्रश्न है ।

(v) सबूत का भार उन पर है जो अग्रिम निर्देश की विधिमान्यता, निरन्तर विद्यमान्यता और प्रभावशीलता स्थापित करना चाहते हैं ।

(vi) जहां जीवन को जोखिम हो, वहां साक्ष्य की जांच विशेष सावधानीपूर्वक की जानी चाहिये । स्पष्ट और संतोषप्रद सबूत अपेक्षित है । अग्रिम निर्देश की निरन्तर विद्यमान्यता और प्रभावशीलता संतोषप्रद और तात्विक रूप से विश्वास योग्य साक्ष्य से स्पष्ट रूप से स्थापित की जानी चाहिये ।

(vii) यदि संदेह है तो संदेह का समाधान जीवन की सुरक्षा के पक्ष में किया जाना चाहिये । "

न्या. मुन्बई ने उपरोक्त सिद्धांतों का कथन करने के पश्चात्, न्यायालय के समक्ष 2 मई, 2003 को दिये गये पिता के वक्तव्य पर

भरोसा किया जिसमें पिता ने इस बात के सात कारण गिनाये थे कि अग्रिम निर्देश प्रभावशील नहीं रहा है ।

(i) 2.12.2002 के पश्चात उसकी पुत्री ए. ई. ने जीहोवा विटनेस धर्म को छोड़ कर पुनः मुसलमान बनने की इच्छा जताई है जो कि एक तुर्की व्यक्ति के साथ उसके विवाह की शर्त है,

(ii) ए. ई. ने जीहोवा विटनेस की धर्म सभाओं में जाना बंद कर दिया है जिनमें वह प्रायः सप्ताह में दो बार जाया करती थी । उसने अपने भावी पति से वायदा किया है कि वह ऐसी धर्म सभाओं में नहीं जायेगी और जनवरी, 03 से वह धर्म सभाओं में नहीं गई है ।

(iii) सहमति के फार्म पर उसने हस्ताक्षर धर्म परिवर्तन के पूर्व किये हैं अतः उस सहमति पर विश्वास नहीं किया जाना चाहिये।

(iv) वह स्थिति खराब होने से पहले अस्पताल में दाखिल हुई थी किन्तु उसने चिकित्सा अधिकारियों को कोई अग्रिम निर्देश देने का उल्लेख नहीं किया है ।

(v) अस्पताल से छूटने के पूर्व वह दो दिन अस्पताल में रह चुकी थी । उन दो दिनों में उसने अग्रिम निर्देश का उल्लेख नहीं किया ।

(vi) अस्पताल में पुनः दाखिल होने के पश्चात् उसके अपने भाई और चाची ने इस बात की पुष्टि की कि 'वह मरना नहीं चाहती'।

(vii) लगभग दो माह पूर्व उसने अपने परिवार को सूचित किया था कि वह विवाह करना चाहती थी और किसी बात को भी आड़े नहीं आने देगी और यह पुष्टि भी की थी कि वह मुस्लिम धर्म का भी पालन करेगी ।

विद्वान न्यायाधीश ने इन तथ्यों के आधार पर निर्णय दिया कि अग्रिम निर्देश ए. ई के तत्समय जीहोवा विटनेस धार्मिक विश्वास मात्र पर आधारित था और जब उस मत का प्रभाव उस पर से समाप्त हो गया और अपने मूल मुस्लिम धर्म की ओर वापिस आ गई तो अग्रिम निर्देश का आधार ही बिखर गया । निर्देश 'प्रभावशील' नहीं रहा जैसा कि एम. आर. डोनाल्डसन ने टी. निर्देश में कथन किया है। अन्यथा भी, यह संदेहप्रद है कि अग्रिम निर्देश की विधिमान्यता बनी हुई है और ऐसे संदेहों का समाधान जीवन की सुरक्षा के पक्ष में किया जाना चाहिये । यह ए. ई. के सर्वोत्तम हित में है कि उसे रक्त चढ़ाया जाना चाहिऐ ।

अन्ततः विद्वान् न्यायाधीश ने यह टिप्पणी की है कि जैसे ही कोई तथ्य अस्पताल के अधिकारियों की जानकारी में आते हैं जिनके कारण किसी रोगी के संबंध में अतिशीघ्र चिकित्सीय हस्तक्षेप अपेक्षित है, अस्पताल के प्राधिकारियों और डाक्टरों द्वारा शीघ्र ही न्यायालय में कार्यवाही करनी चाहिये और ऐसी कार्यवाही नातेदारों के ऊपर नहीं छोड़नी चाहिऐ । (टी. निर्देश में लार्ड डोनाल्डसन को उद्धृत किया - पृष्ठ 115)

यदि उसकी सामर्थ्य में कमी आ जाये तो उसके वकील से परामर्श किया जाये जो ऐसी विपदा में उसकी ओर से निर्णय लेगा ।

24.3.2004 को उसका उपचार कर रहे मनोचिकित्सक ने राय दी की वह अस्थिर थी और रक्त चढ़ाना और देना आवश्यक था । 8.4.2004 को वह मृत्यु होने जैसी स्थिति में पहुंच गई थी । 9.4.2004 को अस्पताल द्वारा किये गये आवेदन पर न्या. पौफली ने अपने आदेश द्वारा, कम से कम शक्ति का प्रयोग करते हुए रक्त चढ़ाये जाने की अनुमति प्रदान की । रक्त चढ़ाया गया और 13.4.2004 को उसकी स्थिति संभल गई । 16.4.2004 को उसके सालीसीटर ने और आगे रक्त चढ़ाये जाने पर लिखित आपत्ति की ।

न्या. चार्ल्स ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने के पश्चात् कि नइ सी. पी. आर (सिविल प्रक्रिया नियम) के अंतर्गत अन्तरिम घोषणायें दी जा सकती थीं और उन परिस्थितियों का उल्लेख करते हुए जिनमें किसी मामले में ऐसी घोषणा तत्समय रोगी की सामर्थ्य को देखते हुए या आपात स्थिति के अभाव में अपरिपक्व हो सकती थी, न्यायाधीश महोदय ने निर्णय दिया कि उनके समक्ष जो साक्ष्य था उसके आधार पर <u>श्रीमती टी</u> में उस समय ऐसी सामर्थ्य की कमी थी जिस समय उसने अग्रिम निर्देश पर हस्ताक्षर किये थे तथा वह, जैसा कि <u>एम. बी निर्देश</u> में कथन किया गया है, सुसंगत जानकारी और अन्य कारणों को समझने में असमर्थ थी । इस समय भी, जब उसने पुनः इन्कार किया, उसकी स्थिति पहले से भिन्न नहीं है ।

इसके पश्चात् न्या. चार्ल्स ने उन बातों की परीक्षा की जो उसके सर्वोत्तम हित में थीं । उन्होंने ए बनाम ए हैल्थ ओथेरिटी 2002 (1) एफ. एल. आर 641 में से न्या. मुन्बई को उदधृत किया कि किसी वयस्क के सर्वोत्तम हित में कल्याण का विश्लेषण निहित है और जहां भी उचित हो वहां उन सभी नैतिक, सामाजिक, चारित्रिक, संवेदनात्मक तथा कल्याण संबंधी कारणों का पूरी तरह और चतुर्दिक विचार किया जाना चाहिऐ । ए (मेडिकल ट्रीटमेन्ट : मेल स्टेरीलाइजेशन) निर्देश 2000 (1) एफ. एल. आर 549 में से न्या. लार्ड बटलर-स्लोस के तत्समान विचारों का उल्लेख किया गया । न्यायाधीश ने ए निर्देश में न्या. लार्ड थोरपे का भी इस विषय में उदधृत किया कि मानसिक रोगियों के मामले में उनके सर्वोत्तम हित में क्या है । रोगी ने अपने अग्रिम निर्देश में जो दो कारण दिये थे कि रक्त चढ़ाये जाने से एक वीभत्स स्थिति पैदा हो जाती थी और उसका रक्त दानवीय हो जाता था, उन्हें कोई महत्व नहीं दिया जा सकता । न्या. लार्ड थोरपे ने जैसा कथन किया था 'संभावित लाभ' तुलन पत्र में हानियों की अपेक्षा अधिक थे ।

(31) डौनकास्टर एण्ड बासेट लॉ हास्पीटलस एन. एच. एस ट्रस्ट तथा अन्य बनाम सी : (2004) इ. डबलयू. एच. सी 1657 (न्या. सम्नेर) (12.7.2004)

यह आवेदन एम. एच. एस ट्रस्ट ने एक वृद्धा सी की बावत् किया था और निवेदन किया था कि एल. टी स्केन करने के प्रयोजन के लिए रोगी की इच्छा के विरुद्ध उसे जनरल ऐनेस्थीसीया देने की अनुमति दी जाये । यह इसलिये आवश्यक था क्योंकि पहले किये गये अलट्रासाउण्ड स्केन से प्रकट हुआ था कि रोगी को रीनल करसीनोमा होने का संदेह था । शासकीय सालीसीटर ने आवेदन का विरोध नहीं किया ।

सी को 60 वर्षों से मानसिक रूग्णता थी । वह अनेक बार अस्पताल में रही, दवा लेने में वह लापरवाह थी और उसकी काल्पनिक धारणायें थी । लगता था कि अलट्रासाउण्ड रिपोर्ट किसी और की है। उसके अनुसार चिकित्सीय हस्तक्षेप उसके विरूद्ध एक षडयंत्र था । डाक्टर इसे मानसिक रुग्णता मानते थे । उसमें उपचार संबंधी विकल्पों की हानियों और जोखिमों को तौलने की सामर्थ्य नहीं थी ।

न्यायाधीश ने रोगी के वकील की आपत्तियों का उल्लेख करते हुए, न्यायाधीश लार्ड बटलर-स्लोस द्वारा <u>एम.बी निर्देश</u> 1997 (2) एफ. सी. आर में पैरा 4 (ख) में कथित सिद्धांत का आश्रय लिया कि "यदि रोगी प्राप्त जानकारी का उपयोग करने में असमर्थ है और निर्णय तक पहुंचने की प्रक्रिया के भाग के रूप में उसे तौलने में असमर्थ है तो निर्णय लेने में रोगी की असमर्थता मान ली जानी चाहिये । जैसा न्या. थोरपे ने <u>सी निर्देश</u> 1994 (2) एफ. सी. आर

151 में कथन किया है, अनिवार्य विसंगति या भय जिससे रोगी पीड़ित है । रोगी को प्रदान की गई जानकारी के प्रति विश्वास को नष्ट कर देता है और ऐसी स्थिति में सही निर्णय नहीं लिया जा सकता है । अतः यह रोगी के हित में था कि सी. टी. स्केन के लिये उसे ऐनेस्थीसीया दिया जाये।

(32) आर (बर्क) बनाम द जनरल मेडिकल काउंसिल : 2004 इ. डबलयू. एच. सी 1879 (एडमिन्ड)
(न्या. मुन्बई) (30.7.2004) : (अपीली न्यायालय द्वारा कतिपय बिन्दुओं पर निर्णय उलट दिया गया)।

इस निर्णय में, जो 224 पैराओं में (95 पृष्ठों) में है, इस विषय पर विधि का पुनरीक्षण किया गया है । निर्णय का वह अंश जिसमें इंगलैण्ड की जनरल मेडीकल काउंसिल द्वारा दिये गये मार्ग निर्देशों को इस आधार पर अवैध ठहराया गया था कि वह यूरोपीयन कन्वेंशन के कतिपय आर्टिकलों के विरुद्ध थे, अपीली न्यायालय द्वारा अपास्त कर दिया गया है ।

विद्वान् न्यायाधीश ने निर्णय के प्रारंभिक भाग में, सुविधा के लिये शीर्षकों की एक तालिका दी है । निम्नलिखित शीर्षक महत्वपूर्ण है :

1. जी. एम. सी मार्ग निर्देश (पैरा 7 से 17)

2. कृत्रिम पोषण तथा जल पोषण (पैरा 18 से 20)

3. सक्षमता, अक्षमता और अग्रिम निर्देश (पैरा 41 से 50)

4. विधि का नैतिक आधार (पैरा 51 से 53)

5. स्वायत्तता तथा स्वनिर्धारण (पैरा 54 से 56)

6. स्वाभिमान (पैरा 57, 58)

7. स्वायत्तता, स्वाभिमान और यूरोपीय कन्वेंशन (पैरा 59 से 72)

8. इन सिद्धांतो के बीच अतारतम्यता (पैरा 73 से 79)

9. <u>निष्कर्ष</u> (पैरा 80)

10. <u>कॉमन विधि</u> (पैरा 81)

11. देखरेख का कर्त्तव्य (पैरा 82 से 87)

12. सर्वोत्तम हित (पैरा 88 से 97)

13. सर्वोत्तम हित और दीर्घकालीन उपचार (पैरा 98 से 113)

14. सर्वोत्तम हितों का मूल्यांकन (पैरा 114, 115)

15. <u>निष्कर्ष</u> (पैरा 116)

16. द (यूरोपीयन) कन्वेंशन (पैरा 117, 118)

17. नकारात्मक तथा सकारात्मक बाध्यता (पैरा 119 से 121)

18 (क) कन्वेंशन के आर्टिकल 2,3,8 के बीच अन्तर संबंध (पैरा 122 से 129)

(ख) आर्टिकल 8 (पैरा 130)

(ग) आर्टिकल 3 (पैरा 131 से 151)

(घ) आर्टिकल 2 (पैरा 152 से 162)

19. कर्वेन्शन तथा कृत्रिम पोषण और जल पोषण का हटाया जाना (पैरा 163 से 177)

20. <u>निष्कर्ष</u> -(पैरा 178,179)

21. डॉक्टर पर जोर (पैरा 180 से 184)

22. न्यायालय की संलग्नता (पैरा 195 से 211)

23. संक्षेप तथा विचारविमर्श (पैरा 212)

24. <u>निष्कर्षों का संक्षेप</u> (पैरा 213, 214)

25. विचारविमर्श (पैरा 215 से 223)

26. <u>अनुतोष</u> (पैरा 224, 225)

(उपाबंध, जी एम सी मार्ग निर्देश) (आइटम - 1 से 82 तक)" ।

यह मामला 44 वर्षीय श्री बर्क का है जो कि सेरेबेलर अटाक्सीया (एक मस्तिष्क विकार) से पीड़ित थे <u>किन्तु मानसिक रूप से स्वस्थ्य थे</u> । उन्हें भोजन कभी-कभी कृत्रिम साधनों से दिया जाता था (कृत्रिम पोषण और जल पोषण : ए. एन. एच) ।

रोगी ने ही ए. एन. एच जारी रखने के प्रयोजन के लिये न्यायालय से स्पष्टीकरण की प्रार्थना की और किन असाधारण परिस्थितियों में ए. एन. एच को बंद किया जा सकता था इस बारे में मार्गनिर्देश चाहे । उसका तर्क था कि इंग्लेण्ड की जनरल मेडिकल काउन्सिल द्वारा जारी किये गये मार्गनिर्देश (2002) (जी. एम. सी) के कतिपय पैरा (अर्थात् पैरा 32, 38, 81, 82) (तथा पैरा 13, 16, 42 भी) जो कि जीवन प्रदायी उपचार को रोकने या बंद करने की

बाबत् थे, यूरोपीय कन्वेन्शन के आर्टिकल 2, 3 और 8 के विपरीत थे । उसने ह्यूमन राइट्स एक्ट, 1998 के अंतर्गत न्यायिक पुनरीक्षण के प्रति निर्देश किया जो कि 2.10, 2000 से लागू हुआ था । जी. एम. सी ने मेडीकल एक्ट, 1983 की धारा 35 के अंतर्गत मार्गनिर्देश जारी किया था ।

यह मामला मूलरूप से उन रोगियों से संबंधित था जो स्थायी रूप से जड़ दशा में (पी.वी.एस) नहीं थे किन्तु न्यायालय ने आकस्मिक रूप से पी. वी. एस रोगियों पर भी विचार किया । यहां रोगी ने यह मांग नहीं की थी कि डॉक्टर इस परिकल्पना के आधार पर कि उसका जीवन अब जीने योग्य नहीं था, जीवन समर्थक उपायों को हटा देने के बारे में निर्णय लें । शासकीय सालीसीटर, डिसएबिलिटी राइट्स कमीशन (डी. आर. सी), ब्रिटिश मेडिकल काउन्सिल और ब्रिटिश मेडिकल ऐसोसियेशन की इथिक्स कमैटी को सुना गया ।

अगर हम आर (बर्क) में दिये गये निर्णय का ब्यौरेबार उल्लेख करते हैं, जिसे हम करना पसंद करेंगे, तो इस रिपोर्ट का आकार बहुत बड़ा हो जायेगा । जहां तक इस निर्णय में उल्लिखित कॉमन विधि के सिद्धांतों का संबंध है, हम उनका उल्लेख नहीं करना चाहते क्योंकि निर्णय में उद्घृत अधिकांश विनिश्चयों की चर्चा हम इस अध्याय में कर चुके हैं ।

न्या. मुम्बई ने अपने निर्णय में यू. के. के तथा स्ट्रासबर्ग स्थित यूरोपीय न्यायालय के अनेक निर्णयों की संक्षेप में चर्चा की है और यह शोधकर्त्ताओं को बहुत सहायक होंगे सिवाय उन टिप्पणियों के जो जी. एम. सी मार्ग निर्देशों की वैधता के बारे में हैं और जिन्हें अभी तक अपीली न्यायालय ने स्वीकार नहीं किया है । हम इसके पश्चात् अपीली न्यायालय के निर्णय की विस्तृत चर्चा करेंगे (देखिये आगे आइटम 34) ।

(33) <u>पोर्ट्स माउथ एन. एच. एस ट्रस्ट</u> बनाम <u>वयात तथा अन्य</u> : (2004) ई. डब्ल्यू. एच. सी 2247 (न्या. हेडले) (7 अक्टूबर, 2004)

बालिका का जन्म 21 अक्टूबर 2003 को 26 सप्ताह के गर्भ के पश्चात् हुआ था और उसका वजन लगभग एक पौन्ड था । उसे एक इक्यूबेटर में रखा गया था । वास्तव में उसने कभी भी अस्पताल नहीं छोड़ा । उसे गंभीर रूप से श्वास अवरोध था और पहले 3 माह में उसे अधिकांशतः श्वास प्रणाली की आवश्यकता हुई। उसे पल्मोनरी हाइपरटेंशन था जिसके परिणामस्वरूप उसके फेफड़ों को नुकसान पहुंचा था और निरन्तर पेशाब के मार्ग में इन्फेक्शन था और किडनी भलीभांति कार्य नहीं कर रही थी । उसके हृदय का आकार छोटा था । उसमें मस्तिष्क के विकास की संभावना बहुत कम थी। उसे दर्द का अनुभव होता था । जुलाई 2004 में उसे गंभीर रूप से इन्फेक्शन हुआ । वह साउथ एम्पटन हास्पीटल में (आई. सी. यू) में रखी गई । उसकी वहां पर और पोर्ट्स माउथ में भी जांच की गई।

(30.9.2004 के अपने पूर्व निर्णय में न्या. हेडले ने निर्णय दिया था कि डॉक्टरों और अस्पतालों के नाम गुप्त रखे जाने चाहिये ।) रोगी को श्वास लेने के लिये वह भी नाक से नहीं, उच्च स्तर की आक्सीजन अपेक्षित थी किन्तु एक यंत्र लगाकर, जिसने एक पारदर्शक प्लास्टिक के डिब्बे से सिर को ढक दिया था, वह अधिकतम आक्सीजन ग्रहण कर रही थी । इस प्रणाली ने भी फेफड़ों को क्षति पहुंचायी । अतः उसे श्वसन प्रणाली की आवश्यकता हुई । किडनी कमजोर होती जा रही थी, प्रत्यारोपण का कोई अवसर नहीं था । उसे सिर्फ डाइलाइसिस पर रखा जा सकता था ।

माता -पिता चाहते थे कि उपचार किया जाये । सभी डॉक्टर मानते थे कि आवश्यकता होने पर भी कृत्रिम श्वसन प्रणाली उसके लिये अच्छी नहीं थी । न्यायाधीश महोदय ने टिप्पणी की कि डॉक्टरों को ब्रिटिश मेडिकल ऐसोसियेशन द्वारा जीवन दीर्घता चिकित्सीय उपचार के हटाये या बंद करने क विषय में मार्गनिर्देश (2001) का अनुपालन करना होगा किन्तु वह मार्गनिर्देश न्यायालय पर बाध्यकर नहीं था। यद्यपि न्यायालय 'पूर्ण ध्यान दिये जाने और पूर्ण सम्मान का हकदार था ।'

डॉक्टरों की एक मत से यह राय थी कि कृत्रिम श्वसन प्रणाली, यदि किसी प्रक्रम पर उसकी आवश्यकता हो तो, चिल्ड्रन्स एक्ट, 1989 की धारा 2 और 3 के अंतर्गत रोगी के सर्वोत्तम हित में थी तथा माता-पिता के उत्तरदायित्व को स्वीकार किया गया । इसमें

उपचार के लिये सहमति देने या उससे इन्कार करने का अधिकार भी था । न्यायालय के सिवाय यह अधिकार किसी को भी नहीं था और वह भी उस स्थिति में, जैसी के यहां थी, न्यायालय की अधिकारिता स्वीकार की गई थी ।

न्या. हेडले ने न्या. मुन्बई के आर (बर्क) बनाम जी. एम. सी : 2004 इ.डब्ल्यू. एच.सी 1874 में दिये गये निर्णय का उल्लेख किया और यह प्रस्तावित किया ि कवे अधिकथित विधि को लागू करेंगे । जैसाकि पहले कथन किया जा चुका है, न्या. मुन्बई के निर्णय के वे अंश जिसमें न्यायाधीश ने निर्णय दिया था कि जी. एम. सी के मार्गनिर्देश में से अनेक यूरोपीय कन्वेन्शन का उल्लंघन करते थे, अपीली न्यायालय ने उलट दिये थे । न्यायाधीश का कथन था कि-

> "इस मामले में कतिपय ऐसे बुनियादी सिद्धांत उठाये गये हैं जो मानवता के पक्षधर हैं । वे पार्लियामेन्ट के किसी अधिनियम में अथवा न्यायालयों के निर्णयों में नहीं पाये जाते किन्तु वे सामान्य मानवीय मानसिकता में गहराई से घुसे हुये हैं चाहे उनका श्रोत मानवीयता हो जिसका सृजन ईश्वर के स्वरूप में है अथवा जो स्वयं परिभाषित नैतिकता मात्र है जिसे सर्वसाधारण में सामान्यतः स्वीकार किया गया है । "

न्यायाधीश महोदय ने 'जीवन का महत्व', 'वैयक्तिक स्वायत्तता', और 'मानवीय स्वाभिमान' का उल्लेख किया जिनकी चर्चा न्या. लार्ड होफमैन ने एअरडेल में अपीली न्यायालय के रूप में की थी ।

किन्तु यहां बालिक को यह अधिकार थे किन्तु वह स्वयं अपना चुनाव करने में समर्थ नहीं थी । प्रायः उसके माता-पिता चुनाव करते थे किन्तु यहां न्यायालय द्वारा भी यह चुना जा सकता था कि उसके सर्वोत्तम हित में क्या है । हित के अंतर्गत चिकित्सीय, भावनात्मक और कल्याण संबंधी सभी अन्य प्रश्न निहित रहते हैं । (ए निर्देश : 2000 (1)एफ. एल. आर 549 (अध्यक्ष) तथा एस निर्देश : 2001 15 जनवरी (न्या. लार्ड थोरपे) । उनका कहना था कि "मानवीय दशाओं के अनन्त रूप सदैव चौंका देते हैं और यह तथ्य ऐसा तथ्य है जो सर्वोत्तम हित की संक्षिप्त परिभाषा देने के प्रभाव को सदैव असफल कर देता है ।" तत्पश्चात् न्यायाधीश ने न्या. एम. आर डोनाल्डसन और लार्ड टेलर के न्यायालय द्वारा समायोजन की क्रिया का उल्लेख किया ; जे निर्देश 1991 फेम 33 । उनका कथन था कि यह पता लगाना आवश्यक होता है कि क्या स्थिति रोगी के लिये इतनी 'असहनीय' हो जायेगी जिसके कारण उपचार को रोक देना उसके सर्वोत्तम हित में होगा । उन्होंने निर्देश क : 2000 (1) एफ. एल. आर 549(पृष्ठ 560) को उद्धृत किया ।

न्या. हेडले ने इसके बाद कहा : "मृत्यु एक ऐसा अनुभव है जिसे (जन्म से भिन्न) मानवता सदैव विचार में लेती है किन्तु जीवन

का कोई भी दृष्टिकोण, जिसमें मृत्यु के स्थान की परिकल्पना न की जाती हो, यहां तक कि बालक में भी, पूरा नहीं हो सकता । समाज के रूप में, हम मृत्यु में बारे में विचार करने में संकोच करते हैं, किन्तु हम में से हर एक के हृदय में स्वयं अपने लिये, तथा उन लोंगो के लिये भी जिन्हें हम प्यार करते हैं, '<u>अच्छी मृत्यु</u>' की तीव्र इच्छा रहती है । अतः मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि किसी भी ऐसे व्यक्ति के, जिसकी तुरंत मृत्यु की जोखिम हो, उसके सर्वोत्तम हित की धारणा में उसकी '<u>अच्छी मृत्यु</u>' सुनिश्चित करने की भावना रहती है। न्यायाधीश ने तदनतर <u>जे निर्देश</u> (*1991*) फेम 33 में न्या. लार्ड टेलर के निम्नलिखित शब्दों का उल्लेख किया :

> "ऐसे जीवन की, जिस पर अत्यधिक असमर्थतायें डेरा डाले हुई हों, मृत्यु, अर्थात्, अज्ञात के साथ तुलना करने में न्यायालय की असमर्थता के बावजूद मेरा यह मत है कि ऐसे धुरंधर मामले हो सकते हैं जिनमें न्यायालय यह कहने का हकदार हो कि 'वह जीवन जिसे उपचार से दीर्घता प्रदान की जा सकेगी, इतना भयावह होगा कि वह असहनीय होगा' और ऐसी परिस्थितियों में जीवन को जानबूझकर समाप्त या कम कर देने का प्रश्न न उठने पर भी, मैं समझता हूँ कि न्यायालय बालक के सर्वोत्तम हित में यह कहने का हकदार है कि जानबूझकर ऐसे कदम नहीं उठाने चाहिऐं जो जानबूझकर कष्टपूर्ण जीवन को कृत्रिम रूप से दीर्घता प्रदान करें ।"

"......यह ऐसा कौन सा आयाम है जिसपर असमर्थता और कष्ट की तुला पर न्यायालय को यह निर्णय देना चाहिए कि बालक के सर्वोत्तम हित में यह आवश्यक नहीं है कि दीर्घता के लिये सकारात्मक उपचार अपनाकर उसकी सहनशीलता की परीक्षा ली जाये। स्पष्ट है कि उपचार को रोक देने के औचित्य के लिये परिस्थितियां अत्यन्त गंभीर होना आवश्यक हैं .... । मैं समझता हूं कि न्यायालय के लिये सही मार्ग यह है कि उसे बालक के लिये जीवन के उस रूप के बारे में निर्णय ले जो उपचार देने पर उसे प्राप्त होगा और तब यह निश्चय करे कि क्या उन परिस्थितियों में क्या जीवन में ऐसा होगा जो उस बालक के लिये असहनीय हो । मैंने "उस बालक के लिये" शब्दों का प्रयोग किया है क्योंकि कसौटी यह नहीं होनी चाहिए कि जीवन निर्णयकर्ता के लिये सहनीय होगा या नहीं । कसौटी यह होनी चाहिए कि क्या प्रश्नगत बालक, यदि वह सही निर्णय लेने में समर्थ्य होता, क्या उस जीवन को सहनीय मानता।"

न्या. हेडले ने (i) बालिका के सर्वोत्तम हितों के निर्धारण के प्रयोजन के लिये सुसंगत तथ्यों, (ii) माता-पिता के विचारों, और (iii) संरक्षक की स्थिति, पर विचार करने के पश्चात् निम्नलिखित निर्णय लिया :

"इस निर्णय के अन्त में मैं जो दो टिप्पणियां करना चाहता हूँ उनके अधीन रहते हुए, मुझे यह विश्वास है कि आगे कोई भी आक्रामक उपचार, भले ही वह जीवन की दीर्घता के लिये आवश्यक हो, बालिका के सर्वोत्तम हित में है । मैं जानता हूँ कि इसका अर्थ यह होगा कि उसकी मृत्यु अन्यथा होने से पूर्व हो जाये किन्तु मेरे विवेक के अनुसार, बालिका की मृत्यु की घड़ी केवल थोड़ी टाली जा सकती है । मैंने स्वयं से पूछा है कि अब शरलौट को लाभ पहुंचाने के लिये क्या किया जा सकता है ? मैं इसके केवल तीन उत्तर दे सकता हूँ ; पहला यह कि उसे अधिक से अधिक आराम और जितना संभव हो उतना कम कष्ट दिया जाये ; दूसरे उसे अपने माता-पिता के साथ, और संपर्क में, रहने के लिये जितना अधिक से अधिक संभव हो उतना समय दिया जाये, तीसरे, जब भी होगी तब उसे मृत्यु भोगने के लिये छोड़ दिया जाये जिसे श्री व्यात उनके जीवन का टी. एन. सी कहते हैं जो सर्वाधिक जीवन जीते हैं । यद्यपि मुझे विश्वास है और मुझे लगता है कि आगे और आक्रामक उपचार शरलौट के लिये असहनीय होगा मैं उसके सर्वोत्तम हित का अवधारण इस तथ्य के आधार पर करना चाहूंगा कि उसके लिये क्या करना सर्वोत्तम है....... ।

मैं मोटी तौर पर अस्पताल और संरक्षक द्वारा दिये गए तर्कों के अनुरूप अनुतोष प्रदान करना चाहता हूं । यद्यपि मैंने यह कहा है कि जब तक मैं निर्णय नहीं देता तब तक वस्तुतः जिन शब्दों का प्रयोग किया जायेगा उनके संबंध में किसी भी तर्क को स्वीकार नहीं

करूंगा । सर्वोत्तम हित के संबंध में जिन निष्कर्षों पर पहुंचा हूँ उनकी दृष्टि से मैं कोई भी प्रतिरोधी अनुतोष या कोई सकारात्मक घोषणा का अनुतोष देना आवश्यक नहीं समझता हूं । मुझे इससे अधिक कुछ नहीं कहना है कि प्रतिरोधी अनुतोष (आज्ञापक शब्दों में) देने से इस समय अपीली न्यायालय ने इन्कार किया हुआ है; जे निर्देश (ए माइनर) : (चाइल्ड केयर : मेडिकल ट्रीटमेन्ट) : 1993 फेम 15 में दिया गया निर्णय । जहां तक दूसरे अनुतोष का प्रश्न है उसमें अनेक व्यावहारिक कठिनाईयां पैदा होंगी ।

मैंने कहा था कि मुझे दो टिप्पणियां और करनी हैं । प्रथम यह कि अनुतोष केवल अनुमति से संबंधित है; यह उन्हें सलाह देने या ऐसा कोई उपचार देने से मुक्त नहीं करता है जिसे वे और माता-पिता समय-समय की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए ठीक समझे । यह केवल उन्हें प्राधिकृत करता है कि यदि माता-पिता और उनके बीच असहमति हो तो बालक को कृत्रिम श्वसन प्रणाली के लिये अथवा उस प्रकार के किसी आक्रामक उपचार के लिये न भेजा जाये। दूसरी बात यह है कि मैं उपचार करने वाले डॉक्टरों से यह पूछना चाहूंगा (उन्हें किसी उत्तर का सुझाव दिये बिना) कि डॉक्टर चयनित ट्रैकियोटोमी के बारे में इस आधार पर पुनः विचार करें कि इससे शरलौट की पैलियेटिव देखभाल में, जैसा कि डॉक्टर जी का कहना है, क्या संभव योगदान होगा ।"

(34) जी. एम. सी बनाम बुर्क : 2005 ई. डबल्यू. सी. ए (सिव) 1003 : (सी. ए)

(न्या. वर्थ माट्रावेरस के लार्ड फिलिप्स, एम. आर, वालर तथा लार्ड वॉल) (तारीख 28.7.2005)

यह इस विषय से संबंधित विभिन्न पहलुओं पर सबसे उपयोगी निर्णयों में से एक है ।

यह जनरल मेडिकल काउंसिल द्वारा न्या. मुन्बई के निर्णय के विरूद्ध एक अपील (2004 ई. डबल्यू. एच. सी 1879 एडमिन) (जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है) (तारीख 30 जुलाई 2004 थी ।

विद्वान् न्यायाधीश द्वारा जो छह घोषणायें मंजूर की गई थीं उनमें से तीन का संबंध श्री बर्क के चिकित्सीय उपचार से था जबकि तीन अन्य घोषणाओं में निर्णय दिया गया था कि जनरल मेडीकल काउंसिल द्वारा अगस्त 2002 में (दीर्घ जीवन उपचार को रोक देने या हटा देने के विषय पर) प्रकाशित मार्ग निर्देशों के कई पैरा यूरोपीय कन्वेन्शन का उल्लंघन करते थे । जी. एम. सी इन घोषणाओं से व्यथित थी। न्या. मुन्बई के निर्णय का उल्लेख करते समय जैसा कहा गया है, इन घोषणाओं की प्रार्थना सेगी, अर्थात, श्री बर्क ने स्वयं की थी ।

इस मामले में साक्ष्य यह था कि श्री बर्क अपनी बीमारी के अंतिम समय तक सक्षम रहेंगे । अतः वह अपने मामले के अंतिम समय के सिवाय, जब वह संवाद की योग्यता खो बैठेंगे, यद्यपि वह होश में होंगे किन्तु तदनतर वह कौमा में चले जायेंगे, हर समय निर्णय लेने के लिये सक्षम होंगे । अंतिम स्थिति के दौरान कृत्रिम पोषण और जल पोषण (ए. एन. एच) उनके जीवन को दीर्घता प्रदान करने के योग्य नहीं होंगे । श्री बर्क चाहते थे कि ए. एन. एच सुविधा को पूर्वोत्तर स्थितियों में तब तक हटाया नहीं जाये जब तक वे संवाद के योग्य हों ।

अपीली न्यायालय ने निर्णय दिया कि यदि श्री बर्क संवाद के योग्य थे तो ए. एन. एच. को हटाने का कोई प्रश्न नहीं था । जी. एम. सी. के मार्गनिर्देश में यह नहीं कहा गया था कि जब रोगी संवाद के योग्य हो तब भी ए. एन. एच. को हटाया जा सकता था।

अपीली न्यायालय के न्या. मुन्बई से सहमत नहीं थे जिन्होंने, उनके अनुसार, यह कथन किया था कि सर्वोत्तम हित के बारे में रोगी का मत डॉक्टर के मत पर अभिभावी होगा । तथापि, अपीली न्यायालय ने निर्णय दिया कि सर्वोत्तम हित डॉक्टर द्वारा प्रस्तुत एक उद्देश्यपूर्ण परीक्षण है जब कि रोगी का मत उसके 'स्वनिर्धारण' के आधार पर आधारित है । न्यायाधीशों ने कथन किया :

"जहां रोगी यह स्पष्ट कर देता है कि वह उपचार नहीं लेना चाहता जो कि, उद्देश्य की दृष्टि से, उसके चिकित्सीय सर्वोत्तम हित में है तब उसे उपचार देना डॉक्टर के लिये अवैध है । व्यक्तिगत स्वायत्तता अथवा स्वनिर्धारण का अधिकार अभिभावी होता है ।"

तथापि, उन्होंने यह टिप्पणी की कि रोगी चिकित्सीय सर्वोत्तम हित के बारे में निर्णय नहीं ले सकता । न्यायाधीशों ने कहा :

"स्वायत्तता अथवा स्वनिर्धारण का अधिकार रोगी को यह हक नहीं देते कि वह उपचार की प्रकृति के विपरीत किसी विशेष प्रकार का चिकित्सीय उपचार लेने की जिद करे । जहां तक किसी डॉक्टर द्वारा उपचार देने से विधिक रूप से आपत्ति करने की बात है, इसका आधार एक मात्र यह तथ्य नहीं हो सकता कि रोगी ऐसी मांग कर रहा है । कर्त्तव्य का स्त्रोत कहीं अन्यत्र है ।"

जहां तक ए. एन. एच. का संबंध है, उसे प्रदान करने के कर्त्तव्य के लिये दूर तक निगाह दौड़ाने की आवश्यकता नहीं है । एक बार रोगी अस्पताल में दाखिल कर दिया जाये तो, कॉमन विधि के अनुसार, चिकित्सकों पर रोगी की देखभाल करने का सकारात्मक कर्त्तव्य आ जाता है । देखभाल के इस सकारात्मक कर्त्तव्य का एक

मौलिक पक्ष यह है कि इसके अंतर्गत ऐसे कदम उठाने का कर्त्तव्य सम्मिलित है जो रोगी को जीवित रखने के लिये उचित हों । जहां रोगी को जीवित रखने के लिये आवश्यक हो वहां देखभाल के कर्त्तव्य में सामान्यतः यह अपेक्षा की जायेगी कि डॉक्टर ए. एन. एच. प्रदान करें । तथापि, यह कर्त्तव्य किसी सक्षम रोगी की ए. एन. एच. न लेने की इच्छा के ऊपर नहीं होगा । जहां सक्षम रोगी यह स्पष्ट कर देता है कि वह ए. एन. एच. द्वारा जीवित रहना चाहता है या चाहती है वहां इस उपचार को देने के कर्त्तव्य का श्रोत वह नहीं होगा । रोगी की इच्छा उस कर्त्तव्य पर अभिभावी मात्र होगी ।

ए. एन. एच. देकर या दीर्घ जीवन प्रदायी कोई अन्य उपचार देकर रोगी को जीवित रखने का कर्त्तव्य सम्पूर्ण नहीं है; दो स्थितियां इसका अपवाद हैं : (i) जहां सक्षम रोगी ए. एन. एच लेने से इन्कार कर देता है और (ii) जहां रोगी सक्षम नहीं है और कृत्रिम साधनों से जीवित रखना रोगी के सर्वोत्तम हित में नहीं समझा जाता है । दूसरे अपवाद के संबंध में विधि में सबसे अधिक कठिनाईयां आती हैं । न्यायालयों ने यह स्वीकार किया है कि जहां जीवित रखने के कारण अत्यधिक मात्रा में दर्द, बैचेनी या रोगी का असम्मान होगा और रोगी सचेत हैं किन्तु सक्षम नहीं है और रोगी ने जीवित रखे जाने के बारे में कोई इच्छा प्रकट नहीं की है तो इन परिस्थितियों में डॉक्टरों को रोगी को जीवित रखने के सकारात्मक कर्त्तव्य से छूट होगी । इसी प्रकार से न्यायालयों ने स्वीकार किया है

कि ऐसे रोगी को जो निरन्तर जड़ दशा (पी. वी. एस) में है, जीवित रखने का कोई कर्त्तव्य नहीं हो सकता । इनमें से प्रत्येक उदाहरण में, अलग-अलग मामले के तथ्य ऐसे निर्णय को कठिन बना देते हैं कि रोगी को जीवित रखने का कर्त्तव्य है या नहीं ।

श्री बर्क के मामले में, ऐसी कोई कठिनाई पैदा नहीं हुई थी क्योंकि वह धैर्यवान और सक्षम थे और दर्द, कष्ट और उनकी स्थिति में असम्मान के बावजूद जीवित रहना चाहते थे । अतः रोगी को जीवित रखने के डॉक्टर के कर्त्तव्य पर कोई प्रश्न चिन्ह नहीं लगाया जा सकता । लार्ड फिलिप्स ने कहा :

> "वास्तव में हमें ऐसा प्रतीत होता है कि सक्षम रोगी की ऐसी स्पष्ट इच्छा के समक्ष कि उसे जीवित रखा जाये, जीवन प्रदायी उपचार में जानबूझकर व्यवधान इस आशय से डालना कि रोगी के जीवन को समाप्त कर दिया जाये, ऐसे डॉक्टर के पास <u>हत्या के आरोप</u> के उत्तर में कुछ भी नहीं छोड़ेगा ।"

इसके पश्चात् लार्ड फिलिप्स ने इस प्रश्न पर विचार किया कि श्री बर्क की इच्छा के विपरीत 'ए. एन. एच. का हटाया जाना' क्या यूरापीय कन्वेंशन के अनुच्छेद 2, 3 और 8 का उल्लंघन है । अनुच्छेद 2, 3 और 8 निम्नलिखित रूप में हैं :

"अनुच्छेद 2 – (1) विधि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के अधिकार की रक्षा करेगी । किसी व्यक्ति को आशयपूर्वक उसके जीवन से वंचित नहीं किया जायेगा सिवाय किसी अपराध के लिये न्यायालय द्वारा, ऐसे अपराध के लिये, जिसके लिये विधि द्वारा ऐसी शास्ति का प्रयोग किया गया है, दोष सिद्धि के अनुसरण में किसी सजा के निष्पादन के लिये ।

(2) जीवन का वँचन इस अनुच्छेद के उल्लंघन में नहीं माना जायेगा यदि वह ऐसे बल के प्रयोग के परिणामस्वरूप है जो उससे अधिक नहीं है जो आत्यंतिक रूप से निम्नलिखित स्थितियों में आवश्यक था:

(क) अवैध हिंसा से किसी व्यक्ति की रक्षा के लिये;

(ख) विधिपूर्ण गिरफ्तारी को क्रियान्वित करने के लिये, विधिपूर्वक, विरुद्ध किसी व्यक्ति को भाग निकलने से रोकने के लिये;

(ग) किसी दंगे या आक्रमण को समाप्त करने के प्रयोजन के लिये विधिपूर्वक की गई कार्यवाही में । "

"अनुच्छेद 3 – किसी भी व्यक्ति को यन्त्रणा या अमानवीय या असम्मान-जनक व्यवहार अथवा सजा का विषय नहीं बनाया जायेगा।"

"अनुच्छेद 8 – (i) प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन, अपने घर और अपने पत्राचार के प्रति आदर का अधिकार है।

(ii) कोई भी लोक प्राधिकारी इस अधिकार के प्रयोग में तब के सिवाय व्यवधान नहीं डालेगा जब ऐसा करना विधि के अनुरूप हो और एक प्रजातांत्रिक समाज में देश की राष्ट्रीय सुरक्षा, लोक सुरक्षा या आर्थिक कल्याण के हित में, अव्यवस्था या अपराध की रोकथाम के लिये, स्वास्थ्य अथवा चरित्र की रक्षा के लिये अथवा दूसरों के अधिकार और स्वतंत्रता की रक्षा के लिये आवश्यक न हो।"

विद्वान् न्यायाधीश ने न्या. मुन्बई के इस वक्तव्य से सहमति प्रकट की :

> "...... अनुच्छेद 2 किसी को भी वहां जीवन प्रदायी उपचार को जारी रखने का हक प्रदान नहीं करता जहां ऐसा करने से रोगी को अनुच्छेद 3 के उल्लंघन में 'अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार सहना पड़ेगा। दूसरी ओर, ऐसे जीवन प्रदायी उपचार का हटाया जाना, जो कॉमन विधि की अत्यावश्यक अपेक्षाओं को पूरा करता है, जिनके अंतर्गत असहनयीता, परीक्षण का उचित प्रयोग भी है, तथा उस उपचार को ऐसी रीति से हटाया जाना है जो सभी स्थितियों में रोगी के अनुच्छेद 3 और 8 के अंतर्गत अधिकारों से तुलनीय है, मेरे निर्णय में अनुच्छेद 2 का उल्लंघन नहीं होगा।"

न्या. मुन्बई के निर्णय के उक्त अंश का अनुमोदन करने के पश्चात् लार्ड फिलिप्स ने स्पष्ट किया कि :

"हम इस निष्कर्ष का अनुमोदन करते हैं, तथापि इससे ऐसा निष्कर्ष नहीं निकाला जाना चाहिये कि यदि कोई राष्ट्रीय स्वास्थ्य डॉक्टर किसी सक्षम रोगी की इच्छाओं के विरुद्ध, जीवन प्रदायी उपचार को हटाकर ऐसे रोगी की मृत्यु जानबूझकर कारित करता है तो अनुच्छेद 2 का उल्लंघन नहीं होगा । हमें यह प्रतीत होता है कि ऐसा आचरण स्पष्ट रूप से अनुच्छेद 2 का उल्लंघन होगा । इसके अतिरिक्त, यदि इंग्लिश विधि ऐसे आचरण की अनुमति देती है तो इससे उस देश पर अनुच्छेद 2 लागू करने की सकारात्मक बाध्यता का भी उल्लंघन होगा । जैसाकि हम पहले उल्लेख कर चुके हैं, हम नहीं समझते कि इंग्लिश दाण्डिक विधि ऐसे आचरण को प्रश्रय देगी। तथापि, यह तथ्य कि कन्वेंशन के अनुच्छेद 2, 3 और 8 को उपयोग में लाया जा सकता है, हमारे निर्णय के अनुसार, इससे न तो इस तर्क को बल मिलता है और न कॉमन विधि में परिवर्तन होता है ।"

अतः, अपीली न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि वह डॉक्टर जो श्री बर्क का प्रभारी है, जब तक उपचार से श्री बर्क का जीवन चल रहा है तब तक रोगी की स्पष्ट इच्छा के अनुसार ए. एन. एच. देने के लिये बाध्य होगा । इसमें किसी प्रकार का भी संदेह नहीं है ।

अपीली न्यायालय ने तत्पश्चात् जी. एम. सी द्वारा जारी किये गये मार्गनिर्देशों के पैरा 13, 16, 32, 42 और 81 की वैधता पर विचार किया ।

क्या मार्गनिर्देश किसी सक्षम रोगी को, वहां जहां रोगी को जीवित रखने के लिये ए. एन. एच आवश्यक है तथा रोगी जीवित रखे जाने की इच्छा प्रकट करता है, डॉक्टर के ए. एन. एच. देने के कर्त्तव्य के अनुरूप है । हम पहले मार्गनिर्देश के इन पैराओं पर विचार करेंगे।

मार्गनिर्देशों का पैरा 13 वयस्क रोगियों के उपचार से इन्कार करने के अधिकार के विषय में है । इसमें ए. एन. एच. देने के डॉक्टर के कर्तव्य का कोई उल्लेख नहीं है । यह पैरा वर्तमान मामले में लागू नहीं होता ।

मार्गनिर्देशों का पैरा 16 विभिन्न मूल्यों, विश्वासों और अग्रिमताओं के आधार पर रोगी द्वारा चयन में अन्तरों के विषय में है जिन्हें डॉक्टर को ध्यान में रखना चाहिऐ । जहां कोई रोगी ऐसा उपचार चाहता है जो डॉक्टरों की राय में निदानात्मक दृष्टि से उपयोगी नहीं है वहां उन पर कोई चारित्रिक या कानूनी बाध्य नहीं है। अपीली न्यायालय ने अनुभव किया कि पैरा 16 ए. एन. एच. के मामले में वहां के सिवाय सुसंगत नहीं है जहां रोगी प्राणांतक स्थितियों के दौरान ए. एन. एच. की मांग करता है और जहां वह

उसके जीवन को दीर्घता प्रदान नहीं कर सकता । यह एक असंगत स्थिति थी और ऐसी स्थिति नहीं थी जिसका कोई उचित संबंध श्री बर्क की इस प्रक्रम पर बीमारी से हो ।

मार्गनिर्देशों के पैरा 32 में कथन है कि जीवन प्रदायी उपचार को रोक दिया जाये या हटा दिया जाये इसका निर्णय करने का उत्तरदायित्व डॉक्टर का है और डॉक्टर को रोगी या उसके निकट व्यक्तियों के मतों को ध्यान में रखना होगा । अपवाद के रूप में, किसी आपात स्थिति में जहां वरिष्ठ निदानकर्त्ता से समय पर संपर्क न किया जा सके, यदि डॉक्टर के पास उपयुक्त अनुभव है तो, अस्पताल का कनिष्ठ डॉक्टर या सामान्य चिकित्सा व्यवसायी ऐसा निर्णय लेना का उत्तरदायित्व ले सकता है, किन्तु उसे यथासंभव शीघ्र वरिष्ठ निदानकर्त्ता से चर्चा कर लेनी चाहिऐ । इस विषय में अपीली न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की है ।

"यह मार्गनिर्देशों के सामान्य ढांचे का एक भाग है और इसका संबंध किसी उपबंध से विनिर्दिष्ट रूप से नहीं है और न ए. एन. एच. के हटाये जाने से है। हम स्वीकार करते हैं कि 'रोगी के मत को ध्यान में रखते हुए' वाक्यांश को यदि अलग से पढ़ा जाये तो उससे यह अर्थ निकलेगा कि रोगी के मामले का प्रभारी परामर्श- दाता या सामान्य चिकित्सा व्यवसायी, किसी सक्षम रोगी की स्पष्ट इच्छा के विपरीत, ए.

एन. एच. को रोक सकता था या हटा सकता था यदि वह समझता है कि रोगी की इच्छा को न मानने का कोई पर्याप्त कारण है । तथापि, संपूर्ण मार्गनिर्देशों के संदर्भ में, हम यह नहीं मानते कि कोई भी युक्ति युक्त डॉक्टर पैरा 32 से यह निष्कर्ष निकालेगा कि रोगी की इस इच्छा के विपरीत कि वह जीवित रहना चाहता है, रोगी के जीवन को समाप्त करने की दृष्टि से उक्त पैरा जीवन प्रदायी उपचार को हटा देने की अनुमति प्रदान करता है ।"

मार्गनिर्देशों के पैरा 42 में कथन है कि डॉक्टर को यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि वह किसी वयस्क रोगी द्वारा, सक्षम रूप से उपचार से, इन्कार के निर्णय का आदर करने के लिये उस स्थिति में भी बाध्य है जहां निर्णय का अनुसरण करने में रोगी की मृत्यु हो सकती है । यदि किसी विशेष उपचार का निवेदन किया जाता है, जिसे डॉक्टर निदानात्मक रूप से अनुपयुक्त समझता है, तो डॉक्टर ऐसा उपचार करने के लिये कानूनी या चारित्रिक दृष्टि से बाध्य नहीं है । तथापि, डॉक्टर को अपने दृष्टिकोण के कारणों को रोगी को स्पष्ट कर देना चाहिये, और यदि रोगी दूसरी राय लेना चाहता है तो ऐसे निवेदन का सम्मान करना चाहिये । अपीली न्यायालय का कथन निम्नलिखित रूप में है :

"हम समझते हैं कि इस पैरा के दूसरे हिस्से को न्यायालय ने आपत्तिजनक माना है । यह केवल श्री बर्क के संभ्रम से

सुसंगत हो सकता है यदि कोई यह बात कहे कि डॉक्टर श्री बर्क की इस इच्छा के होते हुऐ भी कि उसे ए. एन. एच. दिया जाये, ऐसे उपचार को 'निदानात्मक रूप से अनुपयुक्त' मान सकता है । हम समझते हैं कि ऐसी स्थिति पूर्णरूप से अवास्तविक है ।"

मार्गनिर्देशों के पैरा 81 में कथन है कि जहां रोगियों को निर्णय लेने की सामर्थ्य हो वहां वे प्रस्तावित किसी प्रकार के हस्तक्षेप के प्रति सहमति या असहमति प्रदान कर सकते हैं । जहां रोगियो में निर्णय लेने की सामर्थ्य नहीं है वहां डॉक्टर को विभिन्न परिस्थितियों को ध्यान में रखना चाहिए :

(i) परीक्षा अवधि में ए. एन. एच. देना, यदि ए. एन. एच. के संभावित फायदों या कष्टों के बारे में युक्तियुक्त अनिश्चय है;

(ii) जहां मृत्यु आसन्न है, वहां कृत्रिम जल पोषण या भोजन पोषण प्रारंभ करना उपयुक्त नहीं है, यद्यपि लाक्षणिक-राहत देने के लिये कृत्रिम जल पोषण दिया जा सकता है;

(iii) जहां मृत्यु आसन्न है तथा कृत्रिम जल पोषण या भोजन पोषण पहले से ही दिया जा रहा है, उन्हें हटाना उचित हो सकता है यदि यह समझा जाता है कि रोगी को संभावित फायदों की अपेक्षा नुकसान अधिक हो रहा है ।

(iv) जहां मृत्यु आसन्न नहीं है वहां प्रायः कृत्रिम जल पोषण या भोजन पोषण उपयुक्त होगा । तथापि, यदि रोगी की दशा इतनी गंभीर है और सुधार बहुत नगण्य है तो कृत्रिम जल पोषण या भोजन पोषण से कष्ट बढ़ सकता है, वहां किसी वरिष्ठ निदानकर्त्ता से (जो किसी अन्य विभाग का हो सकता है, जैसे परिचर्या) परामर्श किया जाना चाहिये ।

मार्गनिर्देश के पैरा 81 के संबंध में अपीली न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की है :

"यह एक मात्र पैरा है जिसे न्यायाधीश ने ऐसे अपवाद के रूप में माना है जिसमें ए. एन. एच. के विषय में स्पष्ट रूप से चर्चा की गई है । पहले वाक्य में डॉक्टर से यह अपेक्षा की गई है कि वह सामर्थ्य युक्त रोगी द्वारा प्रकट की गई इच्छा का पालन करे । इसका कोई अपवाद नहीं है । पैरा का शेष भाग उन रोगियों की बाबत् है जिनमें स्वयं निर्णय लेने की सामर्थ्य नहीं है और जिनकी इच्छा का अवधारण नहीं किया जा सकता । हमें नहीं दिखाई देता कि इसका श्री बर्क की भ्रांति से कोई सुसंगत संबंध है ।"

अपीली न्यायालय ने, उपरोक्त कारणों से, यह नहीं माना कि जहां तक मार्गनिर्देशों का श्री बर्क से संबंध है, मार्ग निर्देशों को अवैध घोषित करने का कोई आधार था ।

तदनतर, अपीली न्यायालय ने न्या. मुम्बई के निर्णय में से कतिपय ऐसे विषयों की पहचान की जिनमें विधि का विश्लेषण अपेक्षित था ;

(i) रोगी को किस प्रकार का उपचार दिया जाये उसका चयन करने का रोगी का अधिकार ;

(ii) वे परिस्थितियां जिनमें ऐसे रोगी से, जो अक्षम है, जीवनप्रदायी उपचार को हटाया जाना चाहिए ;

(iii) जीवनप्रदायी उपचार को हटाने के पूर्व न्यायालय का अनुमोदन प्राप्त करने का कर्त्तव्य ।

(i) <u>रोगी को किस प्रकार का उपचार दिये जाये यह चयन करने का रोगी का अधिकार</u> :

यह कहना ठीक नहीं है कि न्या. मुम्बई ने यह राय दी थी कि डॉक्टर ऐसा उपचार प्रदान करने के लिये, जो निदानात्मक रूप से उपयुक्त नहीं है, केवल इस कारण से बाध्य है कि रोगी ऐसा उपचार चाहता है । जी. एम. सी. ने जो निम्नलिखित तर्क दिये हैं वे ठीक हैं;

(क) डॉक्टर, अपने व्यावसायिक निदानात्मक निर्णय का प्रयोग करते हुए यह निश्चय करे कि उसके रोगी के लिये कौन सा उपचार

निदानात्मक रूप से उपयुक्त है, अर्थात् जिसमें समसत रूप से निदानात्मक लाभ होगा ।

(ख) डॉक्टर तब रोगी को उपचार के उन विकल्पों को बताए और उसके दौरान प्रत्येक विकल्प में जो जोखिम, लाभ या अन्य प्रभाव आदि आ सकते हैं, उन्हें स्पष्ट करे ।

(ग) रोगी तब यह निश्चय करे कि वह उन उपचारों में से किसी विकल्प को स्वीकार करना चाहता है और, यदि हाँ, तो कौन सा विकल्प । अधिकांश मामलों में वह निश्चित रूप से यह निर्णय लेगा कि उसे अपने सर्वोत्तम हित में कौन सा उपचार ठीक लगता है, तथा, ऐसा करते समय वह अन्य निदान भिन्न कारणों को भी ध्यान में रखेगा या रख सकता है । तथापि, रोगी, यदि वह ऐसा चाहता है तो, उपचार के किसी विकल्प को किन्हीं ऐसे कारणों के आधार पर जो युक्ति युक्त नहीं हैं अथवा किसी कारण के बिना भी स्वीकार करने (या इन्कार करने) का विनिश्चय कर सकता है ।

(घ) यदि रोगी उसे प्रदान किये गये उपचारों के विकल्प में से किसी का चयन करता है तो डॉक्टर ऐसा उपचार देने के लिये अग्रसर होगा ।

(ङ) तथापि, यदि रोगी उसके समक्ष प्रस्तुत उपचारों के सभी विकल्पों से इन्कार करता है और डॉक्टर को सूचित करता है कि वह ऐसा उपचार चाहता है जिसका डॉक्टर ने प्रस्ताव नहीं रखा है तो डॉक्टर, निःसंदेह, रोगी के साथ उस प्रकार के उपचार के बारे में चर्चा करेगा (यह मानकर कि वह ऐसा उपचार है

जिसकी जानकारी डॉक्टर को है) किन्तु, यदि डॉक्टर इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि इस प्रकार का उपचार निदानात्मक दृष्टि से उपयुक्त नहीं है तो उससे यह अपेक्षित नहीं है कि वह रोगी को ऐसा उपचार दे (अर्थात् डॉक्टर किसी कानूनी बाध्यता के अधीन नहीं है) तथापि डॉक्टर को दूसरी राय लेने की व्यवस्था करने की व्यवस्था करनी चाहिऐ ।

तथापि, अपीली न्यायालय ने जोर दिया कि, जहां तक किसी सक्षम रोगी का संबंध है, यदि रोगी ने ए. एन. एच. द्वारा जीवित रखे जाने की इच्छा प्रकट की है तो डॉक्टर इन्कार नहीं कर सकता और यदि वह इन्कार करता है तो इसे हत्या माना जायेगा । "जहां जीवन ए. एन. एच. निरन्तर दिये जाने पर निर्भर है वहां ऐसा प्रश्न नहीं उठता कि निदानात्मक रूप से उपयुक्त न होने पर भी ए. एन. एच. प्रदान किया जाये, सिवाय तब जब ऐसा निदानात्मक निर्णय ले लिया गया हो कि प्रश्नगत जीवन की समाप्ति होनी चाहिए । यह ऐसा निर्णय नहीं है जो किसी सक्षम रोगी की दशा में तब लिया जा सकता हो जब रोगी जीवित रहने की इच्छा प्रकट कर चुका है।"

ए. एन. एच. निदानात्मक रूप से कब उपयुक्त नहीं है, हो सकता है कि सक्षम रोगी की दशा में भी जीवन की अंतिम स्थिति में यह प्रकट हो की ए. एन. एच. देने से मृत्यु शीघ्र हो जायेगी नकि जीवन दीर्घतर होगा, और ऐसी स्थिति में, ए. एन. एच. देना या न देना एक निदानात्मक विनिश्चय होगा और वह भी इस पर

निर्भर करेगा कि ऐसे उपचार का लाभदायक प्रभाव होगा अथवा विपरीत प्रतिक्रियायें होने की संभावनायें हैं । "केवल ऐसी स्थिति में ही यदि यह मान लिया कि रोगी सक्षम रहेगा, रोगी द्वारा प्रकट की गई यह इच्छा कि ए. एन. एच. को जारी रखा जाये, डॉक्टर के इस मत के विरुद्ध हो सकती है कि ऐसा उपचार निदानात्मक रूप से उपयुक्त नहीं है ।"

न्या. मुम्बई से असहमति प्रकट करते हुए लार्ड फिलिप्स ने कहा है कि ऐसी स्थिति में रोगी की इच्छा उपचार के बारे में निर्णायक नहीं है । "स्पष्ट है कि डॉक्टर को ऐसे किसी कष्ट को ध्यान में रखना आवश्यक होगा जो रोगी द्वारा प्रकट की गई इच्छा के विपरीत निर्णय लेने के परिणामस्वरूप पैदा हो सकता है । तथापि, अन्ततः, रोगी डॉक्टर से ऐसा उपचार देने की मांग नहीं कर सकता जिसे डॉक्टर रोगी के निदानात्मक हित के विपरीत समझता है । यह सब कहते हुए भी, हम मानते हैं कि हमने पहले जिन स्थितियों का वर्णन किया है वे व्यवहार में शायद ही कभी पैदा होंगी ।"

(ii) अक्षम रोगी की स्थिति :

स्थाई रूप से जड़ स्थिति (पी. वी. एस) रोगी के बारे में हाउस ऑफ लार्डस ने एअरडेल बनाम ब्लांड मे पहले ही निर्णय दे दिया है। किन्तु, अपीली न्यायालय ने यह स्पष्ट किया है कि किसी पी. वी. एस. रोगी को केवल इसलिये जीवित रखना कि उसने अग्रिम

निर्देश दिया है, मैन्टल केपेसिटी एक्ट, 2005 का उल्लंघन होगा । एअरडेल को स्पष्ट करते हुए न्यायालय ने निम्नलिखित कथन किया है :

"माननीय लार्डस् ने (ब्लांड में) जो कुछ कहा था, उसमें सिवाय निम्नलिखित टिप्पणी के, और कुछ जोड़ना हमें उपयुक्त नहीं लगता है । यद्यपि अनेक न्यायाधीशों ने यह संकेत दिया है कि पी. वी. एस. रोगी की दशा में किसी ऐसे अग्रिम निर्देश का कि रोगी को जीवित नहीं रखा जाना चाहिऐ, सम्मान करना होगा, तथापि हम इस निर्णय का यह अर्थ नहीं लगाते हैं कि उसे केवल इस कारण से जीवित रखा जाये कि उसने इस आशय का अग्रिम निर्देश दिया है। ऐसी व्याख्या मैन्टल केपेसिटी एक्ट, 2005 के उपबंधों से सुसंगत नहीं होगी और हम समझते हैं कि यह अधिनियम कॉमन विधि के अनुरूप है । अधिनियम की धारा 26 उपचार से इन्कार के विधिमान्य अग्रिम निर्देश का पालन करने की अपेक्षा करती है पर धारा 4 इससे अधिक अपेक्षा नहीं करती कि अग्रिम निर्देश को केवल तब विचार में लिया जाये जब रोगी के सर्वोत्तम हित पर विचार किया जा रहा हो ।"

न्यायाधीश ने आगे कथन किया है कि :

"ऐसे दुख भरे मामले हुए हैं जहां उपचार से जीवन की दीर्घता एक अनिश्चित अवधि तक बढ़ाई जा सकती है किन्तु जीवन तो चलेगा पर अत्यधिक कष्ट के साथ । ऐसा एक मामले में, जे (ए माइनर) (वार्डशिप : मेडिकल ट्रीटमेन्ट) निर्देश : (1991 फेम 33) आया था । अन्य मामलों में भी, जो कि अधिक संख्या में हैं, जहां रोगी ने जीवन के अंतिम पड़ाव पर सक्षमता खो दी हो और जहां ए. एन. एच. से इस अंतिम स्थिति को दीर्घता प्रदान की जा सकती हो, किन्तु जहां तक आराम और सम्मान का संबंध है, एक भारी कीमत पर, और कभी-कभी तो इसके परिणामस्वरूप रोगी के अंतिम दिन अपने परिवार के साथ न होकर अस्पताल में व्यतीत होते हैं ।

इन्हीं स्थितियों को लेकर इस मामले में इतनी अधिक बहस हुई है । जिन लोगो ने मध्यक्षेप किया है उन्होंने ऐसी आशंकायें जताई हैं कि रोगी जिन व्यक्तियों के प्रभार में है वे ए. एन. एच. या अन्य जीवनप्रदायी उपचार को इस आधार पर कि यदि रोगी के जीवन को दीर्घता प्राप्त होती है तब भी जीवन जीवित रहने योग्य नहीं होगा, ऐसे उपचार को देने में या न देने में शीघ्र निर्णय ले सकते हैं । ऊपर उल्लिखित

प्रथम स्थिति के उदाहरण के लिये, डिसऐबीलिटी राइट्स कमीशन ने हमारा ध्यान जेन केम्पबेल की हृदय द्रावी कहानी की ओर आकर्षित किया था। वह मेरुदण्ड स्नायु संबंधी कष्ट से पीड़ित थी और अत्यन्त अपाहिज थी। यह संभावना नहीं थी कि वह 4 वर्ष से अधिक जीवित रहेगी किन्तु उसने एक संपूर्ण और उच्च उपलब्धियों का सकारात्मक जीवन जीया है। 2003 में, उसे निमोनिया हो गया था। दो परामर्शियों ने मिलकर यह निष्कर्ष निकाला था कि उसका जीवन ऐसे अवसाद की स्थिति में था कि यदि जीवित रखने के लिये उसे कृत्रिम श्वसन प्रणाली की आवश्यकता पड़े तो वह उसे भी स्वीकार नहीं करना चाहेगी। केवल उसके पति द्वारा हस्तक्षेप करने पर, जिसने रोगी को डिग्री लेते हुए भी एक चित्र परामर्शियों को दिखाकर इस बात पर सहमत किया कि रोगी का जीवन बचाने योग्य था।"

तदनतर, अपीली न्यायालय ने मेडिकल इथिक्स एलायन्स की कुछ ऐसी हिला देने वाली रिपोर्टो का उल्लेख किया जो मेन्टल इनकेपेसिटी बिल के प्रारूप के संबंध में संसद् की संयुक्त समिति के समक्ष रखी गई थीं। यह वे मामले थे जहां ऐसे रोगियों का जो प्राणांततःरूग्ण थे, ऐसी परिस्थितियों में जल और भोजन के पोषण से इन्कार कर दिया था जो पोषण संबंधी देखभाल की आवश्यकताओं के विपरीत था। रिपोर्टो में स्पष्ट पूर्वनिर्णीत विधि और मार्गनिर्देशों के महत्व पर जोर दिया गया था। अपीली न्यायालय ने इस संदर्भ

में अंतिम दो रेखांकित वाक्यों के सिवाय न्यायाधीश मुन्बई की न्याय का अनुमोदन किया । न्या. मुन्बई का कथन था कि:

"यह एक अत्यंत मजबूत उपधारणा है कि ऐसे सभी कदम उठाये जाने चाहिये जो जीवन को बनाये रखेंगे, तथा सिवाय असाधारण परिस्थितियों के, अथवा जहां रोगी की मृत्यु हो रही हो वहां, रोगी के सर्वोत्तम हित के अनुरूप ही आवश्यक कदम उठाने की अपेक्षा सामान्यतया होगी । संदेह की दशा में, संदेह का समाधान जीवन के संरक्षण के पक्ष में किया जाना चाहिये । किन्तु यह बाध्यता संपूर्ण नहीं है । जीवन की सुरक्षा यद्यपि महत्वपूर्ण है किन्तु मानवीय सम्मान के संदर्भ में उसका स्थान दूसरा है । जीवन प्रदायी उपचार के संदर्भ में, सर्वोत्तम हित की कसौटी असहनीयता है। अतः यदि जीवन प्रदायी उपचार से कुछ लाभ मिल रहा है तो उसे जारी रखना चाहिऐ जब तक कि रोगी का जीवन, जो इस प्रकार से बनाये रखा गया है, रोगी की दृष्टि से असहनीय न हो जाये ।"

इस उदाहरण के पूर्वतर भाग का अनुमोदन करने के पश्चात्, अपीली न्यायालय ने अंतिम दो वाक्यों के संबंध में दो टिप्पणियां की हैं :

" हम यह नहीं समझते है कि इस संक्षिप्त उदाहरण के प्रति कोई भी आपत्ति उठाई जा सकती थी यदि इसमें वह अंतिम

दो वाक्य नहीं होते जिन पर हमने बल दिया है । यह सुझाव कि 'सर्वोत्तम हित' की कसौटी निरन्तर जीवन की 'असहनीयता' है, हमारी समझ में एक चिन्ता का विषय बन गया है । इस बात की कसौटी कि ए. एन. एच. देना या जारी रखना रोगी के सर्वोत्तम हित में है या नहीं, विशेष परिस्थितियों पर निर्भर होना चाहिए । ऊपर हमने जिन दो स्थितियों पर विचार किया है, सर्वथा भिन्न हैं । प्रथम के संबंध में जो सोच होनी चाहिये उसकी चर्चा न्यायालय ने जे निर्देश में की थी और हम उसके बारे में पुनरीक्षण करना उपयुक्त नहीं समझते जो न्यायालय ने एक सर्वथा काल्पनिक संदर्भ में कहा है ।"

मृत्यु के आसन्न रोगी के 'सर्वोत्तम हित' का जहां तक प्रश्न है, अपीली न्यायालय ने टिप्पणी की है कि न्या. मुम्बई ने स्वयं इस बात को स्वीकार किया है कि 'असहनीयता' 'सर्वोत्तम हित' की कसौटी नहीं है । न्या. मुम्बई के निम्नलिखित शब्द सही हैं :

" जहां रोगी की मृत्यु हो रही हो, वहां उद्देश्य यह होना चाहिऐ कि उसके कष्ट को उचित रूप से कम किया जाये और, जहां उपयुक्त हो वहां जीवन को कुछ समय और चलाते रहने की अपेक्षा 'मृत्यु को सहज बनाने' के उद्देश्य को प्राप्त करना उपयुक्त होगा ।"

अपीली न्यायालय ने आगे कहा :

> "हमें यह संभव नहीं लगता कि रोगी के 'सर्वोत्तम हित' में किसी ऐसी एक कसौटी को परिभाषित किया जाये जो सभी स्थितियों में लागू होगी । हम यह जोड़ना चाहेंगे कि पैरा 57 और 58 में जिन हृदयस्पर्शी मामलों का उल्लेख किया गया है, यदि सही रिपोर्ट दी जाती तो, वह ऐसे मामले हैं जहां डॉक्टर मार्गनिर्देशों का अनुपालन करने में असफल रहे प्रतीत होते हैं । वे मार्गनिर्देशों में किसी अविधिमानता के उदाहरण नहीं हैं । मार्गनिर्देशों में स्पष्ट शब्दों में आगाह किया गया है कि किसी असमर्थ या अपाहिज रोगी के जीवन को ऐसे रोगी के जीवन से कम न आंका जाये जो असमर्थ/ अपाहिज नहीं है, और यह बात सही है ।"

(iii) <u>न्या. मुन्बई द्वारा विनिर्दिष्ट मामले में से क्या प्रत्येक में ए. एन. एच. हटाने से पूर्व न्यायालय का अनुमोदन अभिप्राप्त करना एक विधिक अपेक्षा है ?</u>

न्या. मुन्बई ने घोषित किया था कि 'कतिपय परिस्थितियों में' इस प्रश्न का उत्तर सकारात्मक होना चाहिये । उन्होंने ऐसे पांच प्रवर्गों के मामले गिनाये और टिप्पणी की कि मार्गनिर्देशों के पैरा 38 और 82 अवैध थे । ये पांच प्रवर्ग निम्नलिखित हैं :

(i) जहां रोगी की सामर्थ्य (सक्षमता) के बारे में कोई संदेह या असहमति हो ; या

(ii) जहां रोगी का उपचार करने वाले चिकित्सा व्यवसायियों में निम्नलिखित के संबंध में मतैक्य न हो :

(क) रोगी की दशा या रोग; या

(ख) रोगी के सर्वोत्तम हित; या

(ग) ए. एन. एच. को हटाने या रोक देने के संभावित परिणाम; या

(घ) ए. एन. एच. को रोका या हटाया जाये या नहीं, ऐसे अन्य प्रश्न; या

(iii) यदि रोगी सक्षम होता तो वह सुसंगत स्थितियों में ए. एन. एच. को चालू रखने की इच्छा करता; या

(iv) जहां ऐसा साक्ष्य है कि रोगी (भले ही वह बालक या अक्षम हो) ए. एन. एच. को हटाने के प्रस्ताव का विरोध करता है या उस पर आपत्ति करता है; या

(v) जहां वे व्यक्ति, जिनका यह उचित दावा है कि उनके विचारों या साक्ष्य को विचार में लिया जाये, जैसे कि माता-पिता या निकट संबंधी, या जीवन संबंधी, निकट मित्र, दीर्घ अवधि के कैरियर इस बात पर जोर देते हैं कि ए. एन. एच. का हटाया जाना रोगी की इच्छा के प्रतिकूल है अथवा रोगी के सर्वोत्तम हित में नहीं है ।"

मार्गनिर्देशों के पैरा 38 में यह अपेक्षा की गई है कि जहां डॉक्टर का अनुभव सीमित हो या जहां वहां विकल्पों के बारे में संदेह में हो या जहां रोगी के तुरन्त मरने की संभावना न हो या डॉक्टरों के बीच मतभेद हो वहां, सुसंगत अनुभव वाले किसी नैदानिक से जो, दूसरे किसी विभाग का हो जैसे परिचर्या विभाग, परामर्श किया जाना चाहिऐ ।

पैरा 82 में कथन है कि जहां इस बारे में स्पष्ट मत भिन्नता हो कि कृत्रिम भोजन या जल पोषण दिया जाना चाहिये या नहीं, और ऐसी भिन्नता और डाक्टरों और स्वास्थ्य टीम के अन्य सदस्यों के बीच हो या रोगी के निकटतम व्यक्तियों के बीच हो और जहां मत भिन्नता को सुलझाने की संभावना न हो वहां, डॉक्टर को कानूनी सलाह लेनी चाहिये ।

अपीली न्यायालय ने निर्णय दिया कि यदि यह मान भी लिया जाये कि न्या. मुन्बई ने जिन पांच स्थितियों का उल्लेख किया है ऐसे मामले हैं जहां न्यायालय की शरण लेनी चाहिये, वहां मार्गनिर्देश के पैरा 38 और 82 केवल इस कारण अवैध नहीं हैं क्योंकि उनमें यह उल्लेख नहीं है कि ऐसे मामलों में न्यायालय की अनुमति अपेक्षित है ।

अपीली न्यायालय को इंटेंसिव केयर सोसाइटी (आइ. सी. एस) से ज्ञात हुआ कि प्रत्येक वर्ष लगभग 50 हजार रोगी आइ. सी. यू में

आते हैं और उनमें से 30 प्रतिशत की मृत्यु वहीं अथवा वार्ड में अस्पताल छोड़ने से पूर्व हो जाती है । इनमें से अधिकांश की मृत्यु इसलिये होती है कि उपचार को हटा लिया जाता है या सीमित कर दिया जाता है और जहां उपचार से मृत्यु की प्रक्रिया केवल बढ़ सकती थी ।

किन्तु, यदि न्या. मुन्बई के सभी पांचों स्थितियों में न्यायालय की शरण लेने के निर्देश स्वीकार कर लिये जायें तो, आइ. सी. एस. के अनुसार न्यायालय में प्रतिदिन 10 आवेदन करने होंगे और यह अव्यवहारिक होगा । अपीली न्यायालय ने निर्णय दिया :

> " इस स्थिति में, हम यह नहीं मानते कि न्यायाधीश का यह सिद्धांत ठीक है कि उन परिस्थितियों में, जिनका उल्लेख न्यायाधीश ने किया है, ए. एन. एच. को हटाने के बारे में न्यायालय का अनुमोदन प्राप्त करना एक विधिक कर्त्तव्य है।"

उनका कथन था कि न्यायालय का अनुमोदन प्राप्त करना एक '<u>अच्छी प्रथा</u>' हो सकती है किन्तु इसे प्रत्येक मामले में, वहां भी जहां मतैक्य नहीं है, आज्ञापक नहीं बनाया जा सकता है । तथापि न्यायाधीश मुन्बई ने टिप्पणी की कि यूरोपीयन न्यायालय के <u>ग्लास</u> बनाम <u>यू. के.</u> : 2004 (1) एफ. एल. आर 1019 (= 2004 लोयड्स रैप मेड 78) के निर्णय के पश्चात्, इंग्लिश विधि में जो 'प्रथा / व्यवहार का नियम' था वह 'विधि का नियम' बन गया था ।

अपीली न्यायालय ने <u>ग्लास</u> बनाम <u>यू. के.</u> के तथ्यों की विस्तार से चर्चा करते हुये इस पहलू की परीक्षा की और पाया कि यूरोपीय न्यायालय ने केवल यह निर्णय दिया था कि, तथ्यों के अनुसार, उन डॉक्टरों के, जो एक अवयस्क का उपचार कर रहे थे जिसके संरक्षक (माता) ने डियामोरफिन देने की सहमति नहीं दी थी, पर डॉक्टरों के पास पर्याप्त समय था कि न्यायालय के समक्ष जाएं और डॉक्टरों ने ऐसा करने में चूक की थी यूरोपीय न्यायालय ने किसी विधि के नियम का कथन नहीं किया है । उसने यह संकेत दिया है कि वह मामला आपात स्थिति का नहीं था । अतः, न्या. मुन्बई की टिप्पणियों को स्वीकार नहीं किया गया ।

इस मामले के समापन से पूर्व, हम अपीली न्यायालय के निर्णय के पैरा 71 का उल्लेख करना चाहेंगे जिसमें इस प्रश्न पर विचार किया गया है कि <u>क्या वह न्यायालय, जिसके समक्ष आवेदन किया गया है, वास्तव में, क्या उसे विधिपूर्ण बना रही है जो अन्यथा अवैध है</u> । न्यायालय का कहना था कि घोषणा का यह प्रभाव नहीं है । यह केवल 'अच्छी प्रथा/व्यवहार' का विषय है । न्यायालय ने निम्नलिखित रूप में <u>एअरडेल</u> का उल्लेख किया :

> " हमने गोर्डन से पूछा कि वह न्यायालय का अनुमोदन प्राप्त करने के कर्तव्य की प्रकृति को स्पष्ट करे और वह सुसंगत स्पष्टीकरण देने में असमर्थ रहे । जहां तक <u>आपराधिक विधि</u> का संबंध है, न्यायालय को उसका

अनुमोदन करने की शक्ति नहीं है जो अन्यथा अवैध है - उदाहरण के लिये ब्लांड में पृष्ठ 789 एच पर शिवले के लार्ड गॉफ की टिप्पणी देखिये । न्यायालय उसे अवैध करार नहीं दे सकता है जो अन्यथा विधिपूर्ण है । यही बात सिविल विधि के संभावित उल्लंघन के संबंध में सही है । ब्लांड में हाउस ऑफ लार्ड्स ने सिफारिश की थी कि एक अच्छी प्रथा / व्यवहार के रूप में, पी. वी. एस. स्थिति वाले रोगी से ए. एन. एच. हटाने से पूर्व फैमिली न्यायालय में निर्देश किया जाना चाहिये था । सिवाय तब जब अनुभव और उपचार के किसी निकाय का गठन नहीं करा दिया जाए । स्पष्ट है कि ऐसे अवसर आयेंगे जब डॉक्टर के लिये ए. एन. एच. को अन्य परिस्थितियों में हटाने से पूर्व न्यायालय का अनुमोदन प्राप्त करना उचित होगा । किन्तु इस सिद्धांत को प्रतिपादित करने का क्या औचित्य है कि डॉक्टर पर ऐसा करने का विधिक कर्त्तव्य है ।"

अपीली न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि यह विषय 'विधिक कर्त्तव्य' का नहीं था अपितु 'अच्छी प्रथा / व्यवहार' का था ।